B.Ed. 1st Year

Paper-IX –A (viii)

Teaching of Sanskrit

Dr. Ranjna Kumari

Centre for Distance and Online Education
Himachal Pradesh University
Summer Hill, Shimla, 171005

Paper IX – A (viii) - TEACHING OF SANSKRIT (संस्कृत शिक्षण) **Marks: 50 (40 + 10)**

पाठ्यक्रम: उदेश्य

पाठ्यक्रम के अन्त में छात्र अध्यापक निम्नलिखित में सक्षम होगा :

1 संस्कृत भाषा का अर्थ, स्वरुप तथा महत्व।

2 संस्कृत शिक्षण में गद्य–पद्य, रचना एवं व्याकरण के चरणों एवं उद्देश्यों का ज्ञान।

3 संस्कृत भाषा शिक्षण में पाई जाने वाली विभिन्न प्रविधियों के विषय में जानकर उनका प्रयोग।

इकाई–1

संस्कृत भाषा की प्रकृति एवं अन्य भारतीय भाषाओं से संबंध; संस्कृत भाषा का आधुनिक संदर्भ में महत्व

संस्कृत भाषा शिक्षण के सिद्धांत तथा उनका माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के शिक्षण में अनुप्रयोग

संस्कृत में भाषा विज्ञानः धातु–रुप (लट् और लङ् लकार) निम्न रुप अस, भू, कृ, नग, कथ, पठ्। स्वर–सन्धि, प्रत्यय, शब्द–कोश एवं अक्षर–विन्यास में अशुद्धियाँ एवं निवारण के उपाय।

पाठ्यक्रम का अर्थ, महत्व, सिद्धांत एवं रुपरेखा। संस्कृत पाठ्यक्रम निर्माण एवं समीक्षा।

विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा संस्कृत पाठ्यक्रम सुधार के लिए सुझाव।

इकाई–2

संस्कृत साहित्य की विधा : गद्य एवं पद्य के शिक्षण का महत्व एवं विधियां।

संस्कृत साहित्य की विधा : कहानी एवं नाटक आदि के शिक्षण का महत्व एवं उनकी विधियां।

संस्कृत व्याकरण एवं संस्कृत रचना (मौखिक एवं लिखित) की शिक्षण विधियां एवं उनके अनुप्रयोग में अपेक्षित सावधानियां।

संस्कृत में उच्चारण शिक्षण – अर्थ, अशुद्ध उच्चारण के प्रकार, कारण एवं सुधार के उपाय।

निम्िशिखित में से छात्र -अध्यापक कोई एक कायथ का चुिाव करके प्रनतवेदि तैयार करेगा

पाठ संख्या	इकाई-1	पृष्ट संख्या
पाठ-1	संस्कृत भाषा की प्रकृति एवं अन्य भारतीय भाषाओं से सम्बन्ध, संस्कृत भाषा का आधुनिक संदर्भ में महत्त्व	2 - 25
पाठ-2	संस्कृत भाषा शिक्षण के सिद्धान्त तथ उनका माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के शिक्षण में आनुप्रयोग	26 - 39
पाठ-3	संस्कृत में भाषा-विज्ञान, धातुरूप, स्वर-सन्धि	40 - 72
पाठ-4	प्रत्यय, शब्द कोश एवं अक्षर विन्यास में अशुद्धियां एवं निवारण के उपाय।	73 - 105
पाठ-5	पाठ्यक्रम अर्थः, महत्व, सिद्धांत एवं रूपरेखा पाठ्यक्रम	106 - 153
	इकाई-2	
पाठ-6.	संस्कृत साहित्य की विधाः गद्य एवं पद्य के शिक्षण का महत्व एवं विधियाँ	154 - 199
पाठ-7	संस्कृत साहित्य की विधा : कहानी एवं नाटक आदि के शिक्षण का महत्व एवं उनकी विधियाँ	200 - 224
पाठ-8	संस्कृत व्याकरण एवं शिक्षण की विधियाँ	225 - 248
पाठ-9	संस्कृत में रचना शिक्षण एवं उच्चारण शिक्षण	249 - 271

इकाई – ।

पाठ-1

संस्कृत भाषा की प्रकृति एवं अन्य भारतीय भाषाओं से सम्बन्ध, संस्कृत भाषा का आधुनिक संदर्भ में महत्त्व

संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संस्कृत भाषा की प्रकृति

1.4 भाषा की आधुनिक परिभाषाएं

1.5 स्वयं आकलन प्रश्न

1.6 भाषा के विविध रूप

1.7 संस्कृत भाषा का अन्य भारतीय भाषाओं से सम्बन्ध

1.8 संस्कृत भाषा का आधुनिक संदर्भ में महत्त्व

1.9 सारांश

1.10 कठिन शब्दावली

1.11 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1.12 संदर्भ एव सहयोगी ग्रन्थ

1.13 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अपने विचारों तथा भावों का आदान-प्रदान करने के लिए मानव जिस साधन का प्रयोग करता है उसी को भाषा कहते हैं। इस प्रकार के अर्थों में पशु-पक्षियों की बोली, विभिन्न संकेत और मानव की भाषा को भाषा शब्द के द्वारा ग्रहण किया जाता है। भाषा-विज्ञान में जिस भाषा का ग्रहण है वह सांकेतिक आदि से भिन्न मानवीय व्यक्त वाणी है। प्रस्तुत पाठ के अन्त शिक्षार्थी भाषा की प्रकृति और अन्य भाषाओं के सम्बन्ध के बारे में जान पाएगें तथा साथ ही साथ संस्कृत भाषा के आधुनिक संदर्भ में महत्त्व के बारे में भी जानेगें।

1.2 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी इस योग्य हो जायेगें कि -

1. संस्कृत भाषा से परिचित होगें।
2. भाषा की परिभाषाएं देने में सक्षम होगें।
3. संस्कृत भाषा का अन्य भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध से परिचित होगें।
4. संस्कृत भाषा के महत्त्व पर चर्चा करने में सक्षम होगें।

1.3 संस्कृत भाषा की प्रकृति

भाषा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'भाष' धातु से हुई है। 'भाष' धातु का अर्थ है - व्यक्त वाणी (भाष व्यक्तायां वाणी)। मुख्यरूप से भाषा से मानवीय व्यक्त वाणी का ही ग्रहण होता है, क्योंकि इस व्यक्त भाषा के द्वारा सूक्ष्माति सुक्ष्म मानवीय भावों को प्रकट किया जा सकता है।

‘‘भाष्यते व्यक्त्वाग् रूपेण अभिव्यज्यते इति भाषा’’ अर्थात व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे भाषा कहते है।

इसे ‘भाषणाद् हि भाषा’ भी कहा जाता है, अर्थात् भाषण करने के कारण भी इसे भाषा कहा जाता है।

आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में कहा है – ‘‘राचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते’’ वस्तुतः हमारी लोकयात्रा वाग्देवी की कृपा से ही सम्भव हो पाती है।

मानव हृदय भावों का आगार है। इन हृदय के भावों को प्रकट करने का सबसे सुन्दर साधन भाषा है। यद्यपि मानव भाषा के अतिरिक्त संकेतों से भी भाव प्रकट करने की शक्ति रखता है किन्तु जितनी सरलता, स्पष्टता तथा शीघ्रता से भावों की अभिव्यक्ति भाषा द्वारा होती है उतनी अन्य साधनों से सम्भव नहीं है।

प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी आचार्य भर्तृहरि का कथन है कि भाषा ही ज्ञान को प्रकाशित करती है उसके बिना सविकल्पक ज्ञान सम्भव नहीं है।

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।

(वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्ड 1/124))

भाषा की निरन्तर संशोधन और परिष्करण की प्रक्रिया चलती रहती है, अतएव भाषा पुरानी होने पर भी नवीन, कालातीत होने पर भी अद्यतनीन और वृद्धा होने पर भी नवयुवती बनी रहती है।

ऋग्वेद में उषा को ‘पुराणी युवति’ कहा गया है। भाषा भी वस्तुतः ‘पुराणी युवति’ अर्थात् प्राचीन होने पर भी सदा युवती है।

महान् भाषा शास्त्री पतञ्जली ने कहा है –

'प्रतीत पदार्थ को लोके ध्वनिः शब्द्'' (प्रथम आह्निक)

जिस ध्वनि से पदों के अर्थ प्रतीत हो वह सार्थक ध्वनि शब्द है और यह सार्थक ध्वनि ही भाषा है।

हिन्दी भाषा में इसकी परिवर्तशीलता के लिए एक लोकोक्ति प्रचलित है –

चार कोस में बदले पानी आठ कोस पर बानी

भाषा सामाजिक संगठन है तथा मानव जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग भी।

''मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में भाषा का इतना हाथ है कि भाषा की कहानी को सभ्यता की कहानी कहा जाता है।''

मानव समाज को विधाता की ओर से सबसे बड़ा वरदान मिला है वह भाषा का ही है। यह मानव जाति का सार और सर्वस्व है।

1.4 भाषा की आधुनिक परिभाषाएं

- डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार – ''भाषा उच्चारणावयवों से उच्चरित अध्ययन – विश्लेषणीय यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज के लोक आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।''
- स्वीट के अनुसार – ''ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।''

- डॉ बाबूराम सक्सेना के अनुसार - ''जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है उनको समष्टि रूप से भाषा कहते है।''
- आचार्य किशोरी दास वाजपेयी के अनुसार - ''विभिन्न अर्थों में संकेतित शब्दसमूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।
- जॉन डीवी के अनुसार - ''भाषा की मौजूदगी तभी होती है जब यह सुनी और बोली जाती है। स्रोतागन एक अपरिहार्य साथी है।''
- आर.एच. रोबिन्स के अनुसार - ''भाषा शुद्ध या मनमाने सम्मेलन पर आधारित, बोलने वालो की बदलती आवश्यकताओं या परिस्थितियों के मुताबिक असीम बढ़ाई जाने वाली या परिवर्तनशीलता एक प्रतीकी प्रणाली है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि भाषा में ध्वनि संकेतों का प्रयोग होता है। इन ध्वनि संकेतों से भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति होती है, ये ध्वनि संकेत रूढ़ तथा परम्परागत होते हैं, परन्तु आवश्यकतानुसार नये भी बनते रहते हैं। साथ ही प्रत्येक वर्ग एवं समाज के ध्वनि संकेत दूसरे वर्ग या समाज के ध्वनि संकेतों से पृथक होते हैं। विश्व की सभी भाषाओं में कुछ विशेषताएं सामान्य रूप से दृष्टिगोचर होती है। ये निम्नलिखित हैं -

1. **भाषा अनुकरणीय हैः-** शैशवावस्था से ही बालक अपने माता-पिता, भाई-बहन आदि से सुनकर बोलने तथा समझने का प्रयास करने लगता है। परिवार के पश्चात् बालक अपने आसपास, खेल के मैदान आदि से तथा तत्पश्चात् विद्यालय में भी वह सर्वप्रथम अनुकरण द्वारा ही सीखता है। वहां

पर वह जैसे लिखते-पढ़ते व बोलते हुए देखता व सुनता है, वैसा ही करने लगता है। विद्यालय में बालाकों को अनेक बालक व शिक्षक मिलते हैं जिनके सम्पक्र में वह शीघ्र ही नए-2 शब्द सीखने लगता है।

2. **भाषा गतिशील तथा परिवर्तनशील होती हैः-** भाषा स्थिर नहीं होती वरन् वह गतिशील होती है। किसी भाषा विशेष के बोलने वाले उसमें कम से कम परिवर्तन करना चाहते हैं, फिर भी देश, काल तथा सम्पक्र के अनुसार भाषा के रूप में परिवर्तन होता रहता है। भाषा परिवर्तन सर्वप्रथम मौखिक रूप से ही शुरू होता है। उसके पश्चात् समाज में प्रचलित होने पर लिखित रूप में और तत्पश्चात् व्याकरण शास्त्र के क्षेत्र में भी मान्यता प्राप्त हो जाती है।

3. **भाषा संश्लेषणात्मकता से विश्लेषणात्मक की ओर जाती हैः-** भाषा संश्लेषणात्मकता या संयोगावस्था से विश्लेषणात्मकता अथवा वियोगावस्था की ओर जाती है। जुड़े हुए शब्दों, अक्षरों और वाक्यों के स्थान पर इनके अलग-2 रूपों का प्रचलन होते लगता है। उदाहरण के लिए संस्कृत भाषा में 'बालकः पुस्तकम् पठति' के उपयोग के स्थान पर अब हिन्दी भाषा में 'बच्चा पुस्तक को पढ़ता है' कहा जाता है। पुस्तकम् के संयुक्त रूप के स्थान पर 'पुस्तक को' तथा पठति के संयुक्त रूप के स्थान पर 'पढ़ता है' जैसे विमुक्त रूपों का प्रयोग किया जाता है।

4. **भाषा अर्जित सम्पत्ति हैः-** भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है, जो स्वयं बिना प्रयास से प्राप्त हो जाए बल्कि यह वातावरण से अर्जित की जाती है। बालक के आसपास जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जाएगा वह वैसी ही भाषा सीख लेता है यही कारण है कि भेडिये द्वारा पाला गया शिशु बोलने के बजाए

गुर्राता था। अतः संस्कृत को सामान्य जन की भाषा बनाने के लिए गुरूकुलों जैसा वातावरण बनाना होगा।

5. **प्रत्येक भाषा की अपनी अलग पहचानः-** हर भाषा का अपना अलग से एक निश्चित स्वरूप और संरचना होती है जो उसमें निहित ध्वनियों, शब्दों वाक्य रचनाओं तथा संबधित अर्थों में स्पष्ट रूप में झलकती है। कोई भी दो भाषाएं वे अलग-2 भाषाएं हैं, संरचना की दृष्टि से कभी भी एक जैसी नहीं हो सकती और यही बात उनको एक दूसरे से अलग करती है।

6. **भाषा व्यावहारिक कुशलता हैः-** भाषा ज्ञान की अपेक्षा कौशल का विषय है, जिसे सीखने के लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। भाषा अनुकरण द्वारा भी सीखी जाती है। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी का अनुकरण करके इसे अर्जित करती है। यही कारण है कि मातृ भाषा व अन्य भाषाएं इसी तरह सीखी जाती है।

7. **भाषा प्रतीकात्मक हैः-** भाषा का लिखित रूप प्रतीकों व चिह्नों द्वारा प्रकट किया जाता है। इन प्रतीकों व चिह्नों को लिपि चिह्नों में बदलकर ग्रहण किया जाता है। इसी कारण अलग- अलग भाषाओं की ध्वनि व लिपि चिह्न अलग- अलग होते हैं। किन्ही भी दो भाषाओं की मूल संरचना समान नहीं होती।

8. **भाषा मौखिक साधन हैः-** प्राचीन प्रागैतिहासिक काल में भाषा की उत्पत्ति मौखिक रूप में हुई। शैशवावस्था में यह मौखिक रूप में ही विकसित है। लिखित रूप में भाषा सभ्यता व संसकृति की देन है। यही कारण है कि विश्व की कुछ अर्द्धविकसित जातियों की भाषा मौखिक रूप से ही मिलती है।

9. **भाषा समाज का चित्रण करती है:-** भाषा की उत्पत्ति जिस समाज में होती है, वह उसी में पुष्पित-पल्लवित होती है तथा उस समाज का चित्रण करती है। समाज में विचार-विनिमय का यह प्रमुख साधन है।

10. **भाषा का कोई अन्तिम रूप नहीं है:-** भाषा कभी भी पूर्ण नहीं होती अर्थात् यह कभी भी नहीं कहा जा सकता है कि यह अमुक भाषा का अन्तिम रूप अमुक है। वस्तुतः भाषा से हमारा अभिप्राय जीवित भाषा से होता है, मृत भाषा का अन्तिम रूप तो अवश्य अन्तिम होता है, किन्तु जीवित भाषा में यह बात नहीं है। भाषा परिवर्तनशील विकास की एक प्रक्रिया है।

1.5 स्वंय आकलन प्रश्न :-

- भाषा की दो विशेषताएं बताइए।
- भाषा शब्द की व्युत्पत्ति किस धातु से हुई है।

1.6 भाषा के विविध रूप :-

भाषा के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को भाषा के इन सभी रूपों से पूर्ण रूप से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। भाषा हमारे हृदय स्थित विचार -भावों को प्रकट करने का सबसे बड़ा साधन है। यद्यपि मानव भाषा के अतिरिक्त संकेतों से भी अपने भाव प्रकट कर सकता है किन्तु जिनती सरलता, स्पष्टता और शीघ्रता से भावों की अभिव्यक्ति भाषा द्वारा होती है उतनी अन्य साधनों से नहीं। सामाजिक आदान-प्रदान के अन्यतम साधन इस भाषा के विविध रूप है। भाषा के विभिन्न रूप निम्नलिखित हैं -

I. प्रयोग की दृष्टि से – प्रयोग की दृष्टि से भाषा के रूप है -

1. **मौखिक भाषाः-** मौखिक भाषा का प्रयोग हम अपनी बोलचाल की भाषा में हर समय करते हैं। मौखिक भाषा अक्षरों का केवल ध्वन्यात्मक रूप है। इसका प्रयोग मौखिक रूप से विचार-विनिमय के लिए किया जाता है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि वेद एवं वेदागों को कण्ठस्थ कर लेते थे। उच्चरित भाषा का यह रूप शिष्य अपने गुरु से सीखते है।
2. **लिखित भाषाः-** जब हम अपने मौखिक विचारों को किसी भी लिपि में लिख कर दूसरों तक पहुँचाते है, तो इसे लिखित भाषा कहते हैं। भाषा का लिखित रूप अधिक स्थायी माना जाता है। जब हम अपने विचारों या सन्देश एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना चाहते है तो लिखित भाषा का ही प्रयोग करते है। किसी जाति, समाज अथवा राष्ट्र के विचार, मूल्य, मान्यताएं, ज्ञान आदि लिखित भाषा में ही सुरक्षित रहते हैं।

II. **व्यवहारिक दृष्टि से -** व्यवहारिक दृष्टि से भाषाओं को निम्न वर्गों में रखा जा सकता है -

1. **मूल भाषाः-** संसार की प्रत्येक भाषा किसी न किसी भाषा परिवार की अंग है। मूल भाषा वह भाषा है, जिससे भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अनेक भाषाओं का उदय हुआ। भारोपीय परिवार की मूल भाषा संस्कृत है। इसी प्रकार यूरोप की सभी भाषाओं का जन्म ग्रीक व लैटिन से हुआ है। अतः ये दोनों मूल भाषाएं हैं। द्रविड़ परिवार की एक ही मूल भाषा थी, जिससे कालान्तर में तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम का उदय हुआ।
2. **मातृभाषाः-** बालक जन्म के साथ ही जिस भाषा को अपने माता-पिता तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों से सुनता है तथा उसका अनुकरण करके सीखता है

और बिना किसी श्रम के अनायास ही उस भाषा को सीख लेता है, वह भाषा मातृ भाषा कहलाती है।

3. **प्रादेशिक भाषाः-** किसी प्रदेश विशेष में प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा को प्रादेशिक भाषा कहा जाता है। उत्तर भारत के एक बड़े क्षेत्र में प्रयोग होने वाली हिन्दी भाषा इस क्षेत्र की प्रादेशिक भाषा कही जा सकती है। इसी तरह पंजाब प्रान्त में प्रयोग होने वाली पंजाबी भाषा, बंगाल प्रान्त में प्रयोग होने वाली बंगाली भाषा इन प्रदेशों की प्रादेशिक भाषाएं कही जा सकती है। एक प्रादेशिक भाषा में कई प्रकार की बोलियां सम्मिलित हो सकती है।

4. **राजभाषाः-** भारतीय स्वन्तत्रता संघर्ष के दौरान यह अनुभव किया गया कि भारत के लिए एक प्रतिनिधि या सम्पक्र भाषा की आवश्यकता है। उस समय हिन्दी भाषा की अपेक्षाकृत अधिक लोगों के द्वारा बोली जाने के कारण जन-सम्पक्र की भाषा के रूप में अपनाया गया। सन् 1963 के राजभाषा अधिनियम में राजकीय कार्यों में हिन्दी भाषा के प्रयोग पर बल दिया गया।

5. **राष्ट्र भाषाः-** भारत में अनेक भाषाएं प्रयोग की जाती हैं। हिन्दी भाषा को भारत की राष्ट्र भाषा या राजभाषा माना गया है क्योंकि प्रशासन, व्यापार, अन्य मामलों तथा भावात्मक एकता बनाने में इसी को अपनाया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा हिन्दी तथा लिपि देवनागरी स्वीकार की गई है।

6. **अन्तर्राष्ट्रीय भाषाः-** वह भाषा जो विश्व के सभी राष्ट्रों के परस्पर पत्र-व्यवहार, व्यापार तथा विचार-विनिमय का माध्यम हो वह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहलाती है। यह भाषा सभी राष्ट्रों को एक दूसरे के निकट लाने के

लिए एक कड़ी का काम करती है। वर्तमान समय में अंग्रजी भाषा को यह गौरव प्राप्त है।

7. **सांस्कृतिक भाषाः- वह** भाषा जिससे किसी देश या समाज या जाति की सभ्यता व संस्कृति के सभी तत्व - धर्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था, कला, संगीत, साहित्य, विज्ञान, आचार-विचार, सामाजिक परंपराएं व मान्यताएं संग्रहीत होती है, वह सांस्कृतिक भाषा कहलाती है। उस संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए किसी न किसी भाषा की आवश्यकता होती है, वह भाषा सामान्यतः जन साधारण की भाषा से अधिक उदात्त होती है। इसलिए जन-समुदाय उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। संस्कृत भाषा भारत की सांस्कृतिक भाषा है।

1.7 संस्कृत भाषा का अन्य भारतीय भाषाओं से सम्बन्ध

देववाणी व सुर भारती आदि नाम से अलंकृत की जाने वाली भाषा संस्कृत का स्थान समस्त भाषाओं में सर्वोत्तम है। आधुनिक भारतीय भाषाओं का संस्कृत से सीधा सम्बन्ध है। अतः इनका संस्कृत के माध्यम से ज्ञान करना सुगम है। संस्कृत की जीवन शक्ति तथा सक्षमता पर सभी मुग्ध है। इनके बारे में सत्य कहा गया है-

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।

आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्यः।।

मानव परिवार की भाँति भाषाओं के भी परिवार होते हैं। एक परिवार की सभी भाषाओं में शब्दावली तथा पद रचना सम्बन्धी समानताएं होती हैं। इन सभी भाषाओं को चार परिवारों में बाँटा गया हैंः-

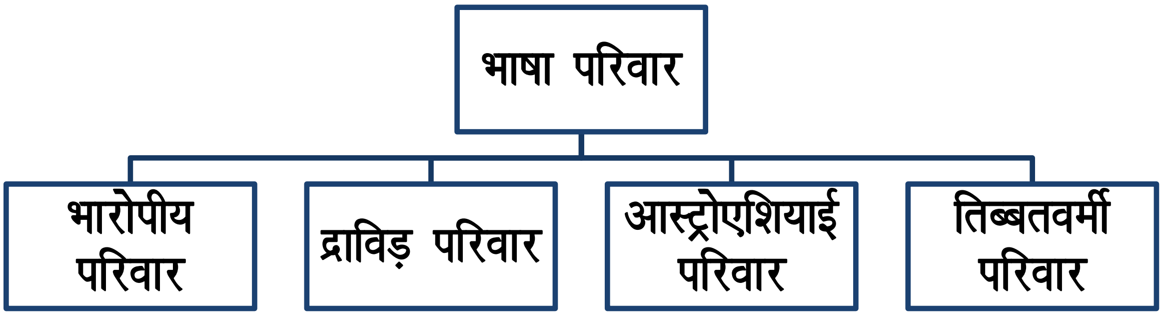

भारत में प्रथम दो परिवारों का स्थान है। भारतीय संविधान में जो भाषाएं मान्यता प्राप्त है वे इस प्रकार हैं - संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, काश्मीरी, उर्दू, बंगाली, आसामी, उड़िया, मराठी, गुजराती, सिन्धी, नेपाली, कोंकणी आदि भारोपीय परिवार के अन्तर्गत आती है। तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड आदि द्रविड़ परिवार के अन्तर्गत आती है। संस्कृत को छोड़कर उपर्युक्त सभी भाषाएं भारत की अर्वाचनी भाषाएं हैं, जो भिन्न प्रदेशों में बोली जाती हैं। संस्कृत भाषा का सम्बन्ध ऐतिहासिक दृष्टि से भारोपीय भाषा परिवार से है। यह परिवार प्राचीन आर्यो का भाषा परिवार था। संस्कृत भाषा की भारोपीय परिवार में स्थिति को निम्नांकित तालिका का रूप में दिखाया जा सकता है :-

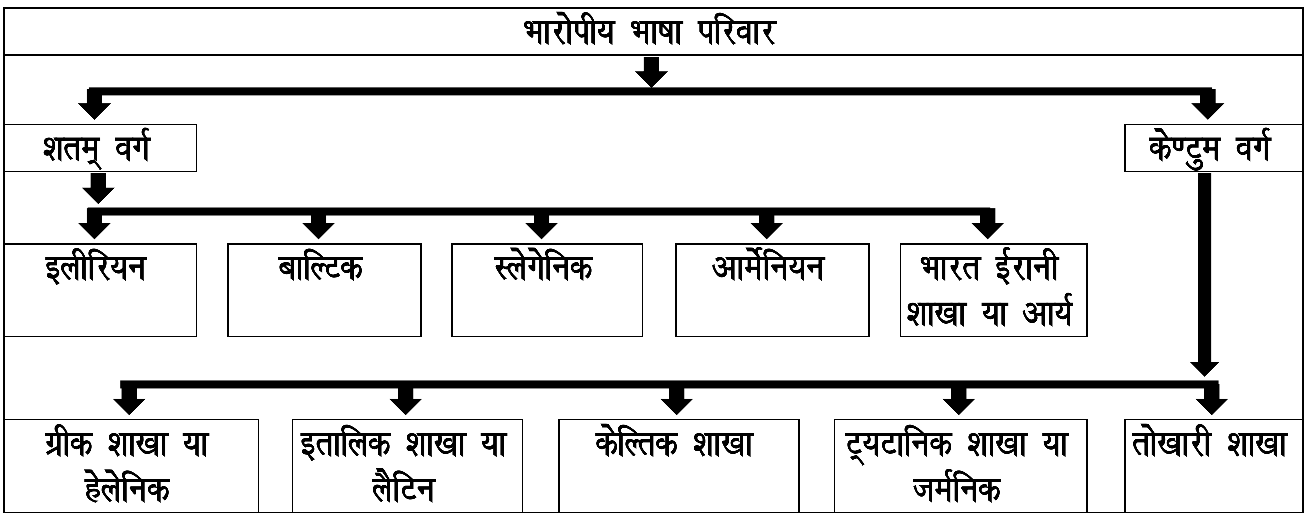

इस प्रकार स्पष्ट है कि शतम् तथा केण्टुम वर्ग की भाषाओं को बोलने वाले एक ही परिवार के लोग थे। यह स्थान भारत तथा यूरोप का मध्यवर्ती भाग बताया जाता है। इन लोगों के दूरस्थ प्रदेशों में जा बसने से एक ही भाषा शतम् तथा केण्टुम दो वर्गों में बँट गई।

यूनानी तथा लातीनी भाषाएं केण्टुम वर्ग की तथा भारत ईरानी भाषाएं शतम् वर्ग की प्रमुख भाषाएं है। वैदिक संस्कृत भारत ईरानी भाषा का भारतीय रूप है। शनैः शनैः आर्य भाषा परिवार का स्वरूप निम्नवत् हुआ -

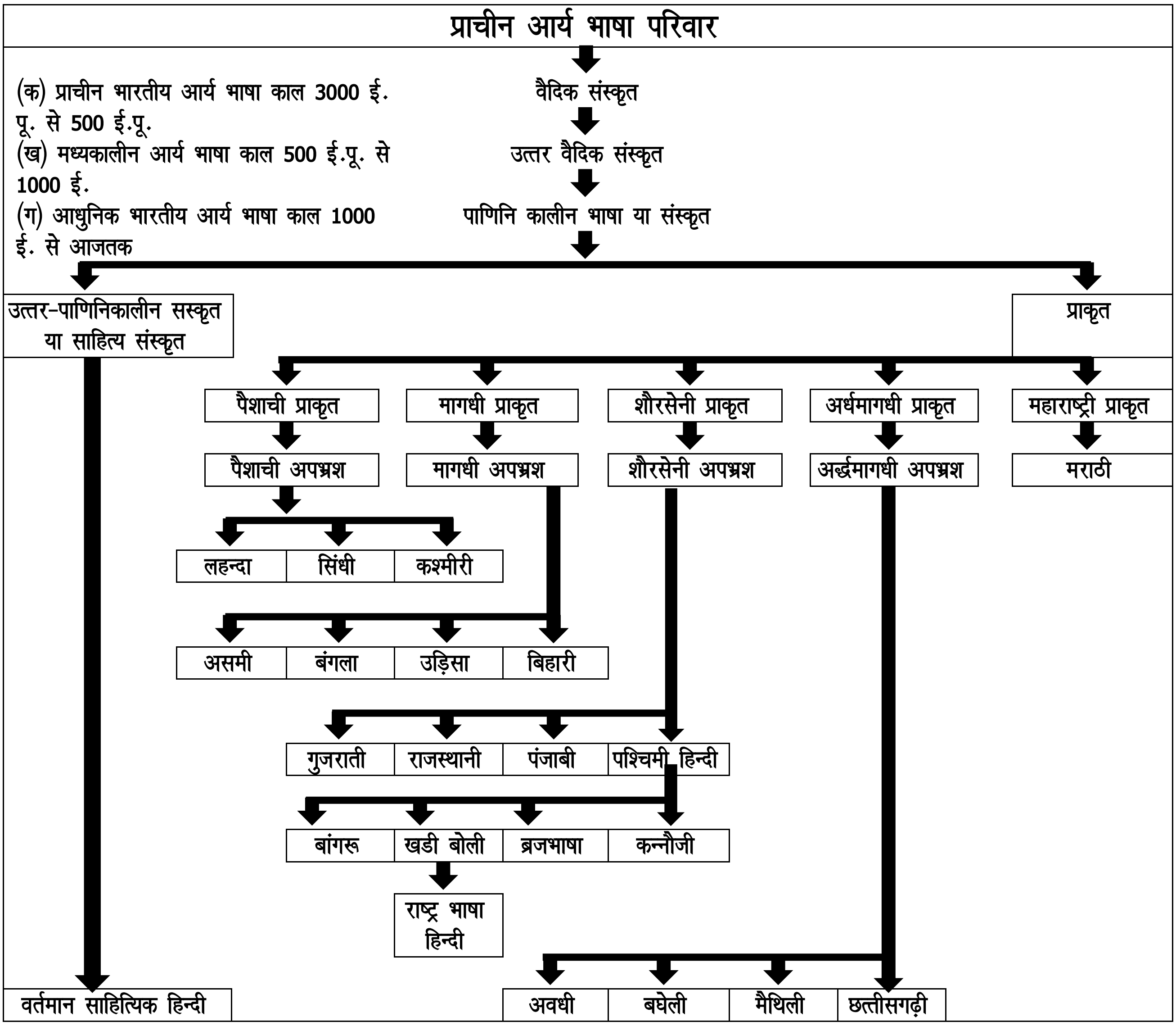

वैदिक संस्कृत हिन्दी ईरानी भाषा वर्ग से सम्बन्धित है। कालान्तर में हिन्दी ईरानी शाखा तीन वर्गों में विभक्त हो गई - ईरानी शाखा, दरद् शाखा तथा भारतीय आर्य शाखा। भारतीय आर्य शाखा की प्रमुख भाषा वैदिक संस्कृत थी, जिसके भारत में विकास को तीन कालखण्डों में विभक्त किया गया है -

1. प्राचीन आर्य भाषा काल (प्रारम्भ से 500 ई.पू. तक) - इसके अन्तर्गत वैदिक पूर्वपाणिनिकाल तथा पौराणिक संस्कृत काल सम्मिलित हैं। वैदिक काल में वैदिक संस्कृत का जो मूल रूप था, उसमें सर्वप्रथम ऋग्वेद तत्पश्चात् तीन अन्य वेदों की रचना हुई। आर्यों का प्रसार सप्तसिन्धु में धीरे-2 पूरे उत्तरी भारत में हो गया, जिसे आर्यावर्त्त कहा गया। इस समय भी संस्कृत भाषा को वैदिक, छान्दस् अथवा प्राचीन संस्कृत कहा गया।

पूर्व पाणिनिकाल या उत्तर-वैदिक काल या निरूक्त काल में यास्क ऋषि ने वैदिक भाषा के व्याकरण 'निरूक्त' की रचना की। इसी समय वेदांगों, शुल्व, निघाटुकोष, धर्मसूत्र, धनुर्विद्या, संगीत, गणित से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना हुई।

पाणिनिकाल जो गौतम बुद्ध से पूर्व माना जाता है - में संस्कृत की शुद्धता को बनाये रखने की दृष्टि से पाणिनि ने व्याकरण ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' का प्रणयन किया। इस समय यह समाज के उच्चवर्ग के साथ-साथ जनसामान्य की भाषा थी, जिसमें रामायण, महाभारत तथा पौराणिक ग्रन्थ रचे गये।

पाणिनि के उपरान्त कात्यायन व पतंजलि ने व्याकरण शास्त्रों की रचना की। इसी समय षट्दर्शनों, धर्मशास्त्रो तथा सूत्र साहित्य की रचना हुई। इस काल के बाद भाषा के दो रूप प्राप्त होते हैं- प्रथम उच्चवर्ग, ब्राह्मणों, विद्वानों तथा साहित्यकारों

द्वारा पोषित देववाणी संस्कृत तथा द्वितीय - व्याकरण सम्मत संस्कृत से च्युत होने वाली जनसामान्य की भाषा, जिसे प्राकृत कहा गया।

2. मध्यवर्ती आर्य भाषा काल (500 ई.पू. से 1000 ई. तक) - इस समय संस्कृत से अनेक उपभाषाएं उद्भूत हुई, जो समस्त एशिया में प्रचलित हो गई थी। एक तरफ साहित्यिक संस्कृत प्रचलित रही, जिस पर विविध ग्रन्थों - काव्य, पुराण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, संगीत, आयुर्वेद, षट्दर्शन, वास्तुशास्त्र, बौद्धग्रन्थ, जैनग्रन्थ, नाट्यशास्त्र की रचना होती रही, दूसरी ओर जनसामान्य की भाषा प्राकृत का विकास हुआ। उत्तर भारत में स्थानीय आवश्यकतानुसार प्राकृत भाषा के अनेक रूप विकसित हुए। इसके बाद प्राकृत भाषा का रूप और बिगड़ने लगा, जिसे 'अपभ्रंश' कहा गया। अतः सभी प्राकृत भाषाओं के बदले रूप जनसाधारण की भाषाएं बनी।

3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाकाल (1000 ई. से आज तक) - समय के साथ-साथ अपभ्रंश भाषाओं में भी परिवर्तन हुआ, जो निम्नलिखित रूप में हुआ -

पैशाची अपभ्रंश से लहन्दा, सिन्धी, कश्मीरी। शौरसेनी अपभ्रंश से गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी व पश्चिमी हिन्दी। अर्द्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी। मगधी अपभ्रंश से असमी, बंगला, उड़िया, बिहारी। महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी भाषा उत्पन्न हुई।

कालान्तर में पश्चिमी हिन्दी से स्थानीय वातावरण के अनुरूप निम्नलिखित बोलियां निकली -

बाँगरू	-	हरियाणा
खड़ीबोली	-	दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर

ब्रजभाषा - ब्रजभूमि, मथुरा के आस-पास

बन्देली - बुन्देलखण्ड क्षेत्र - झासी, चित्रकूट, फतेहपुर

कन्नौजी - कानपुर, उरई, जालौन, कन्नौज

पूर्वी हिन्दी से निम्नलिखित बोलियां उत्पन्न हुई -

अवधी - अयोध्या, बनारस के आस-पास

बघेली - रूहेलखण्ड क्षेत्र

छत्तीसगढ़ी - छत्तीसगढ़, बिहार क्षेत्र

मैथिली - मगध के आस-पास

ये सभी बोलियां हिन्दी के अन्तर्गत आती है। जिसं भारतीय संविधान में राष्ट्र भाषा का दर्जा प्राप्त है तथा संविधान के अनुच्छेद 351 में कहा गया है कि केन्द्र हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपनी शब्दावली के लिए संस्कृत को प्रमुखता देगा। इस बात से स्पष्ट है कि संस्कृत न केवल आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी है बल्कि वर्तमान में भी उसकी पोषक है।

द्रविड़ परिवार की भाषाएंः- दक्षिण भारत और श्रीलंका की सभी भाषाएं द्रविड़ भाषा परिवार से सम्बन्ध रखती है। श्रीलंका में सिंहली, तमिलनाडु में तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु भाषा मूल द्रविड़ भाषा से विभक्त होकर प्रचलित हुई। हिन्दी के बाद तेलुगू बहुसंख्यक भाषा है। उत्तर भारत की भाषाओं से इनका सम्बन्ध बहुत कम है, किन्तु इन भाषाओं में विद्वानों ने संस्कृत साहित्य से अपनी भाषाओं को समृद्ध बनाया तथा संस्कृत के अनेक शब्दों को ग्रहण किया। सभी द्रविड़ भाषाएं संस्कृत साहित्य से समृद्ध हुई। इस तरह संस्कृत भाषा इनकी धाय माँ कही जा सकती है।

1.8 संस्कृत भाषा का आधुनिक संदर्भ में महत्त्व

संस्कृत भाषा भारत की ही नहीं, विश्व की प्राचीनतम भाषा है। जब संसार के अन्य देशों में लोग संस्कृति की शैशवावस्था में थे तब भारत में आर्य लोग सुसभ्य और सुसंस्कृत भाषा व साहित्य के माध्यम से ब्रह्मज्ञान का दर्शन कर रहे थे। उनके इसी ज्ञान ने उन्हें विश्व का आध्यात्मिक गुरु बनाया था। तभी तो मनुस्मृति में वर्णित है -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवः।।

अर्थात 'विश्व के प्रत्येक भाग से ज्ञान के जिज्ञासु इस देश के प्रतिभाशाली पण्डितों या विद्वानों से शिक्षा ग्रहण करेगें।' संस्कृत का महत्त्व केवल भारतीयों के लिए ही नहीं है, अपितु यह समस्त संसार के लिए उपयोगी है। सर विलियम जोन्स ने कहा था ''संस्कृत यूनानी भाषा से अधिक समृद्ध, लैटिन से अधिक विस्तृत और दोनों भाषाओं से अधिक सुसंस्कृत और परिष्कृत है।'' भारतीय संस्कृति संस्कृत की देन है। संस्कृत आयोग ने लिखा है, ''संस्कृत ही वह भाषा है, जिसके द्वार भारतीय सभ्यता ने वैदिक काल में जन्म लेकर लगभग 4000 वर्षों तक अपनी अभिव्यक्ति संस्थापित की है।'' भारतीय समाज का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो संस्कृतमय न हो। अस्तु संस्कृत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, भाषागत, ऐतिहासिक, धार्मिक व आध्यात्मिक, राजनैतिक, व्यावसायिक तथा कलात्मक महत्त्व का विवेचन निम्नलिखित रूप से अपेक्षित है -

1.8.1 साहित्यिक महत्त्वः- भारत में ज्ञान को सदैव से पवित्र माना जाता है। ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र भी माना गया है। वैदिक कालीन ऋषियों, मुनियों,

आत्मद्रष्टा योगियों ने सत्य को विभिन्न नामों से स्वीकार करते हुए ज्ञान का प्रचार किया। वेद विश्व की प्राचीनतम रचनाएं हैं। संस्कृत-साहित्य अत्यन्त विशाल है। संस्कृत भाषा के विशाल साहित्य को दो भागों में बांटा गया है - (i) वैदिक साहित्य (ii) लौकिक साहित्य

1.8.1.1 वैदिक साहित्यः- वैदिक साहित्य अन्तर्गत कालक्रमानुसार दो खण्ड माने जाते है। पूर्व वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल। पूर्व वैदिककाल में चार वेद तथा उनसे सम्बन्धित वैदिक संहिताओं का प्रणयन किया गया। उत्तर वैदिककाल में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा षड्वेदांगों की रचना हुई।

1.8.1.2 लौकिक साहित्यः- संस्कृत का लौकिक साहित्य भी ज्ञान का अगाध भण्डार है इसमें विभिन्न विधाओं पर अनेकानेक महत्वपूर्ण ज्ञानवर्धक ग्रन्थ महान कवियों द्वारा लिखे गए। लौकिक सात्यि के अन्तर्गत मुख्य रूप से काव्यशास्त्र, भाषाविज्ञान, कोषसाहित्य, दर्शनसाहित्य, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, इतिहास, भूगोल, खगोलशास्त्र, ज्योतिष, समाजशास्त्र, विज्ञान, संगीत शास्त्र हैं।

1.8.1.2.1 काव्यशास्त्रः- काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अभिनवगुप्त, आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ तथा क्षेमेन्द्र आदि विद्वानों ने रस, ध्वनि साधारणीकरण एवं वक्रोति जैसे सर्वमान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था। वे आज भी प्रतिभा और आलोचना सम्बन्धी क्षमता के परिचायक है।

1.8.1.2.2 दर्शनशास्त्रः- संस्कृत साहित्य भारतीय दर्शन की अमूल्य निधि को संजोए हुए है। विश्व में भारतीय दर्शन ही सर्वोच्च दर्शन है। पाश्चात्य देशों में प्लेटो के जिस दर्शन की भूरि-2 प्रशंसा की जाती है यदि उसका विश्लेषण किया जाये जो पता चलता है कि उसका आधार भारतीय दर्शन ही है। जीवनभर अपनी भौतिक

आवश्यकताओं के चक्कर में पड़ा हुआ मानव यदि तनिक गम्भीरतापूर्वक सोचता है तो उसे प्रतीत होता है कि सतत प्रयत्न करने पर भी उसे सतत सुख की प्राप्ति नहीं हो पाती। ऐसी मन स्थिति में वह प्रकृति से अधिक शक्तिशालिनी सत्ता का सहारा लेता है और उस सत् की खोज कर ही लेता है जिसमें सत्तावान् सुख और शान्ति है। इसी सत् की खोज का नाम भारत में दर्शन है। संस्कृत साहित्य में भारतीय दर्शन की दो शाखाएं है - आस्तिक व नास्तिक। नास्तिक दर्शन में चार्वाक, जैन, बौद्ध दर्शन आते हैं। आस्तिक दर्शनों में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा आते है।

1.8.1.2.3 राजनीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्रः- कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक राजनीति का ग्रन्थ है। इसमें राजा और राष्ट्र को अर्थवान् व समृद्धिशाली बनाने की योजनाएं दी गयी है। इसमें राजनीति से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष का बहुत ही बारीकी से प्रस्तुतीकरण किया गया है। इतना ही नहीं संस्कृत साहित्य में उपलब्ध अमर वाक्य 'अहिंसाः परमो धर्मः, वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः, विश्वबन्धुत्वम् आज भी सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में बाँधने में सक्षम है।

1.8.1.2.4 व्यावसायिक महत्त्वः- व्यावसायिक दृष्टि से भी संस्कृत का बहुत महत्त्व है। संस्कृत ग्रन्थों में चिकित्सा, ज्योतिष, वास्तुकला, शिल्प, संगीत ग्रन्थों को आत्मसात् करके इन क्षेत्रों में व्यावसायिक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

1.8.1.2.5 आयुर्वेदः- ऋग्वेद काल से ही भारत का आयुर्वेद शास्त्र अत्यन्त उच्चकोटि का रहा है। विभिन्न रोगों के निवारणार्थ विभिन्न प्रकार की चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित रही है। आत्रेय, कश्यप, हारीत, अग्निवेश ऋषियों द्वारा इस विषय

की शिक्षा दी जाती थी तथा भारद्वाज, पुनर्वसु, चरक, सुश्रुत, जीवक आदि प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री थे।

1.8.1.2.6 गणितः- संस्कृत में अंकगणित, बीजगणित व रेखागणित तीनों रूप प्राप्त होते हैं। अंकगणित में अंक निर्विवाद रूप से भारत की खोज थी। शून्य व दशमलव की खोज आर्यभट्ट ने 500 ई. में की थी। बीज गणित का उल्लेख आर्यभट्ट की रचना में मिलता है। अनेक गणितीय सूत्र वैदिक गणित में आज भी उपलब्ध है।

1.8.1.2.7 भौतिक विज्ञानः- भौतिक विज्ञान के प्रवर्तक कणाद मुनि माने जाते हैं। जिन्होंने अणुवाद की खोज द्वारा सृष्टि के निर्माण की महत्वपूर्ण खोज की। उदयनाचार्य, वाचस्पति मिश्र, विज्ञानभिक्षु प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुए।

1.8.1.2.8 रसायन विज्ञानः- संस्कृत साहित्य में रसायन विज्ञान से सम्बन्धित रस-रत्नाकर, रसहृदय, रसार्णव एवं रसेन्द्र चूड़ामणि आलौकिक ग्रन्थ है। लगभग 3000 वर्ष से अपने स्थान पर जंगरहित खड़ा मेहरोली का स्तम्भ क्या आज के Stainless steel को चुनौति नहीं दे रहा।

1.8.1.2.9 वनस्पति विज्ञानः- आयुर्वेद में विभिन्न जड़ी-बूटियों के प्रयोग का वर्णन मिलता है, जोकि वनस्पति जगत से ही प्राप्त होती थी। महाभारत काल में वनस्पतियो का एकशुगां, अंशुमती, प्रतन्वती प्रथा काण्डिनी आदि नामों से वर्गीकरण भी किया गया था। जीव विज्ञान का अध्ययन भी ऋग्वेद काल से ही प्रारम्भ हो गया था।

1.8.1.2.10 यन्त्र विज्ञानः- संस्कृत साहित्य में विविध यंत्रों का वर्णन मिलती है। रामायण में वर्णित पुष्पक विमान व दशरथ द्वारा प्रयुक्त शब्द भेदी बाण। महाभारत

में संजय द्वारा धृतराष्ट्र को युद्ध का सजीव वर्णन क्या आज के दूरदर्शन की याद नहीं दिलाता।

1.8.1.2.11 इतिहास, भूगोल एवं खगोलशास्त्रः- संस्कृत साहित्य में पुराण इतिहास लेखन में अतुलनीय है। कल्हण की राजतरंगिणी में कश्मीर का विस्तृत इतिहास मिलता है। जो असंख्य ऐतिहासिक स्त्रोतों पर आधारित है। इसके अतिरिक्त हर्षचरित, नवसहसांक चरित, विक्रमांकदेवचरित सदृश अनेक ग्रन्थ इस क्षेत्र की प्रगति के परिचायक हैं।

वैदिक संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद में जो भौगोलिक ज्ञान प्राप्त होता है, वह आज से भिन्न नहीं है। इनमें जगत् को तीन भागों में बांटा गया है - पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं द्युलोक या स्वर्ग। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि सूर्य न कभी उदित होता है और न कभी अस्त। यह सिद्धान्त आज भी सत्य है। आर्यभट्ट ने सर्वप्रथम कहा था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसके चारों ओर चक्कर लगाती है, इसे बाद में कापरनिकस व गैलीलियो ने माना। भास्कराचार्य की प्रसिद्ध रचना 'सिद्धान्त शिरोमणि' खगोलशास्त्र की प्रामाणिक कृति है।

1.8.1.2.12 समाजशास्त्रः- वैदिक काल में समाज के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए समाज को चार वर्गों - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र में गुणकर्म के आधार पर विभक्त किया गया था। इसी प्रकार मनुष्य के विकास के लिए आश्रमों व संस्कार का विधान किया गया था। मानव जीवन के लक्ष्य-धर्म, अर्थ, काम तथा परम पुरूषार्थ मोक्ष को माना गया है। मनुस्मृति समाजशास्त्र की ऐसी अद्भुत रचना है, जिसमें भारत की वर्तमान सामाजिक अन्तः क्रिया ओं का दिग्दर्शन मिलता है।

1.8.1.2.13 संगीत शास्त्रः- संगीत का सर्वप्रथम ग्रन्थ सामवेद है, जिसमें भारतीय संगीत के सात स्वरों की कल्पना हुई है। इस समय गायन, वादन, नर्तन तीन प्रकार के कलाकार थे, किन्तु प्रारम्भ में वैदिक ऋचाओं का गायन होता रहा होगा। विविध वादयंत्र, गायन विधियां है। संगीत विषय के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध है।

1.8.2 सांस्कृतिक महत्त्वः- संस्कृत भाषा भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इसी भाषा के माध्यम से भारतीय संस्कृति अमर है। आज भी भारतीय संस्कार संस्कृत भाषा में ही कराये जाते है। सभी प्रकार के यज्ञ, कर्मकाण्ड संस्कृत भाषा के माध्यम से होते हैं। वस्तुतः संस्कृत भाषा हमारी संस्कृति का अजस्र स्त्रोत है। इतना ही नहीं यह सांस्कृतिक सम्बन्ध पैदा करती है। आज भी विश्व में संस्कृत भाषा का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

1.8.3 भाषायी महत्त्व – संस्कृत भारोपीय परिवार की प्रमुख भाषा है। यह विश्व की सभी भाषाओं में प्राचीन एवं श्रेष्ठ है। विश्व की सभी भाषाओं पर इस का प्रभाव पड़ा। यह लगभग सभी भारतीय आर्य भाषाओं की जननी है। ये भाषाएं संस्कृत से केवल विकसित ही नहीं हुई हैं अपितु समृद्ध भी हुई है। हिन्दी, मराठी, पंजाबी, गुजराती, बंगला, असमी, उड़िया आदि भाषाएं जो संस्कृत से ही निकली है, इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत की द्रविड़ भाषाएं भी संस्कृत भाषा से पर्याप्त रूप से प्रभावित है। लैटिन और ग्रीक पर संस्कृत भाषा के प्रभाव के विषय में विद्वानों ने एकमत होकर सहमति दे दी है।

भाषा विज्ञान का पहला ग्रन्थ जो विश्व में प्राप्त है, यास्क का 'निरूक्त' है। इतिहासकारों के अनुसार इसकी रचना सम्भवत् 1500 ई.पू. में हुई थी। इस ग्रन्थ में 'यास्क' ने निघण्टु' के शब्दों की व्याख्या की है। निघण्टु वैदिक शब्दों का संग्रह

है। यास्क के पश्चात् ‘पाणिनी’ तथा पतंजलि महान वैयाकरण हुए है। पाणिनी जी ने अपनी ‘अष्टाध्यायी’ में संस्कृत का सूक्ष्मतम विवेचन किया है। उन्होंने ध्वनि विज्ञान, अर्थविज्ञान, पदविज्ञान तथा वर्णनात्मक व्याकरण का वैज्ञानिक विवेचन किया है। वस्तुतः पाणिनी भारत के ही नहीं अपितु विश्व के सर्वोत्कृष्ट वैयाकरण हुए हैं।

1.9 सारांश

उपर्युक्त विवेचन में संस्कृत भाषा की प्रकृति तथा भाषा की आधुनिक परिभाषाओं का वर्णन किया गया है। भाषा के विविध रूपों का उल्लेख किया गया है। साथ ही साथ संस्कृत भाषा को विश्व के भाषा परिवारों के सम्बन्धों की चर्चा की गई है। संस्कृत भाषा के आधुनिक संदर्भ में महत्त्व से अवगत कराया गया है। एक आधुनिक भाषा के रूप में इनकी प्रकृति की जानकारी दी गई है।

1.10 कठिन शब्दावली

- प्रागैतिहासिक काल = इतिहास से पूर्व का युग
- कालातीत = काल से परे
- यादृच्छिक = स्वतन्त्र / ऐच्छिक
- कुटुम्बकम् = परिवार

1.11 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) भाषा अर्जित सम्पत्ति है। (ब) भाषा प्रतिकात्मक है।

2. भाषा शब्द की व्युत्पत्ति भाष् धातु से हुई है।

1.12 संदर्भ एव सहयोगी ग्रन्थ

1. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-5
2. द्विवेदी, पदम श्री कपिलदेव, भाषा-विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, विश्वविद्यालय प्राकाशन चौक, वाराणसी-221001
3. मित्तल, डॉ. सन्तोष, संस्कृत शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001
4. मिश्र, डॉ. सन्त कुमार, संस्कृत - शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, बेगम ब्रिज रोड, मेरठ-250001-37001
5. शास्त्री, श्री चारू चन्द्र, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन चौक, पोस्ट बॉक्स नं. 069, वाराणसी-221001
6. सिंह, राम किशोर, पाठ्यक्रम में भाषा, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, बेगम ब्रिज रोड, मेरठ-250001

1.13 अभ्यास प्रश्न

1. संस्कृत भाषा की प्रकृति तथा भाषा की आधुनिक परिभाषाओं का वर्णन कीजिए।
2. भाषा की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. भाषा के विविध रूपों का उल्लेख कीजिए।
4. संस्कृत भाषा का अन्य भारतीय भाषाओं से सम्बन्ध का वर्णन कीजिए।
5. संस्कृत भाषा का आधुनिक संदर्भ में क्या महत्त्व है? वर्णन कीजिए।

पाठ – 2

संस्कृत भाषा शिक्षण के सिद्धान्त तथा उनका माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के शिक्षण में अनुप्रयोग

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 संस्कृत भाषा शिक्षण के सिद्धान्त

2.4 स्वयं आकलन प्रश्न

2.5 संस्कृत भाषा के शिक्षण सूत्र

2.6 सारांश

2.7 कठिन शब्दावली

2.8 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

2.9 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भाषा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करती है। यह मनुष्य को अपने विचारों को संप्रेषित करने के योग्य बनाती है। अतः इसका शिक्षण अत्यन्त ही प्रभावपूर्ण होना चाहिए। संस्कृत भाषा के शिक्षण सिद्धान्तों के लिए तो यह बात और भी आवश्यक हो जाती है क्योंकि संस्कृत भाषा तो भारतीय परिदृश्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान की भाषा है। यह साहित्य, संस्कृति एवं संस्कार की भाषा है। अतः इस भाषा का शिक्षण करते समय भाषा शिक्षण के सामान्य सिद्धान्तों एवं शिक्षण सूत्रों का प्रयोग कैसे किया जाए? यह एक विचारणीय विषय है।

2.2 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् -

1. संस्कृत भाषा शिक्षण के सिद्धान्तों से परिचित होगें।
2. संस्कृत भाषा शिक्षण सूत्रों की व्याख्या करने में सक्षम होगें।
3. संस्कृत भाषा शिक्षण के सिद्धान्तों का माध्यमिक स्तर पर प्रयोग करने में सक्षम होगें।

2.3 संस्कृत भाषा शिक्षण के सिद्धान्त

शिक्षण शब्दकोष के अनुसार, ''शिक्षण सिद्धान्त एक विचार अथवा सामान्यीकरण है, जो छात्रों को शैक्षिक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति में शिक्षकों की पथ-प्रदर्शन सदृश सेवा करता है।'' इस प्रकार शिक्षण सिद्धान्तों द्वारा शिक्षक अपने शिक्षण को रोचक व प्रभावशाली बना सकता है। भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, जो अनुकरण व अभ्यास द्वारा सीखी जाती है। किसी भी भाषा के ज्ञान से तत्कालीन समाज का

ज्ञान होता है। फिर संस्कृत भाषा में तो इस प्रकार के ज्ञान का बाहुल्य है। संस्कृत भाषा की कथा भारतीय संस्कृति के विकास की कथा है। संस्कृत-साहित्य के महत्त्व को देखते हुए भारत में संस्कृत भाषा माध्यमिक कक्षा से लेकर उच्च माध्यमिक कक्षाओं तक अनिवार्य तथा वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है।

संस्कृत भाषा अनेक मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक सिद्धान्तों पर आधारित है तथा इस भाषा की प्रकृति भी अन्य भाषाओं से भिन्न है। इनकी विशेषताओं को देखते हुए भाषा शिक्षण के सिद्धान्तों का अनुकरण करना चाहिए। संस्कृत भाषा शिक्षण सिद्धान्तों का वर्णन इस प्रकार हैः-

2.3.1 स्वाभाविकता का सिद्धान्तः- भाषा सीखना जीवन की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इस प्रवृति के कारण ही बालक मातृभाषा आसानी से सीख लेता है। बालक का क्षेत्र जैसे-जैसे बढता है, उसे भाषा का मौखिक ज्ञान अधिक होता जाता है। वह अपने सम्पक्र में आने वाले मित्रों की भाषा, आस-पड़ोस में बोली जाने वाली भाषा तथा विद्यालय में सिखाई जाने वाली भाषाओं को भी सीख लेता है। अतः भाषा के सभी कौशलों - सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना, चिन्तन को स्वाभाविक रूप से सिखाना चाहिए। भाषा सीखने की इस स्वाभाविक प्रवृति का उपयोग संस्कृत शिक्षण में सहायक होता है। इस प्रवृति के विकास के लिए संस्कृत शिक्षक निम्नलिखित साधनों को अपना सकते है -

- दैनिक बोलचाल में सरल संस्कृत वाक्यों का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करे।
- सरल श्लोकों व बाल गीतों का सस्वर वाचन करवाया जाए।

- शिक्षक स्वयं भी संस्कृत में वार्तालाप करे।
- मौखिक रूप से शुद्धोच्चारण का अभ्यास करवाए।
- छात्रों को संस्कृत की सूक्तियों और श्लोकों को याद करने के लिए प्ररित करें।

2.3.2 रुचि का सिद्धान्तः- यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि जिस विषय में छात्र की अधिक रुचि होगी वह उसे पढ़ने के लिए उतना ही अधिक प्रेरित होगा। बिना रुचि के कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। अतः संस्कृत भाषा शिक्षण में भी छात्रों में रुचि उत्पन्न करने के लिए संस्कृत अध्यापक को निम्नलिखित ढ़ग अपनाना चाहिए -

- इसके लिए अध्यापक दृश्य-श्रव्य उपकरणें को प्रयोग करें।
- अन्त्याक्षरी, वाद-विवाद, भाषण, निबन्ध, लेखन, सस्वर वाचन आदि से सम्बन्धित पाठ्यसहगामी क्रिया ओं से भी संस्कृत शिक्षण रुचिकर बन जाता है।
- नए पाठ को छात्रों से पूर्व ज्ञान से जोड़कर पढ़ाया जाए।
- पाठ का स्पष्टीकरण दैनिक जीवन से सम्बन्धित उदाहरणों से करना चाहिए।
- संस्कृत के कठिन पाठों को सहायक सामग्री, शिक्षण सूत्र व अन्य खेल विधि जैसी शिक्षण विधियों द्वारा सरल करके पढ़ाना चाहिए। अतः संस्कृत पढ़ने में जितनी छात्र की रुचि होगी आवश्यक है उतनी ही शिक्षक की स्वयं की रुचि भी संस्कृत पढ़ाने में होनी आवश्यक है।

2.3.3 क्रिया शीलता एवं अभ्यास का सिद्धान्तः– भाषा विज्ञान के साथ-साथ एक कला भी है। किसी भी कला में दक्ष होने के लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता होती है। अतः संस्कृत भाषा में दक्ष होने के लिए अभ्यास का अपना विशेष महत्त्व है। बालक में कुछ आन्तरिक शक्तियां निहित होती है, जो उन्हें स्वभाव से कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। छात्रों द्वारा स्वक्रिया से अर्जित ज्ञान स्थायी होता है। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह अपने छात्रों को स्वंय कार्य करने के लिए प्रेरित करे। यह स्वक्रिया , अनुकरण व अभ्यास से सरलतापूर्वक प्राप्त की जा सकती है। अतः अध्यापक को निम्नलिखित कार्य अवश्य करने चाहिए –

- कक्षा शिक्षण में सस्कृत वाक्यों का अभ्यास कराना।
- संस्कृत ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण कराने का अभ्यास कराना।
- संस्कृत सुक्तियों व मुहावरों का ज्ञान कराना।
- संस्कृत व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों को शुद्ध कराना।
- संस्कृत में अपने भावों की अभिव्यक्ति करने हेतु अभ्यास करवाना।
- कठिन शब्दों व जटिल वाक्यों का अभ्यास कराना।
- संस्कृत पद्य का सस्वर वाचन का अभ्यास कराना।
- संस्कृत गद्य व पद्य के अंशों का शुद्ध उच्चारण सहित पढ़ने व अर्थग्रहण करने का अभ्यास करना।

2.3.4 मौखिक कार्य का सिद्धान्तः– भाषा सीखने का कार्य कानों व जिह्वा से प्रारम्भ होता है। शैशवावस्था से ही बालक पहले भाषा को सुनता है फिर उसका

अनुकरण करके उसे बोलने का प्रयास करता है। अतः संस्कृत भाषा शिक्षण में भी पहले मौखिक कार्य करवाया जाए बाद में लिखित कार्य।

अर्थ अवबोध की दृष्टि से सुनना कितना महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में महर्षि जैमिनी ने कहा है -

''श्रोत्रग्रहणेहि अर्थे लोके शब्दः प्रसिद्धः''

अर्थात संसार में शब्द का अर्थ सुनने से ही ग्रहण किया जाता है। किसी भी भाषा को सीखने के लिए भाषा के चार कौशलों - सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना की आवश्यकता होती है। इनमें सुनना सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रारम्भ में बालक अनुकरण द्वारा सीखता है। अतः भाषा ज्ञान देते समय पहले मौखिक फिर लिखित कार्य पर बल देना चाहिए। प्राचीन आचार्यों ने भी ज्ञान की प्राप्ति साधनों में श्रवण को प्रथम स्थान दिया है, क्योंकि विषयवस्तु सही ढ़ग से सुनाई ही नहीं पडेगीं तब वह न तो सही ढ़ग से बोली जा सकती, न सही ढ़ग से पढ़ी जा सकती और न ही सही ढ़ग से लिखी जा सकती।

2.3.5 अनुपात तथा क्रम का सिद्धान्तः- संस्कृत भाषा शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों में उचित अनुपात रखा जाए। साथ ही उद्देश्यों पर क्रमानुसार बल दिया जाए। जिस उद्देश्य की पूर्ति पहले आवश्यक है, उस पर पहले बल दिया जाए तथा जिस उद्देश्य की पूर्ति की आवश्कता बाद में हो तो उस पर बाद में बल दिया जाए। संस्कृत के विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए-

- मौखिक कार्य अधिक से अधिक करवाया जाए।

- शुद्धोच्चारण का अभ्यास करवाया जाए।
- छात्रों के शब्द भण्डार में वृद्धि की जाए। श्लोको को कंठस्थ करवाया जाए।
- छात्रों को सस्वर वाचन, विराम चिन्हों व भाव सहित वाचन करने का अभ्यास करवाया जाए।
- शुद्ध लेखन के अवसर प्रदान किए जाए।
- व्याकरण नियमों का ज्ञान करवाया जाए।
- अनुवाद, रचना एवं सृजनात्मक कार्य करवाया जाए।

प्रारम्भिक स्तर पर मौखिक कार्य पर अधिक बल दिया जाए। माध्यमिक स्तर पर पाठ्य पुस्तक व उसके आधार पर व्याकरण का ज्ञान करवाया जाए। उच्च स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन, अनुवाद तथा रचना कार्य अधिक करवाया जाए।

2.3.6 वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धान्तः– सभी छात्रों की भाषा सम्बन्धि योग्यताएं समान नहीं होती। प्रत्येक छात्र एक दूसरे से भिन्न होते है। कक्षा में कुशाग्र बुद्धि वाले, सामान्य बुद्धि वाले तथा मंदबुद्धि वाले छात्र पाए जाते हैं। अतः छात्रों का पूर्वज्ञान, मानसिक योग्यता, उच्चारण, वाणी आदि संस्कृत भाषा सीखने को प्रभावित करते हैं। भाषा एक कौशल है और इस पर अधिकार व्यक्तिगत क्षमता के आधार पर सम्भव है। ऐसी स्थिति में शिक्षक को चाहिए कि वह जहाँ मंदबुद्धि वाले छात्रों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करे, वही कुशाग्र बुद्धि वाले छात्रों का भी उचित मार्गदर्शन करें। संस्कृत शिक्षण में तो ऐसा करना अति आवश्यक है क्योंकि यह दैनिक प्रयोग की भाषा नहीं होने के कारण इसमें उच्चारण, वर्तनी व व्याकरण नियमों के सीखने में कठिनाई होती है।

2.3.7 समवाय का सिद्धान्तः- इस सिद्धान्त के अनुसार संस्कृत शिक्षक अपने शिक्षण को रोचक बनाने के लिए विषयवस्तु व कक्षा के स्तरानुसार विविध सिद्धान्तों के सकारात्मक पक्षों को प्रयोग में लाता है। जैसे किसी श्लोक को पढ़ाते समय तत्सम्बन्धी कवि, ग्रन्थ का नाम, प्रसंग, संदर्भ आदि की जानकारी देते हुए भौगोलिक परिस्थिति, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आदि पर प्रकाश डालते हुए छात्रों के व्याकराणिक ज्ञान को पुष्ट करता है। इसमें पाठ्यसहगामी क्रिया ओं व श्रव्यदृश्य उपकरणों का प्रयोग करते हुए उस विषय को रोचक बनाने का प्रयास किया जाता है।

2.3.8 जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्तः- ज्ञान को स्थायी बनाने व रुचि जाग्रत करने के लिए पढ़ाते समय विषयवस्तु को जीवन से सम्बन्धित करना चाहिए। इससे छात्र सरलता से सीख भी लेंगे तथा उस विषयवस्तु का अपने जीवन में भी उपयोग करेंगे।

2.3.9 प्रेरणा का सिद्धान्तः- प्रेरणा एक ऐसा तत्व है, जो सीखने वाले में सीखने के प्रति एक अतिरिक्त ऊर्जा उत्पन्न कर देता है, तथा वह अपने आप कार्य में लगा रहता है। संस्कृत भाषा व साहित्य के महापुरूषों के गुणों के बखान द्वारा छात्रों को प्रेरित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मौखिक प्रशंसा द्वारा या पारितोषिक या प्रमाण-पत्र के द्वारा सम्बन्धित छात्र या अन्य छात्रों को प्रेरित किया जा सकता है। यह कार्य दैनिक कक्षा में या दैनिक प्रार्थना स्थल पर किया जा सकता है।

2.3.10 बहुमुखी विधि का सिद्धान्तः- इस सिद्धान्त के अनुसार एक ही समय में अनेक पक्षों को लेकर किसी एक ही उद्देश्य की ओर जाना चाहिए। इस प्रकार शिक्षण के उद्देश्य को पूर्णतः प्राप्त किया जा सकता है। छात्रों को कर्म एवं करण कारकों का अन्तर समझाने के लिए इन कारकों से सम्बन्धित कितने ही उदाहरण

दिए जा सकते हैं। छात्रों को भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इस सम्बन्ध में मौखिक कार्य के साथ लिखित कार्य भी कराना होगा।

2.4 स्वयं आकलन प्रश्नः-

- संस्कृत भाषा शिक्षण के दो सिद्धान्त लिखो।
- संस्कृत भाषा के दो शिक्षण सूत्र लिखो।

2.5 संस्कृत भाषा के शिक्षण सूत्रः-

अपने शिक्षण को सरल तथा सुगाह्य बनाने के लिए हरबर्ट स्पेन्सर तथा कॉमेनियस जैसे महान शिक्षा-शास्त्रियों ने अपने-अपने अनुभवों तथा निर्णयों को सूत्र के रूप में प्रकट किया है। शिक्षण सूत्रों द्वारा शिक्षक अपने शिक्षण को सफल और अधिक प्रभावशाली बना सकता है। संस्कृत शिक्षण में भी निम्नलिखित शिक्षण सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है। -

2.5.1 ज्ञात से अज्ञात की ओर -

2.5.2 स्थूल से सूक्ष्म की ओर -

2.5.3 सरल से कठिन की ओर -

2.5.4 पूर्ण से अंश की ओर -

2.5.5 विश्लेषण से संश्लेषण की ओर -

2.5.6 आगमन से निगमन की ओर -

2.5.7 अनिश्चित से निश्चित की ओर -

2.5.8 ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षण

2.5.9 विशेष से सामान्य की ओर -

2.5.10 अनुभव से तर्क की ओर -

2.5.1 ज्ञात से अज्ञात की ओरः- इस सिद्धान्त के अनुसार संस्कृत शिक्षक को पाठ प्रारम्भ करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि वह जो पाठ पढ़ाने जा रहा है, उस पाठ के बारे में छात्र क्या जानते है, उनको पूर्व ज्ञान क्या है? पाठ आरम्भ करने से पूर्व बच्चे कुछ सामान्य ज्ञान प्राप्त कर चुके होते है। इसी सामान्य ज्ञान को आधार मानकर आरम्भ किया जाता है। इस प्रकार नया पाठ पढ़ाने के लिए नये ज्ञान का पूर्व-पठित पाठ से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जिससे छात्र नये ज्ञान को सरलतापूर्वक सीख लेते है। फलतः नये पाठ के प्रति उनकी रुचि जागृत होती है। सर्वप्रथम छात्रों को मातृभाषा में अनेक संस्कृत शब्दों का परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए। इनके आधार पर अगले सोपान की रचना करना चाहिए। जैसे - गुण सन्धि पढाते समय सन्धि की परिभाषा, सन्धि के प्रकार तथा दीर्घ सन्धि से सम्बन्धित प्रश्न पूछते हुए गुण सन्धि की ओर बढ़ा जा सकता है।

2.5.2 स्थूल से सूक्ष्म की ओरः- स्थूल विषयों का ज्ञान प्राप्त करना सुगम है। अतः सर्वप्रथम छात्रों को स्थूल विषय का ज्ञान कराना चाहिए। तदनन्तर सूक्ष्म विषयों का ज्ञान कराया जाना चाहिए। संस्कृत शब्दावली के ज्ञान के समय शब्दों का ज्ञान चित्रों के माध्यम से कराना चाहिए। व्याकरण की सूक्ष्म बाते सिखाते समय परिचित स्थल वाले उदाहरणों से प्रारम्भ करना चाहिए। स्थूल वस्तुओं को पहले प्रस्तुत करना

चाहिए। इसमें उदाहरणों से नियम की ओर तथा नियम से उदाहरण की ओर चलने वाली प्रक्रिया अपनाई जाती है।

2.5.3 सरल से कठिन की ओरः– बालक के पूर्वज्ञान से सम्बन्धित विषय उसके लिए सरल होता है तथा अज्ञात विषयवस्तु उसे कठिन लगता है। इसी प्रकार सर्वप्रथम सरल वाक्यों का परिचय कराना चाहिए फिर कठिन वाक्यों का ज्ञान कराया जाएं। जैसे छनद प्रकरण में सर्वप्रथम अनुष्टुप छोटे तथा सरल छन्दों को पढ़ाना चाहिए उसके पश्चात् वंशस्थ मन्दाक्रान्ता का ज्ञान कराना चाहिए।

2.5.4 पूर्ण से अंश की ओरः– इस सिद्धान्त के अनुसार छात्रों की जो विषयवस्तु पढ़ानी है, सर्वप्रथम उसका पूर्ण रूप प्रस्तुत करते हैं, फिर उसे छोटे-छोटे अंशों में विभक्त करके स्पष्ट करते है। जैसे यदि कोई कहानी बतानी है तो पहले सारांश रूप में छात्रों को कहानी बताते हैं, उसके बाद कहानी के अलग–अलग अंशों की व्याख्या करते हैं।

2.5.5 विश्लेषण से संश्लेषण की ओरः– यह सूत्र 'पूर्ण से अंश की ओर' इस सूत्र का पूरक है। इसमें अलग–अलग करके उदाहरण छात्रों के समक्ष रखे जाते हैं। जैसे सन्धिविच्छेद, समास विग्रह, शब्दों की व्युत्पत्ति आदि अलग–अलग करने के बाद उनके संश्लेषण की प्रक्रिया अपनाई जाती है। इसी प्रकार मातृभाषा से संस्कृत में अनुवाद करते समय प्रत्येक शब्द की संस्कृत जानने के बाद पूर्ण वाक्य बनाया जाता है।

2.5.6 आगमन से निगमन की ओरः– आगमन विधि वैज्ञानिक विधि है तथा सर्वाधिक उपयोगी है। यह शिक्षण सूत्र संस्कृत में व्याकरण शिक्षण करते समय

अत्यन्त उपयोगी है। इसमें 'आगमन' का है 'उदाहरणों का प्रस्तुतीकरण व निगमन से आशय है 'नियम की ओर गमन' अर्थात् पहले छात्रों के समक्ष अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है तथा उदाहरणों की एकरूपता व विशेषता को समझते हुए छात्र नियम पर विचार करते हैं तथा शिक्षक की सहायता से नियम समझकर अपने ज्ञान को परिपुष्ट करते हैं। अभ्यास करवाने के लिए शिक्षक पुनः उदाहरण प्रस्तुत करता है तथा छात्र सीखे गए नियमानुसार उन्हें समझते हैं। इस शिक्षण सूत्र से व्याकरण जैसा नीरस विषय भी सरल हो जाता है।

2.5.7 अनिश्चित से निश्चित की ओरः- प्रारम्भिक स्तर पर छात्रों को कंठस्थ करवाने पर अधिक बल दिया जाता है। धीरे-धीरे कंठस्थ की गई विषयवस्तु के ज्ञान को सुदृढ़ करने के लिए उसकी संरचना का ज्ञान करवाया जाता है। जैसे - चल धातु के लट्लकार के रूप चलति, चलत, चलन्ति चलते है, किन्तु गम् धातु के रूप गमति आदि के स्थान पर गच्छति, गच्छतः, गच्छन्ति चलते है तथा भविष्यकाल में भी रूपों में परिवर्तन हो जाता है।

2.5.8 ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षणः- किसी भी विषय को सीखने में जितनी अधिक ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग किया जाता है, उतना ही अधिगम स्थायी होता है। जैसे - 'आम' के फल के बारे में शिक्षक पढ़ा रहा है, वह व्याख्यान से पढ़ता है तो केवल श्रवणेन्द्रिय का प्रयोग होगा, यदि वह आम का फल दिखाकर अर्थात कान व आँख दोनों ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग करें तो ज्ञान अधिक स्थायी होगा। कानों से बार-बार ध्वनियों के सुनने से, जिह्वा द्वारा उन ध्वनियों का उच्चारण करने से, नेत्रों द्वारा शब्द समूह को पहचानने से, हाथ द्वारा सुन्दर और शुद्ध लेख के अभ्यास से शिक्षक को बालकों के संस्कृत ज्ञान को सुदृढ़ करना चाहिए।

2.5.9 विशेष से सामान्य की ओरः– इस सूत्र के अनुसार उदाहरण से नियम की ओर चलना चाहिए। शिक्षक पहले छात्रों के समक्ष तथ्यों, घटनाओं का उदाहरण प्रस्तुत करता है और स्पष्टीकरण देता है। बाद में छात्रों को सामान्य निष्कर्ष निकलाने को कहता है। जैसे दीर्घ सन्धि पढ़ाने के लिए शिक्षक पहले दीर्घ सन्धि के विभिन्न उदारहण देता है, फिर उनसे सामान्य नियम निकलवाता है जैसे -

विद्या + आलयः — विद्यालयः

दैत्य + अरिः — दैत्यारिः

2.5.10 अनुभव से तक्र की ओरः– शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों को उनके अनुभव के आधार पर ज्ञान दे तथा उसे तक्रसंगत बनाकर स्थायित्व प्रदान करे।

2.6 सारांशः–

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भारत वर्ष का समस्त प्राचीन ज्ञान संस्कृत भाषा में ही है। प्रत्येक भाषा की अपनी कुछ विशेषताएं होती है तथा संस्कृत भाषा शिक्षण करते समय शिक्षक अनेक सिद्धान्तों और शिक्षण सूत्रों का प्रयोग करके अपने शिक्षण को सरल और रोचक बनाता है। अतः संस्कृत शिक्षण करते समय इन सिद्धान्तों और सूत्रों को प्रभावशाली ढ़ग से प्रयोग में लाना चाहिए।

2.7 कठिन शब्दावलीः–

दैत्यारि = दैत्यों के शत्रु

छनद = मात्रा की गणना के अनुसार बना पद्यबध

श्रोग

2.8 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तरः-

1. (i) रूचि का सिद्धान्त, (ii) वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धान्त

2. (i) पूर्ण से अंश की ओर, (ii) ज्ञात से अज्ञात की ओर

2.9 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थः-

1. कुमार, डॉ संजीव, ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, S. Samar Publications, Dharamshala, Distt. Kangra, H.P.- PIN- 176215

2. मित्तल, डॉ सन्तोष, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।

3. मिश्र, डॉ सन्त कुमार, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।

4. वर्मा, डॉ. पूर्णसिंह, संस्कृत-शिक्षण, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी, हरियाणा।

5. मिश्र, डॉ महेन्द्र कुमार, संस्कृत शिक्षण, श्याम प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौडाराजा, जयपुर-302003।

2.10 अभ्यास प्रश्नः-

1. संस्कृत शिक्षण के सामान्य सिद्धान्तों का विश्लेषण कीजिए।
2. शिक्षण-सूत्रों से क्या अभिप्राय है? वर्णन कीजिए।
3. संस्कृत शिक्षण के किन्ही चार सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

पाठ - 3

संस्कृत में भाषा-विज्ञान, धातुरूप, स्वर-सन्धि

<u>संरचना</u>

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 संस्कृत में भाषा-विज्ञान

3.4 धातुरूप

3.5 स्वयं आकलन प्रश्न

3.6 स्वर-सन्धि

3.7 सारांश

3.8 कठिन शब्दावली

3.9 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

3.10 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ

3.11 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावनाः-

विचारों, भावों और अनुभवों को साझा करने का माध्यम भाषा है। इसी भाषा के विशिष्ट ज्ञान को भाषा-विज्ञान कहते है। भाषा मानव व्यवहार की आधार शिला है। वैदिक काल से ही भाषा का अध्ययन होता आ रहा है। भाषा विज्ञान भाषा सम्बन्धित सभी प्रश्नों और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। भाषा में भाषा विज्ञान का विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत पाठ में भाषा विज्ञान के साथ धातुरूपों, स्वर-सन्धि से भी शिक्षार्थी परिचित होगें।

3.2 उद्देश्यः-

इस पाठ के अन्त में शिक्षार्थी :-

- संस्कृत में भाषा-विज्ञान के महत्त्व को समझ सकेगें।
- धातुरूपों को जानने में सक्षम होगें।
- स्वर-सन्धि का वर्णन करने में सक्षम होगे।

3.3 संस्कृत में भाषा-विज्ञानः-

भाषा के विशिष्ट ज्ञान को भाषा-विज्ञान कहते है। 'भाषायाः विज्ञानम्-भाषाविज्ञानम्।' भाषा के वैज्ञानिक और विवेचनात्मक अध्ययन को भाषा विज्ञान कहते हैं। भारतवर्ष में वैदिक काल से ही भाषा का अध्ययन होता रहा है। भाषा सम्बन्धित विभिन्न अंगों के अध्ययन के लिए अलग-2 ग्रन्थ उपलब्ध होते थे जैसे - वेदांगः। वेदांग में शिक्षा में भाषा से सम्बन्धित सूक्ष्म चर्चा उपलब्ध होती है। ध्वनियों के उच्चारण-अवयव, स्थान, प्रयत्न आदि का इन ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन

उपलब्ध होता है। प्रतिशाख्य एवं निरूक्त में शब्दों की व्युत्पत्ति, धातु, उपसर्ग-प्रत्यय आदि का वैज्ञानिक ढ़ग से विश्लेषण कर भाषा को वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

यूरोप में आधुनिक भाषा-विज्ञान का आरम्भ सर्वप्रथम सन् 1786 ई में सर विलियम जोन्स द्वारा किया गया था। उन्होंने ही संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रंसग में संस्कृत, ग्रीक और लेटिन की अत्यधिक समानता तथा उनके मूल के रूप में, एक ही भाषा की सम्भावना को व्यक्त किया था। इस प्रकार यूरोप में आधुनिक भाषा-विज्ञान का सर्वप्रथम विचार भी प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में प्रयुक्त आर्यभाषा संस्कृत की ही देन है।

भाषा-विज्ञान, भाषा सम्बन्धी सभी प्रश्नों और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है या प्रस्तुत भाषाओं से है। अतः वह एक भाषा से सम्बद्ध विषयों का ही नहीं, अपितु विश्व की समस्त भाषाओं का सामूहिक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। प्रत्येक भाषा का व्याकरण उसकी रूप-सिद्धि, पद-निर्माण और वाक्य प्रयोग की शिक्षा देता है। परन्तु भाषा-विज्ञान व्याकरण का व्याकरण होने के कारण ध्वनि परिवर्तन आदि सभी दिशाओं में उनके कारण की भी व्याख्या करता है।

भाषा-विज्ञान भाषा के उच्चारण, प्रयोग और उपयोग की शिक्षा देता है। भाषा के विभिन्न अंगों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करता है। भाषा के सर्वांगीण विवेचन के साथ ही उसे जीवनोपयोगी भी बनाता है। भाषा-विज्ञान विश्व-भाषा शिक्षण में अत्यन्त सहायक है। यह विश्व की विभिन्न भाषाओं की समानता की स्थापना करके विश्व एकता और विश्व बन्धुत्व की भावना जागृत करता है।

3.3.1 भाषा-विज्ञान का नामकरणः-

भाषा-विज्ञान शब्द मूल रूप में पाश्चात्य विद्वानों की देन है। प्राचीन समय में भाषा विषयक विभिन्न अंगों के अध्ययन के लिए अलग-2 शब्द प्रचलित थे। जैसे - शिक्षा, निरूक्त, व्याकरण, प्रतिशाख्य आदि। इनका सम्बन्ध भाषा के किसी एक विशेष अंग से रहता था। इसे कमपेरोटिव ग्रामर (Comparative Grammer) नाम दिया गया। इस नाम को अधिक शुद्ध न मानकर कमपेरेटिव फिलॉलोजी (Comparative Philology) नाम दिया गया। इसके लिए ग्लायोलोजी (Glossology) का प्रयोग डेवीज ने 1817 ई. में तथा 1841 ई. में प्रिचर्ड द्वारा ग्लाटोलोजी (Glottology) नाम दिये गए। परन्तु ये नाम ज्यादा प्रचलित नहीं हुए। अंग्रजी में इसके लिए साइंस आफॅ लेंग्वेज (Science of Language) नाम भी चलता है। भाषा-विज्ञान के अर्थ में लेगिस्तीक (Liguistique) शब्द फ्रांस में प्रचलित हैं।

भारत में उपर्युक्त नामों के अतिरिक्त अन्य कई नाम प्रयुक्त किए जाते हैं - तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, भाषा-शास्त्र, तुलनात्मक भाषा-शास्त्र, शब्द-शास्त्र, भाषिकी आदि शब्द प्रचलित है। इनमें से भाषा-विज्ञान अधिक प्रचलित है।

3.3.2 भाषा-विज्ञान कला नहीं हैः-

कला का सम्बन्ध मानवरचित वस्तुओं और विषयों से होता है यही कारण है कि कला व्यक्ति विशिष्ट होने के साथ ही साथ देश विशिष्ट एवं काल विशिष्ट भी हुआ करती है। एक देश में या एक काल में कला का जो मानदण्ड होता है यह आवश्यक नहीं है कि दूसरे देश में या दूसरे काल में भी वही मानदण्ड रहे। अतः कला के सम्बन्ध में प्रायः विप्रति पत्तियाँ छुआ करती है, विकल्प हुआ करते है। एक व्यक्ति को जो वस्तु अत्याधिक कलात्मक प्रतीत होती है। यह सम्भव है कि दूसरे व्यक्ति को उसमें उतनी कलात्मकता दृष्टिगोचर न हो। साथ ही कला का सम्बन्ध हृदय की

रागात्मिका वृत्ति से होता है। उसमें हृदय को सौन्दर्य की अनुभूति होती है। उससे व्यक्ति का मनोरंजन ही होता है। वस्तुतः तो कला का उद्देश्य ही सौन्दर्यानुभूति कराना होता है।

कला की इन विशेषताओं को दृष्टि में रखने से ज्ञात होता है कि भाषा विज्ञान कला नहीं है, क्योंकि उसका सम्बन्ध हृदय प्रधान न होकर बुद्धिप्रधान है। भाषा विज्ञान का उद्देश्य मनोरंजन करना एवं सौन्दर्यानुभूति कराना भी नहीं है। वह तो हमारी ज्ञान पिपासा की तृप्ति करता है। इसी प्रकार यह देशविशिष्ट एवं कालविशिष्ट भी नहीं है, अपितु सभी देशों एवं कालो में एक समान रहता है। देश एवं काल की रूचि के अनुसार उसमें परिवर्तन नहीं होता है। साथ ही भाषा विज्ञान का विषय भाषा भी, मानवकृत नहीं है।

3.3.3 भाषा-विज्ञान विज्ञान हैः-

विज्ञान शब्द 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'ज्ञा' से ल्युट् (अन) प्रत्यय लगाने पर बनता है। इसका अर्थ है विशेष ज्ञान। भाषा विज्ञान कला नहीं है, यह निश्चित हो जाने के उपरान्त प्रश्न उठता है तो क्या भाषा विज्ञान, भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान आदि विज्ञानों की भांति ही विशुद्ध विज्ञान या पूर्ण विज्ञान है? अधिकांश विद्वान, भाषा विज्ञान को पूर्ण विज्ञान की कोटि में रखने को सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार भाषा विज्ञान के निष्कर्ष अभी पूर्णतया विप्रतिपत्ति रहित नहीं हैं। वे उतने सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक भी नहीं है। जैसे गणित विज्ञान में सभी देशों एवं सभी कालों में 2+2=4 ही होता है, वैसे सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक निष्कर्ष भाषा विज्ञान से प्राप्त नहीं होते है, साथ ही, भाषा के अध्ययन में भाषा विज्ञानी स्वयं की तटस्थ भी नहीं रख पाता है। फिर भी भाषा विज्ञान में तथ्यों का संकलन और ध्वनि नियम

अधिकाशतः विकल्परहित ही है। अतः विद्वानों ने भाषा विज्ञान को मानविकी (कला) एवं भाषा विज्ञान के मध्य ही रखा है।

वस्तुतः विज्ञान का अर्थ है - विशेष ज्ञान। यही कारण है कि जब हमारा विशेष ज्ञान, सामान्य ज्ञान सा हो जाता है तो वह विज्ञान नहीं समझा जाता। उदाहरण के लिए आजकल गुड बनाने की क्रिया को कोई भी विज्ञान नहीं मानता है जबकि चीनी के अविष्कार से पूर्व गुड बनाना भी विज्ञान ही था। इसी प्रकार नये-2 अविष्कारों के सामने पुराने अविष्कारों की वैज्ञानिकता फीकी पडती जा रही है।

अतः विशुद्ध विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान की दृष्टि से विचार करे तो भाषा विज्ञान निश्चय ही विज्ञान की कोटि में आता है। उसमें हम भाषा का विशेष ज्ञान प्राप्त करते हैं। हाँ इतना आवश्यक है कि भाषा विज्ञान अभी पूर्णतया विकसित नहीं हो पाया है। यही कारण है कि ग्रिम-नियम मे भी आगे चलकर 'ग्रासमैन' एवं 'वर्नर' को सुधार करना पडा है। यह निश्चित ही है कि इन सुधारों से पूर्व की 'ग्रिम- का ध्वनि नियम, निश्चित नियम ही माना जाता था और सुधारों के बाद आज भी वह निश्चित नियम ही माना जाता है। अतः नये विशेष ज्ञान में पुराने सिद्धान्तों का खण्डन होने से विज्ञान का कोई विरोध नहीं है। वस्तुतः तो यही विशुद्ध विज्ञान है।

हमें ज्ञात है कि सन् 1930 ई. के बाद से जब से वर्णनात्मक भाषा विज्ञान को पुनः महत्त्व प्राप्त हुआ है तबसे भाषा विज्ञान शनैः-शनैः पूर्ण विज्ञान बनने की ओर बड़ी तेजी से अग्रसर हुआ है। जब से ध्वनि के क्षेत्र में नये-2 यन्त्रों के आधार पर नये-2 परीक्षण प्रारम्भ हुए हैं, तथा प्राप्त निष्कर्ष पूर्णतया नियमित होने लगे है, तब से भाषा विज्ञान पूर्ण विज्ञान की कोटि में भी प्रतिष्ठित माना जाने लगा है।

प्रयोगात्मक होना भी किसी विज्ञान की एक बड़ी विशेषता मानी जाती है। अमेरिकी विद्वान ब्लूमफील्ड के बाद से अमेरिका भाषा विज्ञानियों ने ध्वनि ग्राम विज्ञान एवं रूपग्राम विज्ञान आदि के साथ ही साथ भाषा विज्ञानियों की एव नवीन पद्धति प्रायोगिक भाषा विज्ञान का विकास बड़ी तीव्रता से किया है। इस पद्धति में भाषा विज्ञान जिस तीव्रता से प्रयोगशालाओं का विषय बनता जा रहा है और उसके लिए जितने अधिक यन्त्रों का अविष्कार हो गया है। यह निश्चित रूप कहा जा सकता है कि भाषा विज्ञान वस्तुतः पूर्ण विज्ञान ही है। इसके अतिरिक्त भी आजकल समाजविज्ञान तथा मनोविज्ञान आदि शास्त्रीय विषयों को भी जब विज्ञान कहने की परम्परा है, तब कारण कार्य श्रृंखला पर आधारित भाषा विज्ञान को विज्ञान न मानना तो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता।

3.3.4 भाषा-विज्ञान की परिभाषाः-

भाषा के विशेष अथवा विशिष्ट ज्ञान को भाषा विज्ञान कहते है। अर्थात् जिस शास्त्र में भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है वही विज्ञान भाषा विज्ञान कहा जाता है। 'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु जिसका अर्थ व्यक्त वाक् (व्यक्तायां वाचि) से निष्पन्न है तथा विज्ञान शब्द 'वि' उपसर्गपूर्वक 'ज्ञा' धातु से ल्युट् (अन) प्रत्यय लगाने पर बनता है। अतः भाशा विज्ञान का विग्रह है- भाषायाः विज्ञानम्-भाषा-विज्ञानम्।

भाषा विज्ञान के अन्तर्गत हमें भाषा का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करते हैं। भाषा का प्रादुर्भाव कैसे व कब हुआ, भाषा की प्ररिवर्तनशीलता के कारण, भाषा किस प्रकार विकसित हुई, विश्व की किन भाषाओं में समानता है और किन भाषाओं में विषमता है? यह सब विशेष ज्ञान हमें भाषा विज्ञान ही कराता है। भाषा के सम्यक् प्रयोग व

उपयोगी शिक्षा के साथ-साथ भाषा विज्ञान भाषा के विभिन्न अंगों का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करता है। भाषा विज्ञान विश्व की विभिन्न भाषाओं में समानता स्थापित करता हुआ विश्व बन्धुत्व की भावना का विश्व में प्रसार करता है। यह भाषा के चहुँमुखी विकास के साथ-साथ उसका गहन विवेचन भी करता है और जीवनोपयोगी भी है।

भाषा विज्ञान को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। Philology, Comparative Philogy नामकरण दिया गया। कुछ समय तक Glossalogy तथा Glottology नाम भी प्रयोग में लाए गए। फ्रांस में इसको लैगिस्तीक (Linguistique) नाम दिया गया। जो सम्पूर्ण यूरोप में प्रचलित हुआ। परन्तु आज केवल Philology एवं Linguistics ही प्रयुक्त किए जाते है। भारतवर्ष में भाषा-शास्त्र, भाषा तत्व, भाषा-विचार, भाषा विज्ञान, तुलनात्मक भाषा विज्ञान आदि नामों का व्यवहार होता है।

अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने भाषा विज्ञान को अपने ढ़ग से परिभाषित किया है। किसी ने भाषा की उत्पत्ति का संकलन किया है तो किसी ने भाषा के अध्ययन की विधियों को संगृहित किया है। किसी ने सामान्य तथा विशिष्ट भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया तो किसी की भाषा की परिवर्तनशीलता के कारणों का संग्रह किया। कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा की गयी भाषा विज्ञान की विभिन्न परिभाषाएं इस प्रकार हैः-

1. ‘‘ भाषा विज्ञान, भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।’’

-डॉ. श्यामसुन्दर दास, भाषा-रहस्य।

2. ''भाषा विज्ञान, उस विज्ञान को कहते हैं जिसमें (क) सामान्य रूप से मानवी भाषा का, (ख) किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का, अन्ततः (ग) भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक विचार किया जाता है।''

-डॉ. मंगलदेव शास्त्री, तुलनात्मक भाषाशास्त्र।

3. ''जिस विज्ञान के अन्तर्गत वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा की उत्पत्ति, गठन, प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक् व्याख्या करते हुए, इन सभी के विषय में सिद्धान्तों का निर्धारण हो, उसे भाषा-विज्ञान कहते है।''

-डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान।

4. ''भाषा-विज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन कराना है।''

-डॉ. बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान।

5. ''भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा या भाषाओं का अध्ययन वर्णनात्मक, तुलनात्मक, ऐतिहासिक, दार्शनिक आदि अनेक पद्धतियों से किया जाता है''

-डॉ हरिशचन्द्र वर्मा, भाषा और भाषा विज्ञान।

6. ''भाषायाः यन्तु विज्ञानं, सर्वाङ्गं व्याकृतात्कम्।

विज्ञानदृष्टिमूलं तद्, भाषा विज्ञानमुच्यते।''

भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।''

डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र।

7. ''भाषा-विज्ञान का सीधा अर्थ है - भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है - विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान, भाषा-विज्ञान कहलाएगा।

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएंः-

1. Comparative Philology or Simply Philology is the Science of Language. Philology strictly means the study of a language from the literary point of view.

-Dr. P.D. Gune, An Introduction to Comparative Philology.

2. General Linguistics may be defined as the Science of Language.

-R.H. Robins, General Linguistics

3. ''भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषा विज्ञान कहा जा सकता है।'' Introduction to theoretical Linguistics (सैद्धान्तिक भाषा विज्ञान)

-John Lyons

4. ''भाषा विज्ञान, भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन है, चाहे वह किसी भी दिशा या दशा में हो।''

-मैक्समूलर

अनेक विद्वानो ने भाषा विज्ञान की अनेक परिभाषाएं दी है, इन परिभाषाओं का अध्ययन करके भाषा विज्ञान के विषय में निम्न तथ्य प्रस्तुत कर सकते है-

1. भाषा-विज्ञान के वैज्ञानिक और विवेचनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करता है।
2. भाषा-विज्ञान भाषाओं का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करता है।
3. भाषा-विज्ञान भाषा के उच्चारण, प्रयोग और उपयोग की शिक्षा देता है।
4. भाषा-विज्ञान भाषा के विभिन्न अंगों का सूक्ष्मतिसूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करता है।
5. भाषा-विज्ञान विश्व की समस्त भाषाओं का सामूहिक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।
6. भाषा-विज्ञान प्रत्येक भाषा का व्याकरण उसकी रूपसिद्धि, पद-निर्माण और वाक्य प्रयोग की शिक्षा देता है।
7. भाषा-विज्ञान भाषाओं के ध्वनि परिवर्तन आदि सभी दिशाओं में उसके कारणों की भी व्याख्या करता है।

3.3.5 भाषा-विज्ञान का क्षेत्रः-

जो क्षेत्र मानव और उसकी भाषा का है वही क्षेत्र भाषा विज्ञान का भी है। भाषा विज्ञान का सम्बन्ध न केवल विश्वभर के सभ्य मनुष्यों की भाषाओं से है, अपितु असभ्य एवं वन्य (जंगली) मनुष्यों की बोलियों से भी है।

भाषा-विज्ञान में असाहित्यिक और मात्र बोलचाल की भाषाओं का भी अध्ययन किया जाता है। भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध किसी भाषा के किसी एव विशेष काल के तथ्यों से ही नहीं है अपितु सभी कालों के तथ्यों से होता है अर्थात् त्रैकालिक तथ्यों का है। भाषा विज्ञान में ध्वनियों के उच्चरण, उनसे बने अक्षरो, अक्षरों से बने शब्दों-पदों तथा उनसे बने वाक्यों की रचना आदि अनेक विषयों का विवेचन किया जाता है।

3.3.5.1 भाषा-विज्ञान के अंगः-

यद्यपि विषय का पूर्ण ज्ञान कराना ही प्रत्येक विज्ञान का लक्ष्य होता है। तथापि इस लक्ष्य की सफलता के लिए उसे अपने विषय को विभिन्न भागों या अंगों में विभाजित करके उसका सूक्ष्म अध्ययन करना पड़ता है। विषय का विभिन्न अंगों में यह विभाजन उस विषय का पूर्णज्ञान करने में सहायक होता है। भाषा विज्ञान में अध्ययन के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं :-

1 प्रधान विषय -

(क) ध्वनि विज्ञान (ख) शब्द या पद विज्ञान

(ग) वाक्य विज्ञान (घ) अर्थ विज्ञान

2 गौण विषय -

(क) भाषा की उत्पत्ति (ख) भाषा का वर्गिकरण

(ग) कोश विज्ञान (घ) अन्य विषय

3.3.5.1.1 प्रधान विषयः-

(क) ध्वनि विज्ञानः- इसमें भाषा के मूल तत्व ध्वनि का व्यापक अध्ययन किया जाता है। इसमें मुख्य रूप से इन विषयों का संकलन होता है - ध्वनि क्या है?, ध्वनियाँ कितनी है? इनका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है। ये ध्वनियाँ कैसे और कहाँ से उत्पन्न होती है। किस प्रकार ध्वनियों का सम्प्रेषण होता है? ध्वनियों के भेद का क्या कारण है? एकाधिक ध्वनियों के संयोग से क्या परिवर्तन होते है? ध्वनि नियम क्या है? स्वनिम, स्वनिमी आदि का निरूपण करना।

(ख) शब्द या पद विज्ञानः- ध्वनियों को मिलाकर शब्द या पद बनाये जाते हैं। अतः ध्वनियों के अध्ययन के उपरान्त भाषा विज्ञान में द्वितीय स्थान पर पद-विज्ञान का महत्त्व है। इसके अन्तर्गत पदरचना या पदों का निर्माण, उनके भेद जैसे - संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय आदि पद के अर्थ सूचक तथा स्मबनध सूचक अंश जैसे - धातु, प्रत्यय, उपसर्ग आदि का विचार किया जाता है।

(ग) वाक्य विज्ञानः- जिस प्रकार विभिन्न ध्वनियों के समन्वय से पद बनता है उसी प्रकार विभिन्न पदों के समन्वय से वाक्य बनते है। वाक्य विज्ञान में वाक्य की रचना किस प्रकार होती है? वाक्य में पदों का अन्वय किस प्रकार होता है। अन्वय का आधार क्या है? कर्ता, क्रिया, कर्म आदि का किस स्थान पर निवेश होगा? कितने प्रकार के वाक्य होते है? इत्यादि बातों का विवेचन किया जाता है। वाक्य विज्ञान को 3 भागों में विभक्त किया जाता है -

- वर्णनात्मक वाक्य विवेचन
- ऐतिहासिक वाक्य विवेचन
- तुलनात्मक वाक्य विवेचन

(घ) अर्थ विज्ञानः- ध्वनि, पद और वाक्य भाषा का शरीर है तथा अर्थ भाषा की आत्मा है। शरीर पर विचार करने के साथ ही भाषा की आत्मा अर्थ पर विचार करना भी उपयुक्त होता है। अतः अर्थ विज्ञान भी भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। अर्थ विज्ञान के अन्तर्गत शब्दों या पदों का निश्चित अर्थों का निर्धारण कैसे हुआ? शब्द और अर्थ का क्या सम्बन्ध है? अर्थ परिवर्तन

क्यों और कैसे होता है? अर्थ परिवर्तन की दिशाएं क्या है? अर्थ-परिवर्तन के क्या कारण है? इत्यादि बातों पर विचार किया जाता है।

3.3.5.1.2 गौण विषयः-

प्रमुख अंगों के अतिरिक्त भाषा विज्ञान के कुछ अन्य गौण अंग भी स्वीकार किये जाते है। वस्तुतः ये भाषा विज्ञान से सम्बद्ध विषय है जैसे -

(क) **भाषा की उत्पत्तिः-** भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई? इस विषय में भाषाशास्त्रीयों का क्या मत है? भाषा का विकास कैसे हुआ? आदि बातों पर विवेचन किया जाता है।

(ख) **भाषा का वर्गिकरणः-** संसार की विभिन्न भाषाओ को रूप या आकृति के आधार पर तथा भौगोलिक आधार पर अलग-अलग वर्गों में विभक्त कर सकते है। रूप के आधार पर होने वाले वर्गीकरण को रूपात्मक या आकृतिमूलक वर्गीकरण कहते है। भौगोलिक आधार पर होने वाले वर्गीकरण को पारिवारिक वर्गीकरण कहते है।

(ग) **अन्य विषयः-** भाषा के अध्ययन को भाषिक भूगोल, भाषा-काल क्रम विज्ञान भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज, लिपि-विज्ञान आदि अन्य अनेक अंग है-

(i) भाषा का भूगोल - इसमें भोगोलिक दृष्टि से भाषा का अध्ययन किया जाता है। विश्व के किन-किन भागों में कौन-कौन सी भाषाएं बोली जाती है। किस भाषा का कितना व्यापक क्षेत्र है? उसकी कितनी

बोलियाँ और उपबोलियाँ है? उनकी निश्चित सीमाएं क्या है? इसका अध्ययन किया जाता है।

(ii) लिपि विज्ञान - इसमें लिपि के उत्पत्ति, विकास और उसकी उपयोगिता आदि पर विचार किया जाता है।

(iii) कोश विज्ञान - इस विज्ञान में कोश रचना का प्रकार बताया जाता है। शब्दों की व्युत्पत्ति क्या है? शब्दों का अर्थ कैसे निर्धारित किया जाता है? प्रत्येक शब्द का किन अर्थों में प्रयोग होता है? एकार्थक, अनेकार्थक, विषमार्थक शब्दों की व्याख्या आदि इस विज्ञान के अंग हे। व्युत्पत्ति शास्त्र भी कोश विज्ञान के अन्तर्गत आता है।

(iv) शैली विज्ञान - भाषा-विज्ञान की यह नवीन लेकिन महत्वपूर्ण शाखा है। इसमें किसी भाषा के कवि या लेखक आदि भाषा के किन शब्दों को मुख्य रूप से अपनाते है? उनकी शैली की क्या विशेषताएं हैं? व्यक्तिगत अन्तर एवं शैली सम्बन्धी अन्तर का अध्ययन शैली विज्ञान का विषय है।

(v) प्रागैतिहासिक खोज - इसमें भाषा-विज्ञान के आधार पर प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। भाषा-विज्ञान ही एकमात्र साधन है, जिसके द्वारा प्राचीन संस्कृतियों का यथार्थ ज्ञान हो सकता है। यह शाखा अभी तक शैशवावस्था में है।

3.4 धातुरूप (लट् और लङ् लकार) अस्, भू, कृ, नम्, कथ्, पठ्

3.4.1 अस् (होना)

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यम पुरुष	असि	स्थः	स्थ
उत्तम पुरुष	अस्मि	स्वः	स्मः

लङ् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
मध्यम पुरुष	आसीः	आस्तम्	आस्त
उत्तम पुरुष	आसम्	आस्व	आस्म

3.4.2 भू (होना)

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरुष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरुष	भवामि	भवावः	भवामः

लङ् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यम पुरुष	अभवः	अभवतम्	अभवत
उत्तम पुरुष	अभवतम्	अभवाव	अभवाम

3.4.3 कृ (करना)

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	करोति	कुरूतः	कुर्वन्ति
मध्यम पुरुष	करोषि	कुरूथः	कुरूथ
उत्तम पुरुष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लङ् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अकरोत्	अकुरूताम्	अकुर्वन्
मध्यम पुरुष	अकरोः	अकुरूतम्	अकुरूवे
उत्तम पुरुष	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

3.4.4 नम् (नमस्कार करना)

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नमति	नमतः	नमन्ति
मध्यम पुरुष	नमसि	नमथः	नमथ
उत्तम पुरुष	नमामि	नमावः	नमामः

लङ् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अनमत्	अनमताम्	अनमन्
मध्यम पुरुष	अनमः	अनमतम्	अनमत
उत्तम पुरुष	अनमम्	अनमाव	अनमाम

3.4.5 कथ् (कहना)

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कथयति	कथयतः	कथयन्ति
मध्यम पुरुष	कथयसि	कथयथः	कथयथ
उत्तम पुरुष	कथयामि	कथयावः	कथयामः

लङ् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्
मध्यम पुरुष	अकथयः	अकथयतम्	अकथयत
उत्तम पुरुष	अकथयम्	अकथयाव	अकथयाम

3.4.6 पठ् (पढ़ना)

लट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पठति	पठतः	पठन्ति
मध्यम पुरुष	पठसि	पठथः	पठथ
उत्तम पुरुष	पठामि	पठावः	पठामः

लङ् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
मध्यम पुरुष	अपठः	अपठतम्	अपठत
उत्तम पुरुष	अपठम्	अपठाव	अपठाम

3.5 स्वयं आकलन प्रश्न :-

1. विज्ञान शब्द की व्युत्पत्ति लिखो।
2. अस् धातु लट् लकार मध्यमपुरूष एकवचन में लिखो।
3. मुनिः + आगतः की सन्धि कीजिए।

3.6 स्वर-सन्धिः-

सन्धि शब्द का अर्थः-

सम् उपसर्गपूर्वक धातु से सन्धि शब्द बनता है। जिसका सीधा अर्थ है - मेल, संगम, मिश्रण, सम्बन्ध आदि।

सन्धि की परिभाषाः-

कभी-2 दो वर्णो के परस्पर संयोग या मेल से उनमें कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है यही विकार सन्धि का कारण बनता है। दो वर्णों की अत्यन्त समीपता के कारण उनमें जो परिवर्तन होता है, उसे सन्धि कहते हैं। सन्धि को संहिता भी कहते हैं। जिसकी परिभाषा है - 'परः सन्निकर्षः संहिता' अर्थात् वर्णो की अत्यन्त समीपता को 'संहिता' कहते हैं।

सन्धि में परिवर्तन के तीन रूपः-

सन्धि में जो परिवर्तन होता है वह तीन प्रकार का होता है - 1. आदेश, 2. लोप, 3. आगम

1. **आदेश** - जहाँ दो वर्णो या एक एक वर्ण की जगह नया वर्ण आ जाता है जैसे नर + इन्द्रः = नरेन्द्रः यहाँ पर अ+इ की जगह पर 'ए' आदेश है। इसी प्रकार इति + आदि = इत्यादि में 'इ' की जगह 'य' आदेश हुआ है।

2. **लोप** –जहाँ से वर्णों में से एक का लोप हो जाए। जैसे - देवाः + वदन्ति = देवावदन्ति यहाँ पर विसर्ग का लोप हुआ है।

3. **आगम** - जहाँ वर्णों के बीच एक नया वर्ण आ जाता है जैसे - शिव + छाया = शिवच्छाया में 'च्' का आगम हुआ है।

सन्धि की अनिवार्यताः-

संस्कृत भाषा में सन्धि का बहुत महत्त्व है। सन्धि कहाँ करनी अनिवार्य है और कहाँ नहीं।

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।

नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते।।

अर्थात यह आवश्यक नहीं कि सर्वत्र सन्धि की जाए किन्तु निम्नलिखित तीन स्थानों पर सन्धि अवश्य करनी पड़ती है -

1. एक पद में सन्धि, जैसे - रौ+अणः = रावणः। बालक+ इन = बालकेन
2. धातु और उपसर्ग में सन्धि, जैसे - अधि+इते = अधीते। उप+एति = उपेति
3. समास में सन्धि, जैसे - दैत्यानाम् अरिः = दैत्य + अरिः = देत्यारिः। ज्ञानस्य+उदयः = ज्ञान + उदयः = ज्ञानोदयः।

सन्धि के भेदः-

सन्धि के भेद का कारण भी परिवर्तन ही है। यदि स्वर का विकार होता है तो स्वर सन्धि, व्यजंन का विकार होता है तो व्यजंन सन्धि और विसर्ग का विकार होता है तो विसर्ग सन्धि। इस प्रकार सन्धि मुख्यतः तीन प्रकार की होती है।

1. व्यजंन सन्धि या हल् सन्धि

2. विसर्ग सन्धि।

3. स्वर सन्धि या अच् सन्धि

3.6.1 व्यजंन सन्धि या हल् सन्धिः-

जब दो व्यंजन समीन आते है अथवा पहला वर्ण व्यंजन होता है और दूसरा स्वर होता है उनमें जो परिवर्तन होता है उन्हे व्यजंन सन्धि कहते हैं। संस्कृत व्याकरण में इसे हल् सन्धि कहा जाता है।

1. व्यंजन के साथ व्यंजन का मेल, जैसे -

उत्+ज्वलः = उज्ज्वलः

यहाँ पर 'उत्' का 'त्' तथा ज्वल का 'ज्' व्यंजन एक साथ आ गये हैं तथा उनके मिलने पर पूर्णवर्ती 'त्' के स्थान पर 'ज्' होकर 'उज्जवलः' पद बना है। अतः यहाँ व्यंजन सन्धि है।

2. व्यंजन के साथ स्वर का मेल, जैसे -

वाक्+अर्थौ = वागर्थौ

यहाँ पर वाक् का 'क्' व्यंजन और अर्थौ का 'अ' स्वर एक साथ आ गये हैं तथा उनसे मिलने पर पूर्ववर्ती 'क्' के स्थान पर 'ग्' होकर 'वागर्थौ' पद बना है। अतः यहाँ पर भी व्यंजन सन्धि है।

3.6.2 विसर्ग सन्धिः-

जब दो वर्णो के समीप होने पर किसी वर्ण का विसर्ग हो जाता है अथवा विसर्गो को कोई अन्य वर्ण हो जाता है उसे विसर्ग सन्धि कहते हैं।

1. विसर्ग के साथ स्वर का मेल, जैसे -

मुनिः+आगतः = मुनिरागतः

यहाँ पर मुनिः पद के विसर्ग तथा आगतः पद का 'आ' स्वर एक साथ आ गये है तथा उनके मिलने पर ही विसर्ग के स्थान पर 'र' होकर मुनिरागतः रूप बना है।

2. विसर्ग के साथ व्यंजन का मेल, जैसे -

कः+चित् = कश्चित

यहाँ पर कः पद के विसर्ग तथा 'चित्' पद का 'च' व्यंजन एक साथ आये है तथा उनके मिलने पर ही विसर्ग के स्थान पर 'श्' होकर कश्चित् रूप बना है।

3.6.3 स्वर सन्धि या अच् सन्धिः-

दो स्वरों के अत्यन्त समीप होने पर उनमें जो परिवर्तन होता है, उसे स्वर सन्धि कहते हैं। इसके अनेक भेद किए गए है - 1. दीर्घ सन्धि, 2. गुण सन्धि, 3. वृद्धि सन्धि, 4. यण सन्धि, 5. अयादि सन्धि, 6. पूर्वरूप सन्धि, 7. पररूप सन्धि, 8. प्रकृतिभाव सन्धि।

3.6.3.1 दीर्घ सन्धिः- अकः सवर्णे दीर्घः - जब ह्रस्व या दीर्घ, ऊ, इ, उ, ऋ लृ के अनन्तर इनके समान ही स्वर आ रहा हो तो दोनो के स्थान पर एक दीर्घ स्वर हो जाता है। जैसे -

(अ/आ/+अ/आ = आ)

हिम+अचलः = हिमाचलः विद्या+ अर्थी = विद्यार्थी

शश+अंकः = शशांक	तत्र+आगच्छत् = तत्रागच्छत्
परम्+अर्थः = परमार्थः	मुर+अरिः मुरारिः
दैत्य+अरिः = दैत्यारिः	देव+आलयः = देवालयः
हिम+आलयः = हिमालयः	विद्या+आलयः = विद्यालयः
परम+आनन्दः = परमानन्दः	विद्या+अभ्यासः = विद्याभ्यासः
महा+असुरः = महासुरः	विधवा+आश्रमः = विश्वाश्रमः
रमा+आगच्छत् = रमागच्छत्	दया+आनन्दः = दयानन्दः

(इ/ई/+इ/ई = ई)

गिरी+इन्द्रः = गिरीन्द्रः	हरि+इच्छा = हरीच्छा
कवि+इन्द्रः = कवीन्द्रः	रवि+इन्द्रः = रवीन्द्रः
गिरी+ईशः = गिरीशः	कवि+ईश्वर = कवीश्वरः
श्री+ईश = श्रीशः	सुधी+इन्द्रः = सुधीन्द्रः
कपि+ईशः = कपीशः	अपि+ईक्षते = अपीक्षते

(उ/ऊ/+उ/ऊ = ऊ)

साधु+ऊचुः = साधूचूः	चमू+ऊर्जः = चमूर्जः
भानु+उदयः = भानूदयः	लघु+उत्सवः = लघुत्सवः
गुरु+उपदेश = गुरुपदेशः	लघु+ऊर्मिः = लघूर्मिः
सु+उक्तिः = सूक्तिः	भानु+उर्जाः = भानूर्जा

भू+ऊर्ध्वम् = भूर्ध्वम्   वधू+उवाच = वधूवाच

(ऋ/+ऋ = ऋ)

मातृ+ऋणम् = मातृणम्   पितृ+ऋद्धिः = पितृद्धिः

पितृ+ऋणम् = पितृणम्   होतृ+ऋकारः = होतृलकारः

ऋ और लृ के उदाहरण भाषा में लगभग नहीं मिलते। अतः इनमे जो ह्रस्व ऋ या लृ के अनन्तर ह्रस्व ऋ या लृ आये तो दोनों के स्थान पर या तो दीर्घ ऋ आदेश होता है अथवा ह्रस्व ही रह जाता है।

3.6.3.2 गुण सन्धिः– 'आद्गुणः' अ या आ के अनन्तर ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ आये तो दोनो के स्थान पर क्रमशः ए, ओ, अर्, अल् आदेश हो जाते हैं। जैसे–

(अ/आ/+इ/ई = ए)

नर+इन्द्रः = नरेन्द्रः   सुर+इन्द्रः = सुरेन्द्रः

गण+ईशः = गणेशः   लोक+ईशः = लोकेशः

देव+ईशः = देवेशः   नर+ईश = नरेशः

महा+इन्द्रः = महेन्द्रः   धारा+इव = धारेव

उमा+ईशः = उमेशः   रमा+ईश+ = रमेशः

परम+ईश्वरः = परमेश्वरः   उप+इन्द्रः = उपेन्द्रः

(अ/आ/+उ/ऊ = ओ)

हित+उपदेशः = हितोपदेशः   सूर्य+उदयः = सूर्योदयः

चन्द्र+उदयः = चन्द्रोदयः   नर+उत्तमः = नरोत्तमः

पुरुष+उत्तमः = पुरुषोत्तमः　　गंगा+उदकम् = गंगोदकम्

गंगा+ऊर्मिः = गंगोर्मिः　　लता+ऊर्ध्वम् = लतोर्ध्वम्

महा+ऊर्मिः = महोर्मिः　　नव+ऊढा = नवोढा

(अ/आ/+ऋ = अर्)

सप्त+ऋषिः = सप्तर्षि　　देव+ऋषिः = देवर्षिः

ब्रहम+ऋषिः = ब्रह्मर्षिः　　कृष्ण+ऋद्धिः = कृष्णर्द्धिः

महा+ऋषिः = महर्षिः　　धन+ऋद्धिः = धनर्द्धिः

(अ/आ/+लृ = अल्)

तव+लृकारः = तवल्कारः　　माला+लृकारः = मालल्कारः

3.6.3.3 वृद्धि सन्धिः– वृद्धिरेचि अ अथवा आ के अनन्तर ए या ऐ हो तो दोनो के स्थान पर 'ऐ' हो जाता है और यदि ओ या औ हो तो दोनो के स्थान पर 'औ' हो जाता है तथा ऋ हो तो 'आर्' हो जाता है। इस सन्धि को वृद्धि सन्धि कहते हैं, क्योंकि इसमें वृद्धि एक आदेश होता है। ऐ, औ तथा आर् को संस्कृत व्याकरण में वृद्धि संज्ञा दी गई है।

(अ/आ/+ए/ऐ = ऐ)

तव+एव = तवैव　　अथ+एकदा = अथैकदा

एक+एकम् =एकैकम्　　मत+एक्यम् = मतैक्यम्

मत+एकता = मतैकता　　देव+ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम

सदा+एव = सदैव　　महा+ऐश्वर्यम् = महैश्वर्यम

मया+एव = मयैव 		कृष्ण+एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्

एक+एकशः = एकैकशः 		परम+ऐश्वर्यम् = परमैश्वर्यम्

(अ/आ/+ओ/औ = औ)

जल+ओधः = जलौधः 		वन+औषधिः = वनौषधीः

परम+औषधः = परमौषधिः 		गंगा+औद्यः = गंगाद्यः

दिव्य+औषधम् = दिव्यौषधम् 		महा+औत्सुक्यम् = महौत्सुक्यम्

ब्रह्म+औपनिषद = ब्रह्मौपनिषद् 		महा+औषधम् = महौषधम्

विद्या+औत्सुक्यम् = विद्यौत्सुक्यम्

(अ/आ/+ॠ = आर्)

सुख+ऋतः = सुखार्तः 		कष्ट+ऋतः = कष्टार्तः

पिपासा+ऋतः = पिपासार्तः 		प्र+ऋच्छति = प्राच्छति

3.6.3.4 यण सन्धि - इकोयणाचि सन्धि - ह्रस्व या दीर्घ इ, उ,ऋ, लृ के अनन्तर कोई असवर्ण स्वर आये तो इ, उ, ऋ, लृ के स्थान पर य्, व्, र्, ल आदेश हो जाते हैं। जैसे -

(इ/ई > य् + असमान स्वर्)

यदि+अपि = यद्यपि 		सुधी+उपास्यः = सुध्युपास्यः

इति+आदि = इत्यादि 		देवी+अनुग्रह = देव्यनुग्रहः

प्रति+उपकारः = प्रत्युपकारः 		नदी+एव = नद्येव

इति+उवाच = इत्युवाच 		गोपी+एषा = गोप्येषा

नि+ऊनः = न्यूनः   एहि+एहि =एह्येहि

नदी+अत्र = नद्यत्र   तादृशी+उक्तिः = तादृश्युक्तिः

(उ/ऊ > व + असमान स्वर्)

अनु+अयः = अन्वयः   मधु+अरिः = मध्वरिः

अनु+एषणम् = अन्वेषणम्   भू+आदि = भ्वादि

सु+आगतम् = स्वागतम्   वधू+आगमनम् = वध्वागमनम्

वधु+अत्र = वध्यत्र   गुरु+आज्ञा = गुर्वाज्ञा

(ऋ > र् + असमान स्वर्)

धातृ+अंशः = धात्रंश   कर्तृ+इच्छा = कर्त्रिच्छा

पितृ+आदेशः = पित्रादेशः   पितृ+औदार्यम् = पित्रौदार्यम्

भ्रातृ+इच्छा = भ्रात्रिच्छा   मातृ+आज्ञा = मात्राज्ञा

भ्रातृ+उपदेशः = भ्रात्रुपदेशः   धातृ+ऐश्वर्यम् = धात्रैश्वर्यम्

(लृ > ल + असमान स्वर्)

लृ+आकृतिः = लाकृतिः   लृ+आकारः = लाकारः

3.6.3.5 अयादि सन्धिः- एचोऽयवायावः - ए, ओ, ऐ, औ के अनन्तर कोई भी स्वर हो तो एच् के स्थान पर क्रमशः अय्, अव्, आय्, आव् हो जाते है जैसे -

(ए > अय् + स्वर)

ने+अनम् = नयनम्   शे+अनम् = शयनम्

हरे+ए = हरये　　　　ऋषि+ए = ऋषये

मुने+ए = मुनये　　　　ए+अनम् = अयनम्

(ओ > अव् + स्वर)

भो+अवनम् = भवनम्　　　　साधे+ए = साधवे

भानो+ए = भानवे　　　　भो+अन्ति = भवन्ति

पो+अनम् = पवनम　　　　गुरो+इह = गुरविह

(ऐ > आय् + स्वर)

नै+अकः = नायकः　　　　परिचै+अकः = परिचायकः

गै+अकः = गायकः　　　　दै+अकः = दायकः

(औ > आव् + स्वर)

पौ+अकः = पावकः　　　　भौ+उक = भावुकः

नौ+इकः = नाविकः　　　　तौ+आगच्छतः = तावागच्छतः

रौ+अणः = रावणः　　　　बालकौ+आगतौ = बालकावागतौ

नौ+आ = नावा　　　　भानौ+इह = भानविह

3.6.3.6 पूर्वरूप सन्धिः- 'एङः पदान्तावति' - पद के अन्त में आने वाले ए, ओ के पश्चात् यदि अत् (हस्वअ) हो तो उस 'अ' को पूर्णरूप हो जाता है, अर्थात् वह 'अ' पहले वर्ण में विलीन हो जाता है और उस 'अ' को स्थान पर अवग्रह चिन्ह (ऽ) का प्रयोग किया जाता है जैसे -

अग्न+अत्र = अग्नेऽत्र　　　　वायो+अत्र = आयोऽत्र

ग्रामे+अपि = ग्रामेऽपि साधो+अव = साधोऽव

हरे+अव = हरेऽव प्रभो+अत्र = प्रभोऽत्र

देवे+अपि = देवेऽपि विष्णो+अत्र = विष्णोऽत्र

ते+अत्र = तेऽत्र देवो+अगच्छत् = देवोऽगच्छत्

3.6.3.7 पररूप सन्धिः– (एङि पररूपम्) अवर्णान्त उपसर्ग के पश्चात् यदि कोई ऐसी धातु हो जिसके प्रारम्भ में एङ् (ए या ओ) हो तो उपसर्ग के अ और धातु के ए को ए तथा अ और ओ को पररूप हो जाता है। जैसे –

प्र+एजते = प्रेजते, उप+ओषति = उपोषति,

उप+एलयति = उपेलयति प्र+ओषति = प्रोषति

प्र+एषयति = प्रेषयति

3.6.3.8 प्रकृतिभाव सन्धिः– जहाँ सन्धि हो सकती हो परन्तु सन्धि न की जाए उसे प्रकृतिभाव सन्धि कहते हैं। उसके लिए नियम है –

(क) ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृहथम् – जिन द्विवचन शब्दों के अन्त में ई, ऊ और ए आते हो उनकी प्रकृहथम् संज्ञा होने से प्रकृतिभाव सन्धि होती है अर्थात् वहाँ सन्धि का अभाव होता है। जैसे –

ईकारान्त द्विवचन

मुनि+इमो = मुनि इमौ, हरी+एतौ = हरी एतौ, कवि+ आगतौ = कवि आगतौ

अकारान्त द्विवचन

विष्णू+इमौ = विष्णु इमौ, भानू+अत्र = भानू अत्र

एकारान्त द्विवचन

ल्ते+एते = लते एते, गंगे+अमू = गंगे अमू

(ख) अदसो मात् - अदस् शब्द से बने रूपों में म् के बाद ई या ऊ आने पर अर्थात् अमी तथा अमू की प्रकृति भाव सन्धि होती है। जैसे

अमी+ईशा = अमीईशा, अमू+आगच्छतः = अमू आगच्छतः

(ग) ओत् - ओकारान्त निपात शब्द में भी प्रकृतिभाव सन्धि होती है।

अहो+अनिष्टम् = अहो निष्टम्, अहो+ईशा = अहोईशा, अहो+अनर्थः = अहो अनर्थः

(घ) दूरात हूतेच - दूर से बोलने पर अर्थात् प्लुत अक्षर के उच्चारण में भी प्रकृतिभाव होता है।

आगच्छ राम3अत्र तिष्ठावः, एहि कृष्ण3अत्र गौश्चरति।

3.7 सारांशः-

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा के क्षेत्र में भाषा विज्ञान का कितना महत्त्व है। भाषा विज्ञान भाषा के उच्चारण, प्रयोग और उपयोग की शिक्षा देता है। भाषा विज्ञान भाषा शिक्षण में अत्यन्त उपयोगी है। भाषा विज्ञान का सम्बन्ध विश्व की समस्त भाषाओं से है। भाषा विज्ञान के साथ धातुरूपों और स्वर सन्धि से भी परिचित हो चुके होगे।

3.8 कठिन शब्दावली :-

सार्वभौमिक = सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैला हुआ जैसे सत्ता, गंगोर्मिः = गंगा की एक छोटी लहर या धारा, असहित्यिक भाषा = जिस भाषा का साहित्य न हो यानि बोलचाल की भाषा

3.9 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :-

1. विज्ञान शब्द की व्युत्पत्ति वि. उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धाजु से ल्युट् प्रत्यय से हुई है।
2. अस् धाजु लट् लकार का मध्यम पुरूष एकवचन में असि रूप बनता है।
3. मुनिः + आगतः = मुनिरागतः

3.10 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थः-

1. गुप्त, डॉ. परमानन्द, संस्कृत व्याकरण सौराम् एवं संस्कृत साहित्य परिचय, सरस्वती हाउस (प्रा.) लि. 3649, चावडी बाजार, दिल्ली-110006 पो.बॉक्स नं.-1186।

2. द्विवेदी, पदम श्री कपिलदेव, भाषा-विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी-221001

3. प्रभाकरण, पण्डित विश्वनाथ शास्त्री, अघुसिद्धान्त कौमुदी, मोती लाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-7।

4. सिंह, डॉ. कर्ण, भाषा-विज्ञान, साहित्य भण्डार, साहित्य बाजार, मेरठ-250002।

5. त्रिपाठी, डॉ रूप नारायण, संस्कृत-व्याकरण एवं निबन्ध रचना, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौडा रास्ता, जयपुर - 302003

3.11 अभ्यास प्रश्नः–

1. भाषा विज्ञान की परिभाषा देते हुए भाषा-विज्ञान के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

2. निम्नलिखित धातुरूपों को लिखो -

- अस् धातु (लट् और लङ् लकार)
- कृ धातु (लट् और लङ् लकार)
- नम् धातु (लट् और लङ् लकार)
- कथ् धातु (लट् और लङ् लकार)

3. सन्धि किसे कहते है? स्वर सन्धि के भेदों का वर्णन कीजिए।

पाठ–4

प्रत्यय, शब्द कोश एवं अक्षर विन्यास में अशुद्धियां एवं निवारण के उपाय।

<u>संरचना</u>

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 प्रत्यय

4.4 शब्दकोश एवं अक्षर विन्यास में अशद्धियां

4.5 स्वयं आकलन प्रश्न

4.6 अक्षर विन्यास में अशुद्धियों के कारण

4.7 अक्षर विन्यास की अशुद्धियों को दूर करने के उपाय

4.8 सारांश

4.9 कठिन शब्दावली

4.10 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

4.11 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ

4.12 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इस पाठ के अन्तर्गत प्रत्यय के भेदों का वर्णन किया गया है। प्रत्यय अनेक प्रकार के होते हैं, कुछ प्रत्यय जुडनें से संज्ञापद तथा कुछ प्रत्यय जुडने से क्रियापद बनते हैं। इनका संस्कृत भाषा में विशेष महत्व है। प्रत्ययों के साथ शब्द कोश एवं अक्षर विन्यास की अशुद्धियों के कारण पर भी प्रकाश डाला गया है तथा अक्षर विन्यास की अशुक्ष्यिों को दूर करने के उपायों पर भी चर्चा की गई है।

4.2 उद्देश्य

इस पाठ के अन्त में शिक्षार्थी-

1. प्रत्ययों का वर्णन करने में सक्षम होगें
2. शब्दकोश एवं अक्षर विन्यास की अशुद्धियों से परिचित होगें।
3. अक्षर विन्यास की अशुद्धियों के निवारण के उपायों से परिचित होगें।

4.3 प्रत्यय

जो शब्दांश संज्ञापदों या क्रिया पदों के अन्त में जुडकर नये शब्द का निर्माण करते है वे प्रत्यय कहलाते है। सुप् (शब्द रूपों का निर्माण करने वाला विभक्ति प्रत्यय) तथा तिङ् (लट् आदि लकारों में धातु रूपों का निर्माण करने वाले) प्रत्ययों के अतिरिक्त संस्कृत में तीन प्रकार के प्रत्यय होते है।

- कृत प्रत्यय
- तद्धित प्रत्यय
- स्त्री प्रत्यय

4.3.1 सुप् प्रत्यय-

संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण शब्दों के कारकों को प्रकट करने के लिए जो सु और जस् (प्रथमा), अम् और शस् (द्वितीया) इत्यादि 21 प्रत्यय जोडे जाते हैं जिनसे रामः रामौ रामाः आदि शब्द रूप बनते है वे सुप् प्रत्यय कहलाते है।

4.3.2 तिङ् प्रत्यय-

धातुओं से तीनों पुरुषों एवं तीनों वचनों तथा 10 लकारों में क्रिया रूप बनाने के लिए जिन तिप्, तस् झि सिप् भस्, थ तथा मिप् वस् मस् एवं ते एते अन्ते आदि प्रत्ययों को जोडा जाता है वे तिङ् प्रत्यय कहलाते हैं। इनसे भवति भवतः भवन्ति आदि धातुरूप बनाये जाते हैं।

4.3.3 कृत् प्रत्यय-

धातुओं से संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया विशेषण बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हें प्रत्यय कहते है। इनसे बनने वाले शब्द कृदन्त कहे जाते हैं। कृत और तद्धित प्रत्ययों का यही अन्तर है कि कृत् प्रत्यय धातु से लगते है और तद्धित प्रत्यय सदा संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और अव्ययों के बाद जोड़े जाते है। इन कृदन्तों को प्रयोग कर्ता या कर्म, लिंग और वचन के अनुसार होता है, पुरूष के अनुसार नहीं। तीनों पुरूषों में क्रिया का एक ही रूप रहता है - जैसे - सः (त्वं, अहं) गतवान्। कृत प्रत्ययों के दो भेद हैं - कृत्य और कृत् प्रत्यय। ये प्रत्यय हैं - तव्यत्, अनीयर, ल्यप्, क्तं, शतृ, शानच्, तुमुन, क्त्वा आदि।

4.3.3.1 विधिबोधक तव्यत् और अनीयर प्रत्यय-

ये दोनों प्रत्यय प्रत्येक धातु से लगाए जाते हैं। सकर्मक क्रियाओं के कर्म वाच्य में और अकर्मक क्रियाओं से भाववाच्य में किए जाते हैं। तेन पठनीयम् - उसे पढना चाहिए। प्रमुख धातुओं के तव्यत् और अनीयर् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप है।

धातु तव्यत् (तव्य) **अनीयर्मनीय**

धातु	तव्यत्	अनीयर्	धातु	तव्यत्	अनीयर्
पठ	पठितव्यः	पठनीयः	धा	धातव्यः	धानीयः
लिख्	लेखितव्यः	लेखनीयः	नी	नेतव्यः	नेयनीयः
शास्	शासितव्यः	शासनीयः	वद्	वदितव्यः	वदनीयः
आप्	आप्तव्यः	आपनीयः	भू	भवितव्यः	भवनीयः
जि	जेतव्यः	जयनीयः	कथ्	कथयितव्य	कथनीयः
त्यज्	त्यक्तव्यः	त्यजनीयः	अर्च्	अर्चितव्यः	अर्चिनीयः
दा	दातव्यः	दानीयः	दृश्	द्रष्टव्यः	दर्शनीयः
पा	पातव्यः	पानीयः	पच्	पचतव्यः	पचनीयः
			पत्	पतितव्यः	पतनीयः

4.3.3.2 यत् प्रत्यय–

यत् प्रत्यय कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में प्रयुक्त होता है कर्तृवाच्य में नहीं। यत् प्रत्यय से बने शब्द वाक्य में संज्ञाओ के विशेषण बनकर प्रयुक्त होते है। यत् प्रत्यय का केवल 'य' ही शेष रहता है। यत् प्रत्ययान्त रूप इस प्रकार है।

धातु	यत् (य)	धातु	यत् (य)
ची	चेयः	लभ्	लभ्यः
गम्	गम्यः	पा	पेयः
नी	नेयः	जन्	जन्यः
स्था	स्थेयः	शक्	शक्य
वि+ज्ञा	विज्ञेयः	भू	भव्यः
शप्	शप्यः	धा	धेयः

हन्	वध्यः	दा	देयः

4.3.3.3 क्यप् प्रत्यय–

यत् प्रत्यय के अर्थ में ही क्यप् प्रत्यय भी धातुओं से होते हैं। क्यप् का भी ‘य’ ही शेष रहता है।

धातु	**क्यप् (य)**	**धातु**	**क्यप् (य)**
कृ	कृत्यः	वृ	वृत्यः
भृ	भृत्यः	वृष्	वृष्यः
दृश्	दृश्यः	मृज्	मृज्यः
स्तु	स्तुत्यः	आ+दृ	आदृत्यः

4.3.3.4 ण्यत् प्रत्यय–

ण्यत् प्रत्यय भी धातुओं से होत है। ण्यत् का भी ‘य’ ही शेष रहता है।

धातु	**ण्यत् (य)**	**धातु**	**ण्यत् (य)**
कृ	कार्यः	यज्	याज्यः
धृ	धार्यः	याच्	याच्यः
पठ्	पाठ्यः	श्रु	श्राव्यः
पच्	पाच्यः	सेव्	सेव्यः
चिन्त्	चिन्तः	वच्	वाच्यः

4.3.3.5 वर्तमानकालिक शतृ और शानच् प्रत्यय–

धातु से वर्तमानकालिक विशेषण बनाने के लिए परस्मैपदी धातु से शतृ प्रत्यय और आत्मनेपदी धातुओं से शानच् प्रत्यय जोडा जाता है। धातु से इन प्रत्ययों के जुडने से उन धातुओ के वर्तमानकालिक अर्थ का बोध विशेषण रूप से होता है।

शतृ प्रत्यय का अत् शेष रहता है। वर्तमान काल अर्थात लट् लकार के प्रथम पुरूष का बहुवचन का रूप जैसा बनता है। जैसे- गम् धातु से जब शतृ प्रत्यय होगा तो गम् को गच्छ होकर उससे अत् प्रत्यय जुड जाएगा और गच्छत् रूप बन जाएंगा। यह शब्द भी विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है। अतः तीनों लिंगों में इसके रूप बनते है। शानच् प्रत्यय का आन् शेष रहता है। शानच् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप पुल्लिंग बालक की तरह, स्त्रीलिंग में रमा की तरह तथा नपुंसकलिंग में फल शब्द की तरह रूप बनते है।

शतृ प्रत्यययान्त रूप-

धातु	**शतृ (अत्)**	**धातु**	**शतृ**	**धातु**	**शतृ**
भू	भवत्	गै	गायत्	स्मृ	स्मरत्
पठ्	पठत्	धाव्	धावत्	त्यज्	त्यजत्
गम्	गच्छत्	वस्	वसत्	हस्	हसत्
नी	नयत्	शास्	शासत्	स्था	तिष्ठत्
पच्	पचत्	मृज	मृजत्	दृश्	पश्यत्
पा	पिबत्	वच्	वचत्	रूद्	रूदत्
नम्	नमत्	दह्	दहत्	दुह्	दुहत्
चल्	चलत्	पत्	पतत्		
वद्	वदत्	हृ	हरत्		

शानच् प्रत्ययान्त रूप-

धातु	**शानच् (आन्)**	**धातु**	**शानच् (आन्)**
शिक्ष्	शिक्षमाणः	रूच्	रोचमानः
सेव	सेवमानः	पच्	पचमानः

लभ्	लभमानः	वृत्	वर्तमानः
यज्	यजमानः	श्रि	श्रयमाणः
नी	नयमानः	युज्	युज्यमानः

4.3.3.6 तुमुन् प्रत्यय–

जिस क्रिया के लिए कोई क्रिया की जाती है उसकी धातु में भविष्यत् काल के अर्थ को प्रकट करने के लिए धातु से तुमुन् प्रत्यय होते हैं। तुमुन् प्रत्ययान्त क्रिया और दूसरी क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए। कालवाची शब्दों के साथ एक कर्ता न होने पर भी तुमुन् प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग होता है। तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होते हैं। इनके रूप सदा एक जैसे ही रहते है। तुमुन् प्रत्ययान्त रूप इस प्रकार है–

धातु	**तुमुन् प्रत्यय (तुम्)**	**धातु**	**तुमुन् प्रत्यय (तुम)**
भू	भवितुम्	भक्ष्	भक्षयितुम्
हंस	हसितुम्	शास्	शासितुम्
कथ	कथयितुम्	जन्	जनितुम्
वद्	वदितुम्	भ्रम्	भ्रमितुम्
पठ्	पठितुम्	लिख्	लेखितुम्
सेव	सेवितुम्	कुप्	कोपितुम्
स्मृ	स्मर्तुम्	यज्	यष्टुम्
गै	गातुम्	स्पृश	स्प्रष्टुम
वस्	वस्तुम्	दह्	दग्धुम्
पा	पातुम्	प्रच्छ	प्रष्टुम्
दृश	द्रष्टुम्	ज्ञा	ज्ञातुम्
श्रु	श्रोतुम्	नी	नेतुम्

4.3.3.7 भूतकालिक क्त और क्तवतु–

धातु से भूतकालिक विशेषण बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते है वे दो हैं- क्त और क्तवतु। इन दोनों प्रत्ययों को ‘निष्ठा’ कहा जाता है। निष्ठा का अर्थ है - समाप्ति। क्त और क्तवतु किसी क्रिया की समाप्ति का बोध कराते है। ये दोनो प्रत्यय समाप्ति का बोध कराने के लिए सभी धातुओ से किए जाते हैं। क्त का ‘त’ और क्तवतु का तवत् शेष रहता है।

इनका प्रयोग विशेषण के रूप में होता है। इसलिए इसके रूप भी तीनो लिंगों में बनते हैं। जैसे - वृक्षः द्रष्टः में द्रष्ट शब्द पुल्लिंग, मया लातिका द्रष्टा में द्रष्टा स्त्रीलिंग, मया फलं खादितम् में खादितम् शब्द नपुसंकलिंग है।

इस प्रकार क्त प्रत्ययान्त शब्द के रूप पुल्लिंग में अकारान्त बालक शब्द के समान, स्त्रीलिंग में आकरान्त लता के समान और नपुंसकलिंग में अकरान्त फल शब्द के समान होगें। क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द के रूप पुल्लिंग में बलवत् के समान नपुंसकलिंग में जगत् के समान और स्त्रीलिंग में नदी शब्द के समान होगें। कुछ धातुओं के रूप क्त और क्तवतु प्रत्यय लगाकर दिए जा रहे है।

धातु	**क्त(त)**	**क्तवतु (तवत्)**	**धातु**	**क्त(त)**	**क्तवतु (तवत्)**
पू	पूतः	पूतवान्	भू	भूतः	भूतवान्
स्ना	स्नातः	स्नातवान्	कृ	कृतः	कृतवान्
चि	चितः	चितवान्	क्री	क्रीतः	क्रीतवान्
शक्	शक्तः	शक्त्वान्	दृश्	द्रष्टः	द्रष्टवान्
विश्	विष्टः	विष्टवान्	स्मृ	स्मृतः	स्मृतवान्
जि	जितः	जितवान्	लभ्	लब्धः	लब्धवान्

नी	नीतः	नीतवान्	हृ	हृतः	हृतवान्
स्तु	स्तुतः	स्तुतवान्	दुह्	दुग्धः	दुग्धवान्
हु	हुतः	हुतवान्	भी	भीतः	भीतवान्
नश्	नष्टः	नष्टवान्	चित्	चितः	चितवान्
स्पृश्	स्पृष्टः	स्पृष्टवान्	आप्	आप्तः	आप्तवान्
व्यज्	व्यक्तः	व्यक्त्वान्	भुज्	भुक्तः	भुक्त्वान्

4.3.3.8 पूर्वकालिक क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय–

जब एक ही कर्ता एक क्रिया को समाप्त करके दूसरी क्रिया करता है तो पहली क्रिया का बोध कराने वाली धातु के साथ–साथ क्त्वा प्रत्यय होता है। क्त्वा प्रत्यय का त्वा शेष रहता है। इसस बनने वाला शब्द अव्यय होता है। यह प्रत्यय प्रत्येक धातु से लगाया जाता है।

यदि किसी धातु से पहले कोई उपसर्ग हो तो क्त्वा प्रत्यय न होकर उसी अर्थ में उसके स्थान पर ल्यप् प्रत्यय लगाया जाता है। ल्यप् प्रत्यय का 'य' शेष रहता है। इस प्रकार ल्यप् प्रत्यय क्त्वा प्रत्यय का ही बदला हुआ रूप है। ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द भी अव्यय शब्द बन जाते हैं। धातुओं से क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द –

धातु	**क्त्वा प्रत्यय(त्वा)**	**उपसर्ग+धातु**	**ल्यप् प्रत्यय**
भू	भूत्वा	सम+भू	सम्भूय
घ्रा	घ्रात्वा	आ+घ्रा	आघ्राय
त्यज्	त्यक्त्वा	सम्+त्यज्	सन्त्यज्य
दह्	दग्ध्वा	सम्+दह्	सन्द्हय
या	यात्वा	प्र+या	प्रयाय
स्ना	स्नात्वां	अव+स्ना	अवस्नाय

दृश	दृष्ट्वा	सम्+दृश	संदृश्य
ज्ञा	ज्ञात्वा	आ+नी	आनीय
जि	जित्वा	अव्+ज्ञा	अवज्ञाय
क्री	क्रीत्वा	सम्+जि	संजित्य
कृ	कृत्वा	उप+कृ	उपकृत्य
चि	चित्वा	सम+चि	संचित्य
पच्	पक्त्वा	सम+पच्	सम्पच्य
दा	दत्वा	आ+दा	आदाय
कथ	कथयित्वा	सम्+कथ्	संकथ्य
याच्	याचित्वा	प्र+याच्	प्रयाच्य
रक्ष्	रक्षित्वा	सम्+रक्ष्	संरक्ष्य

4.3.4 तद्धित प्रत्यय-

संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण आदि शब्दों के साथ जुड़कर जो प्रत्यय अन्य शब्द बनाते है, उन्हें तद्धित प्रत्यय कहते है। तद्धित का व्युत्पत्ति परक अर्थ है - ऐसे प्रत्यय जो भिन्न-भिन्न प्रयोगों में काम आ सकें जैसे - वसुदेव+अण् = वासुदेव - वसुदेव का पुत्र। तद्धित प्रत्यय संख्या में अनन्त है। तद्धित प्रत्यय जोड़ने पर मूलशब्द में कुछ परिवर्तन हो जाते है।

4.3.4.1 अण् प्रत्यय-

अण् प्रत्यय सन्तान अर्थ से होता है तथा इसका 'अ' शेष रहता है इसमें उपधा के स्वर को वृद्धि हो जाती है जैसे -

वसुदेव+अण् - वासुदेवः नकुल+अण् - नाकुलः

शिव+अण्	-	शैवः	वसिष्ठ+अण्	-	वासिष्ठः
पृथा+अण्	-	पार्थ	पर्वत+अण्	-	पार्वती
देव+अण्	-	दवम्	इन्द्र+अण्	-	ऐन्द्रम्
बक्+अण्	-	बाकम्	कपोत+अण्	-	कापोतम्

4.3.4.2 त्व और तल् प्रत्यय-

भाव अर्थ में अर्थात भाववाचक संज्ञाएं बनाने के लिए शब्दों में 'त्व एवं तल्' प्रत्यय जोड़े जाते हैं। त्व प्रत्ययान्त शब्द नपुंसकलिंग में तथा तल् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं। 'तल्' के स्थान पर 'ता' हो जाता है।

शब्द	**त्व प्रत्ययान्त रूप**	**तल् प्रत्ययान्त रूप (ता)**
गो	गोत्वम्	गोता
शिशु	शिशुत्वम्	शिशुता
शुक्ल	शुक्लत्वम्	शुक्लता
दृढ़	दृढत्वम्	दृढ़ता
लघु	लघुत्वम्	लघुता
गुरु	गुरुत्वम्	गुरुता
महत्	महत्वम्	महत्ता
मूर्ख	मूर्खत्वम्	मुर्खता
उष्ण	उष्णत्वम्	उष्णता
जड़	जड़त्वम्	जड़ता
बन्धु	बन्धुत्वम्	बन्धुता
निपुण	निपुणत्वम्	निपुणता
मृदु	मृदुत्वम्	मृदुता

4.3.4.3 मतुप् प्रत्यय (मत्)-

इस प्रत्यय का प्रयोग 'वाला' अर्थ प्रकट करने के लिए किया जाता है। मतुप् प्रत्यय का केवल मत् शेष रहता है। यह प्रत्यय अधिकतर इकारान्त, ईकारान्त और उकारान्त इत्यादि शब्दों से जुडता है।

इकारान्त शब्द

शब्द	**मतुप् प्रत्ययान्त शब्द**	**शब्द**	**मतुप् प्रत्ययान्त शब्द**
अग्नि	अग्निमत्	गति	गतिमत्
शक्ति	शक्तिमत्	बुद्धि	बुद्धिमत्

ईकारान्त शब्द

शब्द	**मतुप् प्रत्ययान्त शब्द**	**शब्द**	**मतुप् प्रत्ययान्त शब्द**
धी	धीमत्	श्री	श्रीमत्
ह्री	ह्रीमत्		

उकारान्त शब्द

शब्द	**मतुप् प्रत्ययान्त शब्द**	**शब्द**	**मतुप् प्रत्ययान्त शब्द**
भानु	भानुमत्	अंशु	अंशुमत्
मधु	मधुमत्		

अकारान्त शब्द

शब्द	**मतुप् प्रत्ययान्त शब्द**
वधु	वधुमत्

ओकारान्त शब्द

शब्द	**मतुप् प्रत्ययान्त शब्द**
गो	गोमत्

हलन्त शब्द

शब्द	मतुप् प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	मतुप् प्रत्ययान्त शब्द
धनुष्	धनुष्मत्	गुरुत्	गुरुत्मत्
ककुद्	ककुद्मत्		

4.3.4.4 ठक् प्रत्यय–

संस्कृत में शब्दों से ठक् प्रत्यय की विभिन्न अर्थों में होते हैं। ठक् का ठ शेष रहता है तथा ठ को भी 'इक' आदेश हो जाता है। इस प्रकार ठक् प्रत्यय करने पर शब्दों के साथ 'इक' जुडता है। ठक् प्रत्यय का प्रयोग भाववाचक संज्ञा के अर्थ के रूप में होता है –

शब्द	ठक् प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	ठक् प्रत्ययान्त शब्द
धर्म	धार्मिकः	अस्ति	आस्तिकः
समाज	सामातिकः	पक्षी	पाक्षिकः
अधर्म	अधार्मिकः	मृग	मार्गिकः
न्याय	नैयायिकः	असि	आसिकः
नास्ति	नास्तिकः	मीन	मैनिकः
शब्द	शाब्दिकः	हस्ति	हास्तिकः
अक्ष	आक्षिकः	मरीचि	मारीचिकम्

4.3.5 स्त्री प्रत्यय–

संस्कृत में कुछ शब्द तो मौलिक रूप से ही पुल्लिंग या स्त्रीलिंग होते है। परन्तु कुछ पुल्लिंग शब्दों से स्त्रीलिंग बनाने के लिए उनके साथ जो प्रत्यय लगाए जाते हैं, उन्हें स्त्री प्रत्यय कहते हैं। इनमें तीन प्रत्यय प्रमुख हैं – टाप्, ङीप् तथा ङीष्।

4.3.5.1 टाप् प्रत्यय (आ)-

अजादि शब्दों से तथा अकारान्त शब्दों से स्त्रीलिंग में टाप् (आ) प्रत्यय लगता है। टाप् प्रत्यय का 'आ' शेष रहता है।

शब्द	टाप् प्रत्ययान्त शब्द	शब्द	टाप् प्रत्ययान्त शब्द
मूषक	मूषिका	बाल	बाला
वत्स	वत्सा	कोकिल	कोकिला
ज्येष्ठ	ज्येष्ठा	कनिष्ठ	कनिष्ठा
चपल	चपला	प्रथम	प्रथमा
अनुकूल	अनुकूला	आचार्य	आचार्या
कृश	कृशा	चञ्चल	चञ्चला
प्रतिकूल	प्रतिकूला	मध्यम	मध्यमा
अज	अजा	सुत	सुता
कृपण	कृपणा	दक्ष	दक्षा

4.3.5.2 ङीप् प्रत्यय-

ऋकारान्त तथा नकारान्त पुल्लिंग शब्दों से स्त्रीलिंग शब्द बनाने के लिए ङीप् (ई) प्रत्यय जोड देते है। ङीप् प्रत्यय 'ई' शेष रहता है। 'ङ्' और 'प्' का लोप हो जाता है।

ऋकारान्त पुल्लिंग	ङीप् प्रत्ययान्त	नकारान्त पुल्लिंग	ङीप् प्रत्ययान्त
कर्त	कर्त्री	दण्डिन्	दण्डिनी
विधातृ	विधात्री	तपस्विन्	तपस्विनी
कवयितृ	कवयित्री	तेजस्विन्	तेजस्विनी

जेतृ	जेत्री	मायाविन्	मायाविनी
हर्तृ	हर्त्री	यामिन्	यामिनी
गन्तृ	गन्त्री	दामिन्	दामिनी
धातृ	धात्री	यशस्विन्	यशस्विनी
अभिनेतृ	अभिनेत्री	तरस्विन्	तरस्विनी
दातृ	दात्री	मनस्विन्	मनस्विनी
विजेतृ	विजेत्री	भामिन्	भामिनी
हन्तृ	हन्त्री	गामिन्	गामिनी

जिन प्रत्ययों में उकार तथा ऋकार का लोप होता है (मतुप्, वतुप्, इयसुन्, क्वसु, क्तवतु तथा शतृ, उनमें भी ङीप् (ई) प्रत्यय होता है। जैसे-

शब्द	**ङीप् प्रत्ययान्त**	**शब्द**	**ङीप् प्रत्ययान्त**
श्रीमत्	श्रीमती	रूपवत्	रूपवती
बुद्धिमत्	बुद्धिमती	विद्वस्	विदुषी
जग्निवस्	जउमुषी	पठितवस्	पठितवती
गतवत्	गतवती	भवत्	भवन्ती

भ्वादि, दिवादि, अदादि, लुदादि तथा चुरादि एवं णिच् प्रेरेणार्थक में -

पठत्	पठन्ती	चलत्	चलन्ती
दर्शयत्	दर्शयन्ती	पृच्छत्	पृच्छन्ती
पचत्	पचन्ती	नृत्यत्	नृत्यन्ती

4.3.5.3 ङीष् (ई) प्रत्यय-

इन्द्र, वरूण, भव, शर्व, रूद्र, मृड, हिम, अरण्य, मातुल आचार्य शब्दों से ङीष् प्रत्यय होता है तथा उससे पूर्व आनुक् का आगम होता है। ङीष प्रत्यय का भी 'ई' ही शेष रहता है जैसे –

शब्द	**ङीष प्रत्ययान्त**	**शब्द**	**ङीष प्रत्ययान्त**
इन्द्र	इन्द्राणी	वरूण	वरूणानी
भव	भवानी	शर्व	शर्वाणी
रूद्र	रूद्राणी	मृड	मृडानी
हिम	हिमानी	अरण्य	अरण्यानी
यवन	यवनानी	आचार्य	आचार्याणी
मतुल	मातुलानी	उपध्याय	उपाध्यायानी

4.4 शब्दकोश एवं अक्षर विन्यास में अशद्धियां

साधारण शब्दों में अक्षर को उत्कीर्ण करना ही अक्षर विन्यास है। प्रत्येक भाषा को लिखित रूप प्रदान करने के लिए कुछ निर्धारित चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। मन के भावों, विचारों आदि को लिखित रूप में प्रकट करने के लिए उन निर्धारित चिह्नों का प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु इनका प्रयोग उस भाषा के व्याकरण नियमों के अनुरूप होता है। अतः संस्कृत भाषा में अक्षर-विन्यास से तात्पर्य देवनागरी लिपि के अनुरूप तथा व्याकरण के नियमों को ध्यान में रखते हुए शब्दों को शुद्ध रूप में लिखना है। इसे वर्तनी भी कहा जाता है। संस्कृत में वर्तनी या अक्षर-विन्यास की शुद्धता एक अनिवार्य अंग है। अक्षर-विन्यास की शुद्धता के लिए केवल प्राथमिक स्तर तक इसके प्रशिक्षण की आवश्यकता सीमित रह सकती क्योंकि प्रत्येक कक्षा में छात्र नये शब्दों से परिचित होते है। अतः वर्तनी की शिक्षा वरिष्ठ

माध्यमिक स्तर तक दी जाती है। संस्कृत भाषा में मुख्य रूप से निम्नलिखित अक्षर-विन्यास से सम्बन्धित अशुद्धियां की जाती है। -

4.4.1 मात्रा सम्बन्धी अशुद्धियाँ - संस्कृत में प्रायः व्यजनों के साथ स्वरों का प्रयोग करते समय स्वर के मूलरूप के स्थान पर उसकी मात्रा का प्रयोग होता है। जैसे आ के लिए 'ा', 'इ' के लिए 'ि', 'ई' के लिए 'ी' 'ओ' के लिए 'ो', 'औ' के लिए 'ौ', 'उ' के लिए ' ु', ऊ के लिए ' ू', 'ए' के लिए 'े' आदि मात्राओं का प्रयोग किया जाता है। परन्तु अधिकांश छात्र मात्राओं का अशुद्ध प्रयोग करते है। मात्रा सम्बन्धी अशुद्धियों को निम्नलिखित वर्गों में बाटाँ जा सकता है-

(क) इकार, ईकार सम्बन्धी अशुद्धियाँ -

शुद्ध	**अशुद्ध**	**शुद्ध**	**अशुद्ध**
रवि	रवी	रवीन्द्र	रविन्द्र
स्त्री	स्त्रि	स्त्रियाँ	स्त्रीयाँ

(ख) उकार, ऊकार सम्बन्धी अशुद्धियाँ -

शुद्ध	**अशुद्ध**	**शुद्ध**	**अशुद्ध**
रूप	रुप	रूपया	रुपया

(ग) एकार, ऐकार सम्बन्धी अशुद्धियाँ -

शुद्ध	**अशुद्ध**	**शुद्ध**	**अशुद्ध**
वेतन	वैतन	ऐसा	ऐैसा
वैतनिक	वेतनिक	ऐनक	एनक

(घ) ओकार, औकार सम्बन्धी अशुद्धियाँ -

शुद्ध	**अशुद्ध**	**शुद्ध**	**अशुद्ध**
पौरूष	पोरूष	कौमुदी	कोमुदी

नौकर	नोकर	औरत	ओरत

(ङ) **अकार, आकार सम्बन्धी अशुद्धियाँ –**

शुद्ध	**अशुद्ध**	**शुद्ध**	**अशुद्ध**
परिवार	पारिवार	व्यवहार	व्यावहार
पारिवारिक	परिवारिक	व्यावहारिक	व्यवहारिक
शरीर	शारीर	नरक	नारक
शारीरिक	शरीरिक	नारकीय	नरकीय

4.4.2 संयुक्त अक्षर सम्बन्धी अशुद्धियाँ – संस्कृत में अनेक अक्षर या शब्द संयुक्त व्यंजनों के रूप में भी लिखे जाते हैं। यथा- त्र, ज्ञ, क्ष ये तीनों संयुक्त अक्षर हैं। शब्दों में इन संयुक्त अक्षरों को अलग-2 करके लिखना दोष युक्त माना जाता है। अतः 'त्रिपाठी' को 'तिरपाठी' ज्ञान का ग्यान या ज्यान लिखना अशुद्ध है।

4.4.3 रेफ सम्बन्धी अशुद्धियाँ – हिन्दी में अधिकांश छात्र 'रेफ' सम्बन्धी अशुद्धियाँ करते हैं। वस्तुतः स्वर-रहित 'र' को लिखित रूप में शिरोरेखा के ऊपर (र्‍) के रूप में दर्शाया जाता है। यहाँ पर ध्यान रखा जाना चाहिए कि जिस वर्ण पर रेफ लगता है, उस वर्ण से पहले ही स्वर -रहित 'र' का उच्चारण होता है। परन्तु अधिकांश छात्र रेफ को उसी वर्ण पर लगाते है जिसका उच्चारण रेफ से पहले होता है यथा –

शुद्ध	**अशुद्ध**	**शुद्ध**	**अशुद्ध**
आशीर्वाद	आर्शीवाद	दर्शाया	दशार्या
रिपोर्ट	रिर्पोट	प्रवर्तक	प्रवतर्क

4.4.4 अनुस्वार व अनुनासिक सम्बन्धी अशुद्धियाँ – संस्कृत के शब्दों को लिखते समय अधिकाशं छात्र अनुस्वार व अनुनासिक सम्बन्धी अशुद्धियाँ करते है। छात्र अनुस्वार संबन्धी विशेष रूप से दो निम्नलिखित गलतियाँ करते है।

(क) अनुस्वर को अनुचित स्थान पर दर्शाना – वस्तुतः अनुस्वार उस वर्ण पर अंकित किया जाता है जिसकी ध्वनि या जिसका उच्चारण अनुस्वार से पहले किया जाता है। दूसरे शब्दों में, जिस वर्ण पर अनुस्वार लगा होता है, उस वर्ण का उच्चारण पहले होता है, अनुस्वार का उच्चारण उसके बाद में होता है। परन्तु छात्र इस नियम से अपरिचित होने के कारण अनुस्वार का अनुचित स्थान पर प्रयोग करते है यथा–

शुद्ध	**अशुद्ध**	**शुद्ध**	**अशुद्ध**
संत	सतं	वसंत	वसतं
गंगा	गगां	मंगल	मगंल
चंदन	चदंन		

(ख) अनुस्वार के स्थान पर अनुनासिक का प्रयोग –अनुस्वार व अनुनासिक में अन्तर है तथा यदि इनको परस्पर बदल कर प्रयोग किया जाए तो अर्थ भी परिवर्तित हो सकता है। उदाहरण के लिए हंस तथा हँस दोनों ही शब्दों के अर्थ भिन्न है। हंस एक पक्षी है, जबकि हँस एक शारीरिक चेष्टा है।

4.4.5 असावधानी – संस्कृत के अनेक वर्णों के आकार में पर्याप्त समानतासी होती है। उदाहरण के लिए – 'य' तथा 'थ', 'म' तथा 'भ', 'प' और 'फ', 'व' तथा 'ब' लिखते समय अधिकांश छात्र जब थोडा असावधान हो जाते हैं, तब वे प्रायः इन वर्णों को अशुद्ध रूप से लिख देते है या फिर उस पर अनुस्वार लगा देते

है। फलतः उनके शब्द में परिवर्तन हो जाता है और उनका लिखा शब्द वाक्य उनके भावों के रूप अर्थ को अभिव्यक्त न करके, दूसरे अर्थ को अभिव्यक्त करता है। अतः यहाँ पर भी वर्तनीगत दोष उत्पन्न हो जाता है, यथा -

शुद्ध	**अशुद्ध**	
बदरी प्रसाद	बंदरी प्रसाद	(अनुस्वार का अनावश्यक प्रयोग)
पायल	पाथल	('य' के स्थान पर 'थ' का प्रयोग)

4.4.6 स, श, ष सम्बन्धी अशुद्धियाँ - अधिकांश छात्र इन तीनों ही ध्वनियों को एक समान मानकर उनका मनमाना प्रयोग करते हैं। फलतः उनके लिखे शब्दों को अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उदाहरण के लिए - 'विष' का अर्थ होता है जहर जबकि 'विस' का अर्थ 'कमलनाल' होता है। इसी प्रकार 'शक्ल' का अर्थ 'चेहरा' है तो 'सकल' का अर्थ 'सारा' होता है। इस प्रकार श, स, ष का अनुचित प्रयोग करने से वर्तनी अशुद्धियाँ हो जाती है।

4.4.7 न और ण सम्बन्धी अशुद्धियाँ - संस्कृत में अपने भावों, विचारों आदि को लिखित रूप में प्रकट करते समय छात्र प्रायः 'न' और 'ण' व्यंजन के प्रयोग में अशुद्धियाँ करते हैं। इस अशुद्धि से अर्थ भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए - 'पानी' का अर्थ होता है 'जल' जबकि पाणी का अर्थ होता है 'हाथ' इसी प्रकार 'फण' का अर्थ होता है 'साँप का फैला हुआ मुँह' जबकि 'फन' का अर्थ 'विद्या' होता है।

4.4.8 शिरोरेखा का अभाव - कुछ छात्र विशेषकर उच्च कक्षाओं में विद्यार्थी संस्कृत में वाक्य रचना करते समय पदों या शब्दों पर शिरोरेखा नहीं लगाते हैं। मानक भाषा की दृष्टि से यह भी वर्तनीगत अशुद्धि मानी जाती है।

4.4.9 ड, ड़, ढ, ढ़ सम्बन्धी अशुद्धियाँ – छात्र वाक्य लिखते समय ड, ड़, ढ, ढ़ सम्बन्धी अशुद्धियाँ भी करते है। वस्तुतः ये चारों ध्वनियाँ भिन्न है। अतः 'ड' के स्थान पर 'ड़' या फिर 'ढ' के स्थान पर 'ढ़' का प्रयोग करने से वर्तनीगत अशुद्धि हो जाती है।

4.4.10 ब तथा व के प्रयोग सम्बन्धी अशुद्धियाँ – अनके छात्र या तो अज्ञानवश या फिर द्रुत गति से लिखने के प्रयास मे 'ब' को 'व' या फिर 'व' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग करके वर्तनीगत अशुद्धि कर देते है। इन व्यंजनों के पारस्परिक गलत प्रयोग से भी अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उदाहरण के लिए 'वीर' का अर्थ 'साहसी' होता है जबकि 'बीर' का अर्थ 'भाई' होता है इसी प्रकार 'बारी' का अर्थ 'किनारा' या 'तट' होता है जबकि 'वारी' का अर्थ 'हाथी को बांधने की जंजीर' होती है। अतः शिक्षक छात्रों को उन शब्दों की तालिका बनाने के लिए प्रेरित कर सकता है जो 'ब' तथा 'व' के प्रयोग से सम्बन्धित है।

4.4.11 क्ष तथा छ सम्बन्धी अशुद्धियाँ – हिन्दी में 'क्ष' एक संयुक्त व्यंजन है जो क+ष के संयोग से बना है। जबकि 'छ' चवर्ग की तालव्य ध्वनि है इन दोनों का प्रयोग करते समय यदि असावधानी की जाए अर्थात् 'क्ष' के स्थान पर 'छ' या 'छ' के स्थान पर 'क्ष' का प्रयोग किया जाए तो अनर्थ हो जाता है। उदाहरण के लिए – 'क्षत' का अर्थ 'घाव' तथा 'छत' का अर्थ कमरे या मकान के ऊपर का ढका हुआ भाग होता है।

4.4.12 वर्णो का लोप – भाषा में अनेक शब्द द्वित्व व्यंजनों के संयोग से युक्त होते हैं। परन्तु छात्र त्रुटिवश इन द्वित्व व्यंजनों में से किसी एक वर्ण का लोप कर देते है फलतः उनकी लिखित भाषा में वर्तनीगत अशुद्धि आ जाती है। जैसे –

‘उद्देश्य’ के स्थान पर ‘उद्देश्य’, ‘अध्ययन’ के स्थान पर ‘अध्यन’ लिखना वर्णों का लोप संबन्धी अशुद्धियाँ है। यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि अनके द्वित्व व्यंजनों में इस प्रकार की अशुद्धि करने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

4.4.13 वर्णो का अनावश्यक प्रयोग – कुछ छात्र वाक्य लिखते समय शब्दों में वर्णो का अनावश्यक प्रयोग करके वर्तनीगत अशुद्धियाँ करते हैं। वस्तुतः ऐसी अशुद्धियाँ मातृभाषा या बोली के प्रभाव के कारण होती है। उदाहरण के लिए – ‘तुमने’ के स्थान पर ‘तुम्हने’, ‘राजेन्द्र’ के स्थान पर ‘राजिन्दर’ लिखना ऐसी ही वर्तनीगत अशुद्धियाँ है।

4.4.14 अल्पप्राण ध्वनियों के स्थान पर महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग – छात्र प्रायः वाक्य लिखते समय अल्पप्राण ध्वनियों के स्थान पर महाप्राण या महाप्राण के स्थान पर अल्पप्राण ध्वनियों का प्रयोग करते देते है। उनकी रचना में वर्तनीगत अशुद्धि हो जाती है। जैसे – ‘घर’ के स्थान पर ‘गर’ ‘शुष्क’ के स्थान पर ‘सूख’ तथा ‘वेष’ के स्थान पर ‘भेष’ लिखना आदि

4.4.15 विसर्ग का लोप –यद्यपि मानक हिन्दी में अब उन्हीं शब्दों के साथ विसर्ग लगाना अनिवार्य माना गया है जो अप्रचलित तत्सम शब्द है। विसर्ग युक्त प्रचलित तत्सम शब्द जैसे दुःख को ‘दुख’ लिखना सही माना गया है। परन्तु अन्तःसाक्ष्य के स्थान पर अन्तसाक्ष्य तथा अधःपतन के स्थान पर अधपतन लिखना वर्तनीगत अशुद्धि माना गया है।

4.4.16 ख सम्बन्धी अशुद्धियाँ – अधिकांश छात्र ‘ख’ लिखत समय दोनो लिपि चिह्नों को परस्पर स्पर्श नहीं करते। उनके द्वारा लिखा गया ‘ख’ ‘रव’ के रूप

में पढा जाता है और इस प्रकार उनके लिखित वाक्य में वर्तनीगत अशुद्धि हो जाती है।

4.5 स्वयं आकलन प्रश्न :-

1. कृत प्रत्यय किन के साथ जोड़े जाते है।
2. धर्म + ठक् का क्या रूप बनाता है।
3. सुत + टाप् प्रत्यय का क्या रूप बनाता है।

4.6 अक्षर विन्यास में अशुद्धियों के कारण :-

अपने विचारों या भावों को लिखित रूप से अभिव्यक्त करते समय छात्र अक्षर-विन्यास संबंधी अशुद्धियाँ करते हैं। इन अशुद्धियों के निवारण से पहले उनको कारण को जानना आवश्यक है। संस्कृत में अक्षर-विन्यास की त्रुटियों के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :-

4.6.1 लिपि का अधूरा ज्ञान – संस्कृत भाषा लिखते समय अधिकांश छात्र इसलिए त्रुटिपूर्ण अक्षर लिखते है, क्योंकि उन्हें देवनागरी लिपि का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। वे विशष रूप से ड तथा ड़, व तथा ब, ढ तथा ढ़ में अन्तर नहीं समझते है। उनकी दृष्टि में पेड़ शब्द पेड, पढ़ शब्द को पढ लिखना वर्तनीगत अशुद्धियाँ करते है।

4.6.2 मात्राओं का अधूरा ज्ञान – संस्कृत भाषा की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें मात्राओं का नियम पूर्णरूप से वैज्ञानिक नहीं हैं। उदाहरण के लिए- विज्ञान शब्द में इ स्वर की मात्रा 'ि' का प्रयोग तो व से पहले हुआ है लेकिन उसका उच्चारण व के पश्चात् होता है।   जैसे –

	शब्द में प्रयुक्त ध्वनियों का क्रम	उच्चारित रूप
(क)	ि (इ की मात्रा)	
	व+ज्ञ+आ+न	व+ि (इ की मात्रा+ज्ञ्+आ+न)
(ख)	प+ा (आ की मात्रा)	
	ि (इ की मात्रा)+ण+	प+आ+ण+ि (इ की मात्रा)
	ि (इ की मात्रा)+न+	न+ि (इ की मात्रा)

इसी प्रकार स्वर-रहित र व्यंजन का प्रयोग जिस वर्ण पर किया जाता है, उस वर्ण से पहले ही उसका उच्चारण हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि उस पर किसी स्वर की मात्रा लगी हो तो स्वर-रहित 'र' का चिह्न उस मात्रा के भी पश्चात् लिखा जाता है जबकि उच्चारण उस व्यंजन व उसकी मात्रा से पहले किया जाता है। उदाहरण के लिए -

		लेखन-रूप में ध्वनिक्रम	उच्चारण रूप में ध्वनिक्रम
1.	पूर्वोत्तर	प्+ऊ+व्+ओ+र्+त्+त+र	प्+ऊ+र्+व्+ओ+त्+त+र
2.	पार्श्विक	प्+आ+इ+श्+व्+र+क	प्+आ+र्+श्+इ+व्+क

अत अधिकांश छात्र इन मात्राओं के प्रयोग का पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं करते हैं और वे भ्रमवश मात्राओं के प्रयोग में अशुद्धियां करते हैं। इस प्रकार उनके अक्षर-विन्यास में त्रुटि आ जाती है।

4.6.3 अशुद्ध उच्चारण - संस्कृत भाषा एक वैज्ञानिक भाषा है। इसके शब्दों का जैसा उच्चारण किया जाता है वैसे ही लिखा भी जाता है। अतः छात्रों का उच्चारण ही अशुद्ध होता है इसीलिए वे लिखते समय भी त्रुटियाँ करते है। उदाहरण के लिए - अधिकांशतः 'बहिन' के स्थान पर 'बहन' शब्द का उच्चारण किया जाता है। उसी

रूप में लिखा जाता है। इससे वर्तनी में त्रुटि आ जाती है। इस प्रकार संस्कृत भाषी छात्र-छात्राओं द्वारा किया गया अशुद्ध उच्चारण भी वर्तनीगत अशुद्धियों का प्रमुख कारण है।

4.6.4 असावधानी – कभी कभी छात्र लेखन कौशल में निपुण होने पर भी लिखते समय असावधान हो जाता है और वह अशुद्ध वर्ण का प्रयोग कर देता है। असावधानी के कारण वह वर्ण-विपयर्य, शब्द-विपयर्य या वर्ण रचना सम्बन्धी त्रुटि कर सकता है। उदाहरण के लिए – 'करवा' के 'करवा' (र तथा व को परस्पर जुड जाने से वह 'ख' बन जाता है।) 'घर' के स्थान पर 'धर' शब्द की रचना करना असावधानीगत त्रुटि का ही परिणाम है।

4.6.5 तीव्र गति से लिखने का प्रयास करना – कभी-कभी भावों को लिखित रूप मे अभिव्यक्त करते समय तीव्रगति से प्रयास करता है। ऐसे प्रयास में वह अपना पैन या पेंसिल को कम उठाता है। फलतः दो वर्णों में अनावश्यक रूप से एक रेखा खिंच जाती है तथा वह किसी अन्य वर्ण के रूप में दिखाई देने लगता है। फलतः उसका अक्षर-विन्यास अशुद्ध हो जाता है। उदाहरण के लिए – 'गमला' लिखते समय यदि छात्र पेन को न उठाए तो प्राय 'ममला' (ग का म) बन जाता है। इसी प्रकार तीव्रगति से लिखते समय अनुस्वार का अनुचित स्थान पर लग जाने की भी सम्भावना बन जाती है और यह अक्षर-विन्यास में त्रुटि का कारण बन जाता है।

4.6.6 शिक्षक अयोग्यता – प्रायः छात्र अपने शिक्षक का अनुकरण करते हैं। यदि अध्यापक ही संयोगवश या अयोग्यता के कारण अशुद्ध शब्द लिख देता है तो प्रायः छात्र उसी को आदर्श रूप समझकर उसका अनुकरण करते हैं। इस प्रकार उनका अक्षर-विन्यास अशुद्ध हो जाता है।

4.6.7 व्याकरण का अधूरा ज्ञान – यदि छात्र को व्याकरण सम्बन्धी नियमों का पूरा ज्ञान न कराया जाए तो वह शब्द रचना, अक्षर-विन्यास सम्बन्धी त्रुटियाँ करेगा। उदाहरण के लिए - यदि छात्र को यह व्याकरणिक नियम न बताया जा कि ईकारान्त या ऊकरान्त संज्ञाओं का बहुवचन बनाते समय ई का इ, ऊ का उ हो जाता है। तो वह अज्ञानतावश लडकियाँ के स्थान पर लडकीयाँ तथा आलुओं के स्थान पर आलूओं शब्द को ही लिखेगा। इस प्रकार व्याकरणिक नियमों का अधूरा ज्ञान भी अक्षर-विन्यास में अशुद्धियों का कारण बनता है।

4.6.8 संस्कृत शब्दों की वर्तनीगत सर्वमान्य एकरूपता का न होना – संस्कृत भाषा भारत के एक बडे भू-भाग पर बोली नहीं जाती है। अतः सभी क्षेत्रों में संस्कृत शब्दों की वर्तनीगत एकरूपता देखने को नहीं मिलती। फलतः एक मानक रूप के अभाव में दूसरे क्षेत्र के छात्र जिन शब्दों को शुद्ध रूप में लिखते है, दूसरे क्षेत्र में उसे अशुद्ध मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए - अ,आ स्वरों के दो रूप प्रचलित है। 'अ' और 'अ्र' तथा 'आ' और 'अ्रा'। इसी प्रकार 'ण' का भी दूसरा रूप 'राा' भी कुछ क्षेत्रों में प्रचलित हैं। परन्तु अब मानक संस्कृत वर्णमाला में अ,आ,ण रूप ही स्वीकृत हैं। अतः वर्णों के दूसरे रूपों का प्रयोग अमान्य है।

4.7 अक्षर विन्यास की अशुद्धियों को दूर करने के उपाय

वर्तमान अशुद्धियाँ छात्रों की लिखित अभिव्यक्ति को प्रभावहीन कर देती है। ऐसी दशा में शिक्षक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह छात्रों द्वारा की जाने वाली अक्षर विन्यास की अशुद्धियाँ के कारणों पर विशेष ध्यान दे तथा उन कारणों व अशुद्धियों को दूर करने का प्रयास करे। इस कार्य के लिए शिक्षक निम्नलिखित उपायों का प्रयोग कर सकता है-

4.7.1 लिपि का पूर्ण ज्ञान कराना – अक्षर विन्यास की अशुद्धियों को दूर कराने के लिए सर्वप्रथम छात्रों को लिपि का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। यद्यपि संस्कृत की लिपि देवनागरी है जो कि वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है। इसके वर्णों का वर्गीकरण भी वैज्ञानिक ढ़ग से किया जाता है। संस्कृत की पूर्ण लिपि का ज्ञान देने के लिए शिक्षक को निम्नलिखित तथ्यों की ओर ध्यान देना चाहिए-

संस्कृत के सभी वर्ण वैज्ञानिक पद्धति पर वर्गीकृत किए गए हैं। सबसे पहले स्वर और बाद में व्यंजन का वर्गीकरण किया गया है। सभी व्यजंन उच्चारण स्थान के आधार पर क्रमानुसार व्यवस्थित व वर्गीकृत किए गए है। उदाहरण के लिए- सबसे पहले कंठ्य व्यजंन, तत्पश्चात् तालव्य आदि व्यंजन आते हैं। इसी प्रकार वर्ण का अन्तिम व्यंजन अनुस्वार है।

यहाँ संस्कृत वर्णों के वर्गीकरण पर दृष्टिपात किया जा सकता है-

(क)

मूलस्वर	**अ**	**आ**	**इ**	**ई**	**उ**	**ऊ**	**ऋ**	**ए**	**ऐ**	**ओ**	**औ**
स्वरों की मात्राएं		ा	ि	ी	ु	ू	ृ	े	ै	ो	ौ

- ‘अ’ स्वर की कोई मात्रा नहीं होती है।
- ‘ऋ’ स्वर का प्रयोग केवल तत्सम शब्दों में होता है।
- अं तथा अः स्वतन्त्र स्वर नहीं है।

(ख) व्यंजन-

- स्पर्श व्यंजन = क,ख,ग,घ,ङ
- स्पर्श व्यंजन = ट,ठ,ड,ढ,ण

- स्पर्श व्यंजन = त,थ,द,ध,न
- स्पर्श व्यंजन = प,फ,ब,भ,म
- स्पर्श संघर्षी = च,छ,ज,झ,ञ
- अर्ध स्वर = य,व
- लुंठित = र
- पार्श्विक व्यंजन = ल
- उत्क्षिप्त व्यंजन = ड़,ढ,
- संघर्षी व्यंजन = श,ष,स,ह

इसमें कई वर्णों की बनावट में समानता सी दिखाई देती है। उदाहरण के लिए – 'भ' तथा 'म', 'ब' तथा 'व' में सूक्ष्म सा अन्तर ही है। यदि इन वर्णों का प्रयोग करते समय त्रुटिवश उसके समान प्रतीत होने वाले वर्ण को लिख दिया जाए तो वहाँ पर वर्तनीगत अशुद्धि हो जाती है।

4.7.2 व्याकरण का पूर्ण ज्ञान कराना – संस्कृत में वर्तनीगत अशुद्धि दूर करने के लिए छात्रों को उसके व्याकरण का पूरा ज्ञान देना भी अनिवार्य है। उदाहरण के लिए – संस्कृत में बहुवचन बनाते समय शब्द की प्रकृति देखी जाती है। इस प्रकार छात्रों को लिंग, वचन, परिवर्तन करने, संधि करने, उपसर्ग, प्रत्यय का प्रयोग करने आदि के समय व्याकरणिक नियमों का ज्ञान कराना चाहिए। इसके अतिरिक्त छात्र कारक चिह्नों या विभक्तियों का सही प्रयोग करने में भी असमर्थ होते हैं। उदाहरण के लिए – सम्बन्ध वाचक आदि कारको को सर्वनाम के साथ जोड़कर प्रयुक्त किया जाता है जबकिप्रायः संज्ञा में उसे अलग दर्शाया जाता है। उदाहरण के लिए – 'राम

का भाई लक्ष्मण है।' यहाँ 'राम' तथा 'का' दोनों को अलग-अलग दिखाया गया है। उसका भाई लक्ष्मण है। यहाँ पर सर्वनाम व सम्बन्ध कारक 'का' दोनों का संयुक्त रूप से लिखा गया है।

4.7.3 शुद्ध उच्चारण पर बल देना – देवनागरी लिपि की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह जैसे बोली जाती है, उसी रूप में लिखी जाती है और जैसी लिखी जाती है वैसी ही बोली जाती है। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों को शब्दों के शुद्ध उच्चारण के लिए प्रेरित करे। जो छात्र संस्कृत शब्दों का शुद्ध उच्चारण करेगे, वे वर्तमान अशुद्धियाँ भी कम करेगें।

4.7.4 छात्रों से लेखन कार्य का सतत अभ्यास कराना – अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों को लेखन कार्य के लिए प्रेरित करे तथा उनसे लेखन कार्य का सतत्अभ्यास कराएं, आरम्भ में छात्र पाठ्य पुस्तकों के अनुच्छेद को लिखकर अपनी वर्तनीगत अशुद्धियों को दूर कर सकते है। तत्पश्चात् वे अपने मनोभावों व विचारों आदि को भी शुद्ध रूप में लिखकर स्पष्ट कर सकते हैं। जो छात्र जितना अधिक लेखन कार्य करेगा उसकी वर्तनीगत अशुद्धियाँ उतनी ही कम होती जाएगी।

4.7.5 लेखन कार्य को जांचना तथा उसकी त्रुटियों का संशोधन करना– केवल लेखन कार्य के सतत् अभ्यास से ही छात्र अपनी वर्तनीगत अशुद्धियों को दूर नहीं कर सकता है। ऐसी दशा में शिक्षक का कर्तव्य बनता है कि वह छात्रों के लेखन कार्य की जाँच करे और जहाँ अशुद्धियाँ दिखाई दे, वहाँ लाल स्याही से शुद्ध शब्द को लिख दे। उस शुद्ध रूप को पढ़कर वे इस वर्तनीगत त्रुटि को दूर कर सकेगें।

4.7.6 तीव्र गति से लिखने का प्रयास – यह देखा जाता है कि जब परिस्थितिवश छात्र को तीव्रगति से लिखना पड़ता है, विशेषकर परीक्षा देते समय, तथा वह

हड़बड़ाहट या जल्दबाजी में मात्राओं, अनुस्वार, अनुनासिक, प्रत्यय, उपसर्ग आदि से संबंधित अशुद्धियाँ कर देते हैं। इस प्रकार की वर्तनीगत अशुद्धियों को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि वह छात्रों को कक्षा में तीव्रगति से लिखने का अभ्यास कराएं। इस प्रकार के निरन्तर अभ्यास से अशुद्धियों पर रोक लगाई जा सकती है।

4.7.7 अध्यापक द्वारा शुद्ध लेखन – भाषा की एक विशेषता यह भी है कि वह अनुकरण से सीखी जाती है। यदि कक्षा में अध्यापक शब्द अशुद्ध रूप में लिखेगा या उसका अशुद्ध रूप उच्चरित करेगा तो निश्चित ही छात्र उसका अनुकरण करते हुए वर्तनीगत अशुद्धियाँ करेगें। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह श्यामपट्ट, पुस्तिका आदि पर लिखते समय शब्दों को शुद्ध रूप में ही लिखें।

4.7.8 शब्द पुस्तिका बनवाना – ज्यों-ज्यों छात्र का मानसिक विकास होता है, त्यों-त्यों नए-नए शब्दों, भावों, विचारों, विषयों आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त करता जाता है। उसका शब्द भण्डार समृद्ध होता जाता है। स्थायी बनाने के लिए शब्द-पुस्तिका बनाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

4.7.9 सामान्य त्रुटियों की ओर विशेष ध्यान देना – शिक्षक को चाहिए कि वह उन सामान्य वर्तनीगत त्रुटियों को वर्गीकृत करलें जिन्हें अधिकांश छात्र लेखन कार्य में करते है। उदाहरण के लिए 'मैं' तथा 'में' शब्दों पर अनुस्वार का प्रयोग न करना, 'हूँ' पर अनुनासिक का प्रयोग न करना आदि। शिक्षक ऐसे शब्दों का शुद्ध रूप श्याम पट्ट पर लिखकर छात्रों का ध्यान इनकी अशुद्धियों की ओर आकर्षित कर सकता है। फिर छात्र ऐसी अशुद्धियाँ नहीं करेगें।

4.7.10 शब्दों का विश्लेषण करवाकर उनका सरलीकरण करना – देवनागरी लिपि में संयुक्त वर्णों का प्रयोग किया जाता है। इसके एक ओर अनेक लाभ है तो कुछ

दोष भी हैं। इन संयुक्त वर्णों से युक्त शब्दों के विन्यास को समझना छात्रों के लिए कठिन कार्य है। उदाहरण के लिए - उत्तराद्र्ध शब्द को ले। इसकी वर्तनीगत अशुद्धियों को दूर करने के लिए शिक्षक को चाहिए कि वह इसका विश्लेषण करके इसकी रचना छात्र को समझाए कि यह शब्द उ+त्+त+र+आ+र+द्+ध के संयोग से बना है।

4.7.11 शब्द कोश का प्रयोग - छात्रों के शुद्ध वर्तनी का ज्ञान करने के लिए शिक्षक को चाहिए कि वह जटिल शब्द के शुद्ध रूप को जानने के लिए छात्रों में शब्द कोश का प्रयोग करने की आदत ड़ाले। शब्द कोश में शब्द खोजते समय छात्र एक दो नए शब्दों से परिचित होगें और उनके शब्द भण्डार में वृद्धि होगी।

4.7.12 खेल-विधि का प्रयोग करना - यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि बच्चे खेल-खेल में जितनी आसानी से सीखते है, उतनी आसानी से अन्य विधि से नहीं सीखते हैं। अतः शुद्ध वर्तनी का ज्ञान देने के लिए अध्यापक खेल-विधि का प्रयोग कर सकता है। उदाहरण के लिए - कक्षा में छात्रों को दो वर्गों में बॉटकर उन्हें स्वयं के व अपने साथियों के नाम के प्रथम वर्ण पर दस-पन्द्रह शुद्ध शब्दों के लिए प्रतियोगिता करवा सकता है।

4.8 सारांश

आप जान चुके होगें कि भाषा में प्रत्ययों का कितना महत्व है। इन प्रत्ययों को जोड़कर कितने प्रकार के शब्द बनाए जा सकते हैं। भाषा में अक्षर विन्यास की अशुद्धियों से परिचित हो चुके होंगे। भाषा में अक्षर विन्यास के अशुद्धियों के कारणों को भी जान चुकेगे। भाषा में इन अक्षर विन्यास की अशुद्धियों को दूर करने के

उपायों से भी परिचित हो चुके होंगे। अन्त में कह सकते है कि अक्षर विन्यास की शिक्षा देकर छात्रों की अक्षर विन्यास की अशुद्धियों को दूर करना चाहिए।

4.9 कठिन शब्दावली :-

रोचमानः = शोभायुक्त, ज्ञात्वा = जानना, दर्शनीयः = देखने योग्य, पातुम् = पीने योग्य

4.10 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :-

1. कृत प्रत्यय धातुओं से जोड़े जाते है।
2. धर्म + ठक् = धार्मिक
3. सुत + टाप् = सुता

4.11 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थः-

1. गुप्त, डॉ. परमानन्द, संस्कृत व्याकरण सौराम् एवं संस्कृत साहित्य परिचय, सरस्वती हाउस (प्रा.) लि. 3649, चावडी बाजार, दिल्ली-110006 पो.बॉक्स नं.-1186।

2. मिश्र, डॉ महेन्द्र कुमार, संस्कृत शिक्षण, श्याम प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौडाराजा, जयपुर-302003।

3. प्रभाकरण, पण्डित विश्वनाथ शास्त्री, अघुसिद्धान्त कौमुदी, मोती लाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-7।

4. त्रिपाठी, डॉ रूप नारायण, संस्कृत-व्याकरण एवं निबन्ध रचना, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौडा रास्ता, जयपुर - 302003

5. वर्मा, डॉ. पूर्णसिंह, संस्कृत-शिक्षण, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी, हरियाणा।

4.12 अभ्यास प्रश्न

1. प्रत्ययों का वर्णन कीजिए।
2. संस्कृत भाषा में अक्षर विन्यास की अशुद्धियों का वर्णन कीजिए।
3. संस्कृत भाषा में अक्षर विन्यास की अशुद्धियों के कारणों का उल्लेख कीजिए।
4. अक्षर विन्यास / वर्तनीगत अशुद्धियों को दूर करने के उपायों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

पाठ–5

पाठ्यक्रम अर्थः, महत्व, सिद्धांत एवं रूपरेखा पाठ्यक्रम

संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.2 पाठ्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषाएं

5.4 पाठ्यक्रम के लक्ष्य

5.5 पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं महत्व

5.6 स्वयं आकलन प्रश्न

5.7 पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न आधार

5.8 पाठ्यक्रम निर्माण के मुख्य सिद्धांत

5.9 संस्कृत पाठ्यक्रम निर्माण एवं समीक्षा

5.10 विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा संस्कृत पाठ्यक्रम सुधार के लिए सुझाव

5.11 सारांश

5.12 कठिन शब्दावली

5.13 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

5.14 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ

5.15 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है यह वह मार्ग है जिस पर चलकर शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों अपने शैक्षिक उद्देश्य को प्राप्त करते हैं। क्या पढ़ना है? कितना पढ़ना है? किसे पढ़ना है? कब पढ़ना है? आदि प्रश्नों के उत्तर पाठ्यक्रम के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं। पाठ्यक्रम में विशेष विद्यालय स्तर की शिक्षा का पूरा लेखा-जोखा होता है। अतः विद्यालय शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम का अपना एक निश्चित स्थान होता है। संस्कृत विषय का भी अपना एक निश्चित स्थान है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के प्रभावपूर्ण संपादन के लिए शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों को उस स्थान को आवश्यक रूप से समझना होता है। इसके साथ ही उन्हें इस बात की भी जानकारी हो जाए कि विभिन्न शिक्षा आयोगों में पाठ्यक्रम में संस्कृत विषय के स्थान के संबंध में क्या कहा है। सरकार द्वारा क्या प्रयास किए गए हैं इनसे भी उन्हें अवगत कराया जाए।

5.2 उद्देश्य

इस पाठ के अंत में :-

1. संस्कृत पाठ्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषाएं देने में सक्षम होंगे।

2. पाठ्यक्रम के लक्ष्यों की व्याख्या करने में सक्षम होंगे।

3. पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं महत्व पर चर्चा कर सकेंगे।

4. पाठ्यक्रम के विभिन्न आधारों से परिचित होंगे।

5. पाठ्यक्रम निर्माण एवं समीक्षा करने में सक्षम होंगे।

6. पाठ्यक्रम में विभिन्न आयोगों द्वारा दिए गए सुझावों को जानने में सक्षम होंगे।

5.3 पाठ्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषाएं

पाठ्यक्रम शिक्षा का एक अभिन्न अंग है, जिसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। यह एक ऐसा साधन है, जो छात्र तथा शिक्षक को जोड़ता है। अध्यापक पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्रों के सर्वागीण विकास का प्रयास करता है। पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों को प्रशिक्षण एवं अध्यापकों को दिशा-निर्देश के अवसर प्राप्त होते हैं। पाठ्यक्रम एक प्रकार से अध्यापक के पश्चात छात्रों के लिए दूसरा पथ प्रदर्शक है। विद्यालय का संपूर्ण जीवन पाठ्यक्रम होता है। विद्यालय में होने वाले समस्त कार्यक्रम का आधार पाठ्यक्रम ही है। यदि पाठ्यक्रम को शिक्षा का प्राण कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके महत्व को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि इसका नियोजन वैज्ञानिक रीति से किया जाए। ऐसा होने पर ही विद्यालय का कार्य सुचारु रुप से चल सकता है।

5.3.1 पाठ्यक्रम का शाब्दिक अर्थ- पाठ्यक्रम अंग्रेजी भाषा के ''करीकुलम'' (curriculum) का पर्यायवाची है जिसकी उत्पत्ति लैटिन भाषा के ''क्यूरेर'' (currere) से हुई है। इसका अर्थ है- दौड़ का मैदान (race course) इस प्रकार पाठ्यक्रम बालक के लिए दौड़ का मैदान है, जिसे पूरा कर वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति करता है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में शिक्षार्थी, शिक्षक तथा पाठ्यक्रम को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। विद्यालय में शिक्षक-शिक्षार्थी द्वारा सुनिश्चित किए गए समन्वित क्रियाकलापों को ही पाठ्यक्रम कहा जाता है जिसके अंतर्गत शैक्षणिक व गैर शैक्षणिक वे सभी क्रियाकलाप आ जाते हैं, जो विद्यालय वातावरण में क्रियान्वित होते हैं।

‘‘पाठ्यक्रम एक कलाकार (शिक्षक) के हाथ में एक यंत्र (साधन) है, जिससे वह अपने कलाकक्ष (विद्यालय) में, अपने उद्देश्य के अनुसार अपनी वस्तु (छात्र) को कोई भी रूप दे सकता है।’’

इसमें कोई संदेह नहीं है कि वह अपनी वस्तु को अपने आदेशों के अनुकूल ढालने की कलाकार को स्वतंत्रता है क्योंकि कलाकार की वस्तु निर्जीव है, परंतु विद्यालय में शिक्षक की वस्तु छात्र सजीव है। पुराने समय में आवश्यकताएं सीमित थी, साधन सीमित थे, शिक्षक को अपने छात्र को नया रूप देने की पूरी स्वतंत्रता थी, परंतु आज बदलती हुई परिस्थितियों में शिक्षक की यह महता घट गई है फिर भी निश्चय ही शिक्षक के हाथ में पाठ्यक्रम बहुत ही महत्वपूर्ण साधन है।

5.3.2 पाठ्यक्रम का संकुचित एवं व्यापक अर्थ– सामान्यतः लोग पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम में भेद नहीं करते। पाठ्यक्रम को दो अर्थों में ही लिखा जाता है एक तो संकुचित अर्थ तथा दूसरा व्यापक अर्थ। संकुचित अर्थ में पाठ्यक्रम केवल पाठ्यचर्या है । इस अर्थ के अनुसार विभिन्न विषयों के अंतर्गत पढ़ाए जाने वाले विषयों के तथ्यों की सीमा निश्चित कर दी जाती है। जिससे सैद्धांतिक ज्ञान का स्वरूप होता है तथा जिसका निर्माण शिक्षाविद करते हैं, परंतु दूसरे व्यापक अर्थ में पाठ्यक्रम का तात्पर्य उन सभी अनुभवों से लिया जाता है जिन्हें बालक अपनी रुचियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न क्रियाओं द्वारा कक्षा के अंदर तथा बाहर प्राप्त करता है।

प्रायः पाठ्यक्रम को पाठ्यवस्तु समझ लिया जाता है जबकि दोनों में काफी अंतर है। इनमें पूर्ण एवं अंश का अंतर है । पाठ्यवस्तु शिक्षाविद बताते हैं और एक कक्षा विशेष में विद्यालय की सीमा में विकसित किए जाने वाले विभिन्न विषयों के ज्ञान की

रूपरेखा मात्र होता है। इस प्रकार पाठ्यवस्तु किसी स्तर के पाठ्यक्रम का वह भाग है जिसमें उत्तर के सैद्धांतिक विषयों के ज्ञान की सीमा निश्चित की जाती है, जबकि पाठ्यक्रम में नियोजित शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विद्यालय के अंदर तथा बाहर जो कुछ भी नियोजित रूप में किया जाता है, वह समाहित होता है।

पाठ्यवस्तु और पाठ्यक्रम में अंतर

पाठ्यवस्तु	पाठ्यक्रम
पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रम का केवल एक भाग है।	पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया का पूर्ण तथा अभिन्न अंग है।
पाठ्यवस्तु में सैद्धांतिक ज्ञान का स्वरूप होता है।	पाठ्यक्रम का रूप व्यापक होता है।
पाठ्यवस्तु का निर्माण शिक्षाविद् करते हैं।	पाठ्यक्रम का निर्माण अध्यापक स्वयं करता है।
पाठ्यवस्तु में ज्ञानात्मक पक्ष की ओर ध्यान दिया जाता है।	पाठ्यक्रम में शिक्षा के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जाता है।
पाठ्यवस्तु में विषय से संबंधित क्रियाएं होती हैं।	पाठ्यक्रम में ज्ञानात्मक कोशलात्मक तथा भावात्मक सभी पक्षों से संबंधित क्रियाएं होती हैं।
पाठ्यवस्तु का क्षेत्र सीमित होता है।	पाठ्यक्रम का क्षेत्र व्यापक होता है।

5.3.4 पाठ्यक्रम की पुरानी अवधारणा-

पुरानी धारणा में पाठ्यक्रम केवल पाठ्यवस्तु अध्ययन है। इस अवधारणा में पाठ्यक्रम बड़े संकुचित अर्थों में लिया जाता है। इनका अर्थ केवल तथ्यों का ज्ञान

प्राप्त करना था जो भिन्न-भिन्न विषय प्रदान करते थे इसका कारण यह था कि प्राचीन समय में शिक्षा का उद्देश्य बहुत सीमित था। इसलिए विद्यार्थियों को भाषाओं, सामाजिक विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान आदि का मौखिक ज्ञान करा देना ही पाठ्यक्रम में शामिल था। इस विषय में विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए गए हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:-

''पाठ्यक्रम'' की संकुचित धारणा को स्वीकार करते हुए कनिंघम महोदय ने लिखाः-''पाठ्यक्रम कलाकार के हाथों में वह यंत्र साधन है, जिससे वह अपने वस्तु (छात्र) को अपनी कलाकक्ष (विद्यालय) में अपने आदर्शों उद्देश्यों के अनुसार बनाता है।''

कार्टर बी. गुड के अनुसार,''पाठ्यक्रम निर्देशन की विशिष्ट सामग्री अथवा पाठ्यवस्तु की एक संपूर्ण तथा सामान्य योजना है, जिसे स्कूल छात्रों के सम्मुख इसलिए प्रस्तुत किया जाता है कि जिससे वे व्यवसायिक अथवा पेशे में प्रवेश करके स्नातक बनने अथवा प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के योग्य बन जाए ।''

कोमीनियस के मतानुसार,''पानी, पृथ्वी, आकाश, पाताल, मानव-शरीर, आत्मा, पवित्र-जल, कलाओं, अर्थशास्त्र ,राज-व्यवस्था, अर्थ-संरचना, धर्म में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे बुद्धिमता के छोटे उम्मीदवारों (प्रतियोगियों) को अपरिचित रखा जा सके।''

डा0 आर0 एन0 सफाया के अनुसार, ''पाठ्यक्रम स्कूलों में निर्देशन के लिए एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित किए गए विशेष समूह के अध्ययन की विषय वस्तु है।''

एबिजाबैथ मैस्सी के अनुसार, ‘‘पाठ्यक्रम छात्रों के लिए निर्धारित निर्देश सामग्री है।’’

5.3.5 पाठ्यक्रम की आधुनिक अवधारणाः-

हमारा समाज गतिशील है, इसमें निरंतर परिवर्तन आते ही रहते हैं। कई बार यह परिवर्तन दिखाई नहीं देते तथा कई बार यह अचानक होने के कारण दिखाई देते हैं। जहां एक और समाज में परिवर्तनों की निरंतरता देखने में आ रही है, वहीं दूसरी और ज्ञान का विस्फोट भी हो रहा है। ऐसा अनुमान है कि जितनी ज्ञान में वृद्धि पिछले बीस वर्षों में हुई है उतनी उससे पिछले दो हजार वर्षों में भी नहीं हुई थी। ज्ञान के इस विस्फोट के कारण पुराना ज्ञान असंगत लगता है। ज्ञान के विस्फोट के कारण यह निश्चित करना है कि यह ज्ञान विद्यार्थियों को कैसे प्रदान किया जाए? वास्तविकता तो यह है कि हमें शैक्षिक उद्देश्यों की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम निर्माण पर अधिक ध्यान देना होगा। इसलिए नए पाठ्यक्रम में बालकों की आवश्यकताओं, रुचियों, प्रवृत्तियों तथा क्षमताओं को ध्यान में रखना पड़ेगा, ताकि इसमें व्यवहारिक क्रियाओं को शामिल किया जा सके। इन सब को ध्यान में रखते हुए कुछ शिक्षा शास्त्रियों ने पाठ्यक्रम की नई धारणा के अनुरूप निम्नलिखित कुछ परिभाषाएं दी हैं :-

हार्न के शब्दों में, ‘‘पाठ्यक्रम वह है जिसे बच्चे को पढ़ाया जाता है। यह सीखने तथा शांतिपूर्वक पढ़ने से कुछ अधिक है। इसमें उद्योग, व्यवसाय, ज्ञानोपार्जन अभ्यास तथा क्रिया सम्मिलित होती है। इस प्रकार वह विद्यार्थी के स्नायुमंडल के संगठन में होने वाली गतियों एवं स्वेगात्मक तत्वों को व्यक्त करता है।’’

क्रो एंड क्रो के अनुसार, ''पाठ्यक्रम में बच्चों के वे सभी अनुभव सम्मिलित हैं। जिन्हें वे स्कूल में तथा स्कूल के बाहर प्राप्त करता है। इन अनुभवों को एक कार्यक्रम के रूप में नियोजित किया जाता है। जो बच्चों के मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक, आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास के लिए बनाया जाता है।''

किल पैट्रिक के अनुसार, ''यह (पाठ्यक्रम) विद्यार्थियों का उस सीमा तक संपूर्ण जीवन है जिस सीमा तक विद्यालय इसे अच्छा या बुरा बनाने का उत्तरदायित्व स्वीकार करता है।''

डा0 जान डी0 वी0 के अनुसार, ''पाठ्यक्रम की योजना में वर्तमान जीवन की आवश्यकताओं की अनुकूलता का ध्यान रखना चाहिए। इसका चयन इस प्रकार हो कि हमारे समाज सामूहिक जीवन में सुधार होता कि हमारा भविष्य हमारे अतीत से अच्छा हो।''

रुडयार्ड तथा हेनरी के अनुसार, ''विस्तृत अर्थ के अंतर्गत समस्त विद्यालय वातावरण आता है जिसमें विद्यालय में प्राप्त सभी प्रकार के संपक्र, पठन क्रियाएँ एवं विषय सम्मिलित हैं।''

कैसवेल के शब्दों में, ''बच्चों के एवं उनके माता-पिता तथा अध्यापकों के जीवन में आने वाली सभी क्रियाओं को पाठ्यक्रम कहा जाता है। शिक्षार्थी के काम करने के समय में जो कुछ भी कार्य होता है उन सभी से पाठ्यक्रम का निर्माण होता है। वस्तुतः पाठ्यक्रम को अति युक्त वातावरण कहा गया है।''

फ्रोबेल के अनुसार, ''पाठ्यक्रम को मानव जाति के समूचे ज्ञान एवं अनुभव का केंद्र बिंदु समझना चाहिए।''

मुनरो के शब्दों में, ''पाठ्यक्रम में वह सब अनुभव निहित हैं जिनको विद्यालय द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग में लिया जाता है।''

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, ''पाठ्यक्रम का अर्थ केवल सैद्धांतिक पाठ्य-विषयों से नहीं है, जो विद्यालय में परंपरागत ढंग से पढ़ाई जाते हैं वरन् इसमें अनुभवों की वह संपूर्णता निहित है, जिसकी छात्र विद्यालय, कक्षा-कक्ष, पुस्तकालय, वक्रशाप, प्रयोगशाला और खेल के मैदान तथा शिक्षकों और शिष्यों के मध्य अगणित अनौपचारिक संपर्कों से प्राप्त करता है। इस तरह विद्यालय का संपूर्ण जीवन जो छात्र के व्यक्तित्व के विकास में सहायता देता है-पाठ्यक्रम कहा जा सकता है।''

5.4 पाठ्यक्रम के लक्ष्य- पाठ्यक्रम से संबंधित मुख्य लक्ष्य निम्न प्रकार से हैंः-

5.4.1 पार्श्व तथा लम्बित गतिशीलता के अवसर प्रदान करना- पाठ्यक्रम का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य विद्यार्थियों को पार्श्व तथा लंबित गतिशीलता के अवसर प्रदान करना है ताकि वे और अधिक शिक्षा प्राप्त कर सके तथा इसके साथ-साथ उन को विभिन्न अधिगम विधियों का भी प्रशिक्षण मिल जाए।

5.4.2 तकनीकी सहायता प्रणाली प्रदान करना- पाठ्यक्रम निर्माण का एक और लक्ष्य है तकनीकी सहायता प्रणाली प्रदान करना ताकि शिक्षा में निरंतर गुणात्मक सुधार होता रहे।

5.4.3 सामान्य कोर पाठ्यक्रम- पाठ्यक्रम का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य सारे देश में एक समान कोर पाठ्यक्रम का निर्माण करना है परंतु इसके साथ-साथ दूसरे भागों का

भी प्रावधान होना चाहिए ताकि स्थानीय तथा क्षेत्रीय आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जा सके।

5.4.4 अधिगम के न्यूनतम प्रतिमान का प्रावधान– शिक्षा के विभिन्न स्तर हैं। जैसे कि प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा आदि। पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर के एक उपयुक्त न्यूनतम प्रतिमान की प्राप्ति हो रही है।

5.4.5 प्रत्येक के लिए शिक्षा अवसर प्रदान करना– पाठ्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य सबके लिए शैक्षणिक अवसर प्रदान करना है। यह असपर शिक्षा के अवसरों की उपलब्धता से ही संबंधित नहीं, अपितु इसमें सफलता की दिशाएं भी सम्मिलित होनी चाहिए।

5.4.6 शिक्षा का सामान्य ढांचा– पाठ्यक्रम का मुख्य लक्ष्य पूरे देश में एक सामान्य ढांचा स्थापित करना है। शिक्षा के पाठ्यक्रम में विषमताएं प्रजातंत्र प्रणाली के अनुरूप नहीं।

5.4.7 राष्ट्रीय एकात्मकता तथा एकता को बढ़ावा– भारत विश्व का एक विशाल देश है जिसमें विभिन्न सस्कृतियों तथा सामाजिक आर्थिक प्रणालियों के लोग रहते हैं। भौतिक आधार पर यद्यपि यह एक दूसरे से बहुत दूर रहते हैं परंतु भावनात्मक रूप में उनके श्अनेकता में एकताश् का आभास होना चाहिए। इसी से राष्ट्रीय एकात्मकता तथा एकता को बढ़ावा मिल सकता है। पाठ्यक्रम निर्माताओं को इस दिशा में सतक्र होना होगा।

5.4.8 उद्यमी विकास तथा कार्य संसार में प्रदान कड़ी करने का प्रावधानः- आर्थिक पहलू जीवन का अधिक महत्वपूर्ण पहलू बनकर रह गया है। इसलिए पाठ्यक्रम कार्य-व्यग्र होना चाहिए। इस प्रकार के पाठ्यक्रम में न केवल श्रमिक-व्यग्रता दृष्टिगोचर हो, अपितु उत्पादन बढ़ाने तथा उत्तम उद्यमियों के प्रशिक्षण का भी प्रावधान हो।

5.5 पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं महत्वः- शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है, जिसमें छात्र, शिक्षक व पाठ्यक्रम की आवश्यकता है। शैक्षिक प्रक्रिया के तीन चालू है जिन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता हैः-

- शैक्षिक प्रक्रिया
    - शिक्षा क्यों?
    - शिक्षा कैसे?
    - शिक्षा में क्या?

'शिक्षा क्यों' का संबंध उद्देश्य से होता है। 'शिक्षक कैसे' का संबंध शिक्षण विधियों तथा 'शिक्षा में क्या' का संबंध पाठ्यक्रम से है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षक का उद्देशयों को प्राप्त करने, शिक्षण विधियों का चयन करने और लागू करने के लिए पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है।

प्रत्येक समाज की अपनी आवश्यकताएं, आकांक्षाएं, मान्यताएं एवं मूल्य होते हैं। इन्हें ही ध्यान में रखकर शैक्षिक उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जिन विषयों का ज्ञान एवं क्रियाओं को आवश्यक समझा जाता है।

उन्हें पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाता है। इस प्रकार शिक्षा के पाठ्यक्रम की बहुत आवश्यकता होती है। इसमें निम्नलिखित लाभ होते हैं:-

5.5.1 शिक्षा प्रक्रिया का व्यवस्थित होनाः- पाठ्यक्रम एक ऐसा लेखा-जोखा है जिसमें यह स्पष्ट किया जाता है कि शिक्षा के स्तर पर जैसे पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक आदि विद्यालयों में किन पाठ्य-विषयों का कितना ज्ञान एवं क्रियाओं में कितनी दक्षता का विकास किया जाएगा। इस प्रकार निश्चित पाठ्यक्रम शिक्षा की क्रिया को व्यवस्थित करता है।

5.5.2 सामाजिक परिवर्तनः- सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियंत्रण का प्रभावी एवं शक्तिशाली साधन पाठ्यक्रम ही है। पाठ्यक्रम भौतिक तथा सामाजिक वातावरण एवं इसके भागों को जागरूकता तथा समझ प्रदान करने हेतु अत्यधिक अनिवार्य है।

5.5.3 शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतुः- शिक्षा संबंधी उद्देश्य एवं लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रमुख साधन पाठ्यक्रम है। यदि पाठ्यक्रम को सुचारू रूप से पूरा किया जाता है, तो शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। हमें यह बात जान लेनी चाहिए कि यदि कोई निश्चित पाठ्यक्रम हो तो हम यह नहीं जान पाते कि किन विषयों के ज्ञान और किन क्रियाओं को के प्रशिक्षण से हम अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर रहे हैं और कौन-सी क्रियाएं निरर्थक हैं।

5.5.4 शिक्षा का स्तर समान रहनाः- निश्चित पाठ्यक्रम से पूरे समाज में शिक्षा का स्तर समान रहता है। जिसके परिणाम स्वरूप हमें शिक्षा में सुधार की सही दिशा प्राप्त होती है। अनिश्चित पाठ्यक्रम की स्थिति में हम शिक्षा के स्तर के उठने तथा

गिरने के कारणों का पता नहीं लगा सकते और उस स्थिति में शिक्षा मे सुधार नहीं किया जा सकता।

5.5.5 समय और शक्ति का सदुपयोगः- निश्चित पाठ्यक्रम शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के कार्य को निश्चित कर देता है। इससे अध्यापकों को यह पता रहता है कि उन्हें विद्यार्थियों को क्या सीखने में सहायता करनी है और विद्यार्थियों को यह पता होता है कि उन्हें क्या सीखना है? परिणामस्वरूप शिक्षा की प्रक्रिया सुचारू रूप से चलती है। शिक्षक तथा विद्यार्थी दोनों ही निश्चित समय में निश्चित कार्यों को पूरा करते हैं। इससे समय और शक्ति दोनों का स्वरूप सदुपयोग होता है।

5.5.6 मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्तिः- निश्चित पाठ्यक्रम से विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति होती है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो सप्रयोजन क्रियाओं में रुचि लेता है और ऐसा कार्य करना चाहता है, जिससे उसकी वर्तमान की पूर्ति होती है तथा भावी आवश्यकताओं की पूर्ति की संभावना बढ़ती है। पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इन सब बातों को ध्यान में रखा जाता है। इसी कारण बच्चे इसे पूरा करने में रुचि दिखाते हैं।

5.5.7 पाठ्य-पुस्तक के निर्माण में सहायकः- निश्चित पाठ्यक्रम भिन्न-भिन्न लेख को पाठ्यक्रम के अनुसार पुस्तकें तैयार करने में सहायता करता है। इसमें अनिवार्य सामग्री को प्रवेश देते हैं।

5.5.8 मूल्यांकन सहज एवं सरल होता हैः- किसी स्तर पर विशेष के लिए पाठ्यक्रम निश्चित होने से स्तर विशेष के विद्यार्थियों की योग्यता का मूल्यांकन करना सरल हो जाता है। यदि किसी स्तर के लिए कोई पाठ्यक्रम नहीं होगा तो अध्यापक

बच्चों की योग्यता का मूल्यांकन कैसे कर सकेगा? अध्यापक किसी स्तर पर विशेष बच्चों की योग्यता का मूल्यांकन इस पाठ्यक्रम के आधार पर ही करते हैं।

5.5.9 व्यक्तित्व का संतुलित विकासः– संतुलित विकास से अभिप्राय है कि विद्यार्थी का सर्वपक्षीय विकास अर्थात सामाजिक, नैतिक एवं शारीरिक विकास। पाठ्यक्रम में वे सभी अनुभव एवं क्रियाएं शामिल होती हैं जो व्यक्तित्व के विकास हेतु अनिवार्य हैं।

5.5.10 शिक्षण सामग्री का निर्धारणः– शिक्षण सामग्री का निर्धारण पाठ्यक्रम ही करता है। बिना पाठ्यक्रम के शिक्षा प्रक्रिया –दिष्टहीन हो जाएगी, क्योंकि इसके अभाव में हम यह नहीं जान सकते कि क्या पढ़ाया जाए?

5.5.11 विभिन्न प्रवृत्तियां तथा दर्शनों को दर्शानाः– पाठ्यक्रम शिक्षा की विभिन्न प्रवृत्तियां तथा विभिन्न दर्शनों के परिवर्तनों को दर्शाता है। दर्शन को क्रिया का जामा पाठ्यक्रम पहनाता है।

5.5.12 शिक्षण–विधियों का चुनावः– उचित शिक्षण विधि का ज्ञान शिक्षण के लिए बहुत आवश्यक है। पाठ्यक्रम के अभाव में नहीं जाना जा सकता की विषय–वस्तु कैसे पढ़ाएं तथा किन शिक्षण विधियों का प्रयोग करें?

5.6 स्वयं आकलन प्रश्न :–

1. पाठ्यक्रम के किन्ही दो लक्ष्यों के नाम लिखो।
2. पाठ्यक्रम निमाझी के दो सिद्धान्तों के नाम लिखो।

5.7 पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न आधार

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का विकास करना है। अतः उसे वही शिक्षा दी जानी चाहिए, जिसकी उसे आवश्यकता हो। इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्माण में शैक्षिक उद्देश्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, किंतु शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण व्यक्ति की आवश्यकता पर निर्भर करता है। किसी भी समाज में शिक्षक के स्वरूप को निश्चित करने में सबसे अधिक भूमिका समाज के जीवन दर्शन की ही होती है। जीवन दर्शन की व्याख्या दर्शन में की जाती है। इसके साथ-साथ उस समाज विशेष की संरचना, उसकी सभ्यता तथा धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति पर भी प्रभाव पड़ता है। मानव की स्वयं की प्रकृति भी शिक्षा के स्वरूप को प्रभावित करती है, इसका अध्ययन मनोविज्ञान ने किया जाता है। आज विज्ञान का युग है, विज्ञान के प्रभाव से शिक्षा कैसे बिना प्रभाव से रह सकती है। अतः पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक व तकनीकी विषयों क्रियाकलापों को महत्वपूर्ण माना जाता है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण का मूल आधार व्यक्ति की आवश्यकता व उसका जीवन-दर्शन हेतु जिसके निम्नलिखित तत्व प्रमुख हैं:-

5.7.1 ऐतिहासिक आधारः- अतीतकालीन प्रवृत्तियों का व्यवस्थित संकलन इतिहास है, इसके अध्ययन का उद्देश्य उस समय की घटनाओं से लाभ उठाना होता है। छात्रों में अपनी जाति के अनुभवों का ज्ञान प्राप्त करने तथा उनसे लाभ उठाने की दृष्टि से पाठ्यक्रम निर्माण में इतिहास को भी आधार बनाया जाता है। इससे जहां हमें अतीत की अच्छी बातों की पुनरावृत्ति की प्रेरणा मिलती है, वही असफलताओं व भूलों को न दोहराने की सीख भी प्राप्त होती है।

5.7.2 दार्शनिक आधारः- जीवन के प्रत्येक सामान्य तथा विशिष्ट क्षेत्र में दार्शनिक —दिष्टकोण का महत्व है। जॉनसन ने अपनी पुस्तक foundation of

curriculum में दर्शनशास्त्र को जीवन की समस्याओं का उत्तर प्राप्त करने तथा मानव-जीवन को सार्थक बनाने के लिए अध्ययन करने पर बल दिया है। वस्तुतः पाठ्यक्रम का मेरुदंड ही दर्शन है। इस प्रकार दर्शन तथा पाठ्यक्रम एक दूसरे से सबंधित माने गए हैं। प्राचीन काल से आज तक के इस पर्यवेक्षण से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सामाजिक परिस्थितियां और भिन्न-भिन्न विचार धाराएं जो हमें दर्शनशास्त्र में देखने को मिलती हैं। अतः प्रत्येक दार्शनिक विचारधारा का पाठ्यक्रम पर प्रभाव पड़ता है। इसका विवेचन निम्नलिखित रुप से हैः-

5.7.2.1 प्रकृतिवाद तथा पाठ्यक्रमः- प्रकृतिवाद बालक को केंद्र मानता है तथा उसके व्यक्तित्व को सबसे अधिक महत्व देता है। दर्शन शिक्षा में बालक की स्वाभाविक क्रियाओं के विकास पर बल देता है। प्रकृतिवादी विचारधारा छात्र को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्षधर थे। इसके अनुसार बालक के संभावित विकास के लिए पाठ्यक्रम में उसकी छवि को महत्त्व दिया जाना चाहिए। साथ ही खेलकूद, प्रकृति निरीक्षण, पर्यटन को प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए।

5.7.2.2 आदर्शवाद और पाठ्यक्रमः- यह विचारधारा शाश्वत मूल्यों को महत्व देती है। इस दर्शन में उन क्रियाओं पर बल दिया जाता है, जो बालक का चरित्र निर्माण करे। नन महोदय के अनुसार, ‘‘पाठ्यक्रम में सम्मिलित होने वाले विषयों का मूल्य तथा महत्व मानव जीवन के लिए उच्च्च होना चाहिए। यह व्यक्ति तथा समाज की जीवन रक्षा की क्रियाओं की पूर्ति में सहायक हो और मानव सभ्यता के निर्माण में सहायता प्रदान करें, क्योंकि यह क्रियाएं मानवभावों की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। इसमें व्यवसाय, धर्म, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, साहित्य, कला, संगीत, हस्त कौशल, विज्ञान,

गणित, भूगोल, इतिहास आदि विषयों का समावेश किया जाए।'' संस्कृत साहित्य को मूल्यों की स्थापना में अत्यधिक सहायक माना गया है।

5.7.2.3 यथार्थवाद और पाठ्यक्रमः- यथार्थवादी व्यावहारिक ज्ञान को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। उनके अनुसार पुस्तकीय ज्ञान इतना महत्वपूर्ण नहीं है, छात्र को यथार्थ से परिचित करना ही उद्देश्य है। यथार्थवादियों के अनुसार बालक के अमूर्त एवं काल्पनिक भावों को विकसित करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। उसके लिए पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों, दैनिक क्रियाकलापों तथा व्यवसायों का समावेश होना चाहिए जो छात्र को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से परिचित करवा सकें। इसके लिए यह पाठ्यक्रम में गणित, भौतिक विज्ञान व सामाजिक विज्ञान को स्थान देने के पक्षधर है।

5.7.2.4 प्रयोजनवादी और पाठ्यक्रमः- प्रयोजनवादी शैक्षिक प्रक्रिया में बालक को ही अधिक महत्व देता है तथा बालक को ही शिक्षा का केंद्र मानता है। इस विचारधारा अनुसार सत्य परिवर्तनशील है। शाश्वत सत्य जैसी कोई बात नहीं है। शिक्षा में भी कोई चीज स्थायी नहीं है। प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभव ही बालक को भावी जीवन के लिए तैयार करता है। अतः विषयों की तुलना में अधिक महत्व अनुभवों को ही दिया जाता है। उनके अनुसार अनुभव ही बालक का सर्वागीण विकास करके उसे सफल सामाजिक जीवन के लिए तैयार करता है। पाठ्यक्रम में इस विचारधारा के पोषक, हस्तकला व उद्योग-धंधों, स्वस्थ एवं विज्ञान को स्थान देने के पक्षधर है।

5.7.3 सामाजिक आधारः- मनुष्य का कोई भी पक्ष समाज से अछूता नहीं है। उसकी प्रत्येक गतिविधि का समाज पर प्रभाव पड़ता है। शिक्षा के पाठ्यक्रम निश्चित करने में दर्शन के बाद समाज विशेष की संरचना उसकी संस्कृति तथा धार्मिक,

राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समाज की शिक्षा में इस के पाठ्यक्रम में उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियों का समावेश होना चाहिए। समाज की संस्कृति उसकी शिक्षा का मूल आधार होता है। हर समाज का अपना रहन-सहन तथा खान-पान होता है, रीति रिवाज होते हैं, मुल्य, मान्यता एवं आदर्श होते हैं। माना कि समाज में परिवर्तन भी होते रहते हैं। परंतु इन मूलभूत मान्यताओं एवं आदर्शों को वह आसानी से नहीं छोड़ता तथा इनका शिक्षा में प्रतिबिंबित होना स्वभाविक है। जो समाज किसी एक धर्म के अनुयायी होते हैं, उनके धर्म विशेष को शिक्षा में स्थान दिया जाता है। इस प्रकार किसी समाज की राजनीति उसके पूरे जनजीवन को प्रभावित करती है। सुरक्षित समाज की शिक्षा में भाषा, कला संगीत को पर्याप्त स्थान दिया जाता है। जबकि असुरक्षित समाज की शिक्षा में सैनिक शिक्षा अनिवार्य होती है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में सामाजिक संकल्पनाओं, परम्पराओं और रीति-रिवाजों, नैतिक मूल्यों, धर्म राजनीतिक संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

5.7.4 मनोवैज्ञानिक आधारः- शिक्षा का मूल उद्देश्य छात्र के व्यवहार में वांछित परिवर्तन करना है, किंतु व्यवहार को जानने के लिए छात्र का मनोविज्ञान जानना जरूरी है। मनोविज्ञान में बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के अभाव में हम यह निश्चित नहीं कर सकते कि किस तरह के बच्चों को भाषा का ज्ञान कितना कराया जाए। मनोवैज्ञानिकों ने खोजों के आधार पर यह भी बताया है कि बच्चे वह सब शीघ्रता से सीखते हैं, जिनमें उनकी रूचि होती है और जिनको सीखने की उनमें शारीरिक एवं मानसिक क्षमता होती है। सभी बच्चे एक समान नहीं होते। इसलिए अब बच्चों

के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों का निर्माण करते हैं। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में बालक की रुचि, योग्यता, अभिक्षमता, आवश्यकता, अनुभवों को भी स्थान दिया जाना चाहिए। क्रियाप्रधान व अनुभव आधारित पाठ्यक्रम मनोविज्ञान की ही देन है।

5.7.5 सांस्कृतिक आधारः- संस्कृति किसी समाज की संपूर्ण जीवन पद्धति से संबंधित होती है। अतः पाठ्यक्रम में उन सभी कौशलों, मूल्यों तथा विचारों का समावेश होना चाहिए, जिन्हें समाज द्वारा महत्वपूर्ण माना जाता है। अतः पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक पक्ष को स्थान देना चाहिए।

5.7.6 वैज्ञानिक आधारः- आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान के क्षेत्र में हर समय अनेक अविष्कार हो रहे हैं जिसने समाज को ही बदल कर रख दिया है। पाठ्यक्रम भी इस वैज्ञानिक क्रांति से अछूता नहीं रह सकता। इसलिए पाठ्यक्रम को उपयोगी बनाने के लिए आवश्यक है कि उसमें विज्ञान शिक्षा को सम्मिलित किया जाए। उन्होंने शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य पूर्ण जीवन के लिए तैयारी माना है। अतः पाठ्यक्रम में शारीरिक विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भाषा, गणित, भूगोल, पदार्थ विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिक शास्त्र, अर्थशास्त्र,बाल मनोविज्ञान, इतिहास, साहित्य, संगीत तथा कला जैसे विषयों को रखने पर बल दिया है ताकि छात्रों में वैज्ञानिक स्वभाव विकसित किया जा सके।

5.8 पाठ्यक्रम निर्माण के मुख्य सिद्धांत

पाठ्यक्रम ही वह केंद्र-बिंदु है जिसके चारों ओर शिक्षात्मक प्रयास संगठित किया जाता है और इसमें बिंदु की वह समस्त क्रियाएं सम्मिलित हैं, जिन्हें अध्यापकों के मार्गदर्शन में व्यवस्थित किया जाता है। पाठ्यक्रम रचना बिना सोचे-समझे की जाने

वाली क्रिया नहीं, बल्कि यह एक सुनियोजित क्रिया है और इसे इस प्रकार संपन्न किया जाना चाहिए कि यह स्कूल के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो। पाठ्यक्रम निर्माण के निम्नलिखित प्रमुख सिद्धांत हैंः-

5.8.1 उपयोगिता का सिद्धांतः- बालक जीवन उपयोगी विषयों को ही पढ़ने में रुचि लेते हैं। अतः पाठ्यक्रम में भावी जीवन के लिए उपयोगी विषयवस्तु को ही रखना चाहिए। उदाहरण के लिए भारत में लोगों के आर्थिक जीवन को ऊपर उठाना बहुत आवश्यक है। इसीलिए विज्ञान एवं टेक्नोलाजी के विषयों की वर्तमान युग में बहुत उपयोगिता है। इसे पाठ्यक्रम में उपयुक्त स्थान देना होगा। इसी प्रकार लोकतंत्रात्मक देश में प्रत्येक बच्चे को अपनी मातृभाषा तथा राष्ट्रीय भाषा का ज्ञान आवश्यक होना चाहिए। उच्च चारित्रिक विकास के लिए नैतिक शिक्षा को भी प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसी प्रकार सभी विषयों और क्रियाओं के लिए उनकी उपयोगिता की दृष्टि से ही स्थान निश्चित करना चाहिए।

5.8.2 शिशु केंद्रित का सिद्धांतः- शिशु केन्द्रिता आधुनिक शिक्षा का नारा है। सामान्य बच्चों की क्रियाओं और आवश्यकताओं के आधार पर बनाया गया पाठ्यक्रम स्कूल के दायित्वों को पूरा करने का एक प्रभावशाली साधन है। अतः वे अनुभव, जिनसे समझदारी और अंर्तदृष्टि विकसित हो और वे क्रियाएं, जो व्यक्ति की आत्माभिव्यभक्ति और उपक्रम को प्रेरित करती हो, साथ ही सामूहिक परियोजना को भी, पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम में छात्रों की रुचि, आवश्यकता, योग्यता, क्षमता, बुद्धि-स्तर, आयु का ध्यान रखना चाहिए।

5.8.3 विविधता और लचीलेपन का सिद्धांतः- पाठ्यक्रम को बालकों की रुचियों, विभिन्नताओं, प्रवृत्तियों, दृष्टिकोणों तथा आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए

यह आवश्यक है कि यह लचीला तथा विविधता से पूर्ण हो। हमें बच्चों पर अनुपयुक्त विषयों का बोझ नहीं लगना चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है, तो इससे उनके सामान्य विकास में बाधा पड़ती है। अतः पाठ्यक्रम में ज्ञान, कुशलता और मूल्यांकन के उन विस्तृत क्षेत्रों का समावेश किया जाना चाहिए जो बालक की व्यक्तिगत भिन्नता के दृष्टिकोण उनके विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएं।

5.8.4 विभिन्न स्तरों के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम होने का सिद्धांतः- मनोविज्ञान से पता चलता है कि भिन्न-भिन्न स्तर के बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास में भिन्नता होती है। पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय हमें भिन्न-भिन्न स्तर के बच्चों की इस भिन्नता को ध्यान में रखना चाहिए और पाठ्यक्रम में वे ही विषय तथा क्रियाएं रखनी चाहिए, जिन्हें बच्चे रुचि पूर्वक सक्रिय रुप से ग्रहण कर सके और जो उनकी मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

5.8.5 जीवन से संबंधित होने का सिद्धांतः- पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों और क्रियाओं को स्थान देना चाहिए, जिनका वास्तविक जीवन से संबंध है इनके द्वारा छात्रों में योग्यताओं तथा क्षमताओं का विकास किया जाए जो उन्हें भावी जीवन को सफलतापूर्वक जीने में सहायक सिद्ध हो, साथ ही वह समाज में अपना स्थान बना सकें।

5.8.6 व्यापकता का सिद्धांतः- पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखा जाए कि यह पाठ्य-पुस्तकों तक ही सीमित न रहें। यह ऐसा होना चाहिए कि छात्रों की समस्त शैक्षिक वातावरण की अभिव्यक्ति कराने की क्षमता रखता हो और साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि छात्रों की भावनाओं को ठेस न

पहुंचे। यह पाठ्यक्रम ही छात्रों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

5.8.7 अवकाश के सदुपयोग का सिद्धांतः- इस प्रकार का पाठ्यक्रम निर्धारित करना चाहिए जिससे छात्र अवकाश के समय भी ज्ञानार्जन या मनोरंजन कर सकें तथा समय का सदुपयोग कर सकें। पाठ्यक्रम में विभिन्न क्रियाओं की व्यवस्था होनी चाहिए। जिससे छात्र का समय सदुपयोग करना सीख सके।

5.8.8 वैयाक्तिक विभिन्नता का सिद्धांतः- मनोविज्ञान यह सिद्ध कर दिया है कि छात्रों में वैयाक्तिक विभिन्ता पाई जाती है। पाठ्यक्रम इस प्रकार निर्धारित करना चाहिए कि छात्र अपनी व्यक्तिगत योग्यता, क्षमता व रूचि के अनुसार ग्रहण कर सकें।

5.8.9 रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धांतः- प्रत्येक बालक में कुछ रचनात्मक शक्तियां होती हैं। पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि छात्रों को रचनात्मक कार्यों का अवसर प्रदान करें। इससे उसका व्यक्तित्व पूर्ण रूप से विकसित हो सकेगा। छात्रों को सृजनात्मक और कलात्मक रचना के कार्य करने का अवसर मिलना चाहिए।

5.8.10 विकास का सिद्धांतः- पाठ्यक्रम का निर्माण समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रख किया जाता है। समाज स्थिर नहीं होता है, इसका विकास होता रहता है। इसलिए पाठ्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहने चाहिए। इसका निर्माण इस प्रकार से किया जाए कि विकास की गुंजाइश बनी रहे।

5.9 संस्कृत पाठ्यक्रम निर्माण एवं समीक्षा

5.9.1 पाठ्यक्रम में संस्कृत का स्थान के संबंध में विभिन्न दष्टिकोणः- देववाणी संस्कृत को सभी भाषाओं की जननी माना जाता है। इसकी महात्ता भारतीयों के साथ-साथ विद्वानों ने भी स्वीकार की है। वर्तमान समय में संस्कृत के अध्ययन की भारतीय विद्यालयों में दो प्रकार की पद्धति का प्रचलन है-परम्परागत पाठशाला पद्धति तथा आधुनिक विद्यालय पद्धति (सामान्य शिक्षा)।

परंपरागत पाठशाला पद्धति- इस पद्धति में प्राथमिक स्तर के बाद प्रथमा (प्रवेशिका) स्तर होता है जिसमें संस्कृत के अतिरिक्त हिंदी, अंग्रेजी, गणित, सामाजिक विज्ञान एवं सामाजिक अध्ययन विषयों को समाविष्ट किया जाता है। प्रथमा के बाद मध्यमा (उपाध्याय) स्तर आता है, जो माध्यमिक स्तर के समकक्ष होता है उसके बाद त्रिवर्षीय शास्त्री पाठ्यक्रम है, जो स्नातक स्तर के समतुल्य है। इस पद्धति में तकनीकी पाठ्यक्रमों के अंतर्गत - साहित्यचार्य, व्याकरणाचार्य, ज्योतिषाचार्य जैसी उपाधियां दी जाती हैं।

आधुनिक विद्यालय पद्धति (सामान्य शिक्षा):- इस पद्धति में संस्कृत भाषा का शिक्षण कक्षा 6 से शुरू होता है। माध्यमिक स्तर (9 व 10) में संस्कृत को पाठ्यक्रम में कुछ प्रांतों में अनिवार्य स्थान दिया गया है, तो कुछ में वैकल्पिक तथा कुछ में दोनों का मिश्रित रूप। उच्च माध्यमिक स्तर (कक्षा 11 व 12) पर संस्कृत वैकल्पिक भाषा के रूप में पढ़ाई जा रही है। उच्च स्तर स्नातक व परास्नातक पर संस्कृत को वैकल्पिक विषय के रूप में बी0 ए0, एम0 ए0 में रखा गया है। प्रतियोगी परीक्षाओं में भी छात्र इसका चयन करते हैं। विशिष्ट दक्षता व प्रवीणता के लिए परम्परागत पाठशाला पद्धती की ही भांति है।

वर्तमान समय में पाठ्यक्रम में संस्कृत को स्थान दिए जाने के संबंध में तीन प्रकार के दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं:-

5.9.1.1 प्रथम दृष्टिकोणः- इस दृष्टिकोण के अनुसार संस्कृत एक नीरस और क्लिष्ट भाषा है जिसका अध्ययन-अध्यापन करना समय को नष्ट करना है। यह केवल ब्राह्मणों की भाषा है, अतः इसके अध्ययन की आवश्यकता केवल कर्मकांड सीखने के लिए ही होती है। आज के तकनीकी एवं वैज्ञानिक युग में संस्कृत भाषा का अध्ययन स्वीकार नहीं है।

डा0 सी0 वी0 रमण ने संस्कृत आयोग के समक्ष कहा था -''केवल संस्कृत को ही देश की राजभाषा घोषित कर देना चाहिए। यह आज भी हमारे दैनिक जीवन का सम्बल है और जीवन को गतिशील बनाने की प्रेरणा के रूप में सजीव तत्व है।''

इस पक्ष को मानने वाले लोग दुराग्रही प्रतीत होते हैं। इनकी संस्कृत भाषा के प्रति दुर्भावनापूर्ण सोच है। यह लोग संस्कृत के महत्व को नहीं जानते हैं।

5.9.1.2 द्वितीय दृष्टिकोणः- यह दृष्टिकोण उन विद्वानों का है जो संस्कृत को पाठ्यक्रम में एक वैकल्पिक विषय के रुप में स्थान दिलाना चाहते हैं इनका मानना है कि आधुनिक वैज्ञानिक युग में शिक्षा में वैज्ञानिक विषयों की ही अधिक महत्व देना चाहिए क्योंकि यह विषय ही छात्र को भविष्य में अपनी जीविका अर्जित करने में अधिक सहयोग दे सकेंगे। अतः संस्कृत भाषा का शिक्षण वैकल्पिक होना चाहिए, जो छात्र इसे अपनी रुचि से पढ़ना चाहे, वह पढ़े, जो न पढ़ना चाहे, उन्हें संस्कृत क्यों पढ़ाई जाए? इस विचारधारा को यदि अपनाया जाए तब संस्कृत का प्रचार सीमित हो जाएगा और इसके अध्ययन के संबंध में व्यापक जागरूकता का अभाव ही बना

रहेगा। इस प्रकार जो लोग संस्कृत को केवल धर्म कर्म की भाषा मानकर इसे पाठ्यक्रम में वैकल्पिक स्थान देना चाह रहे हैं, कदाचित् वे इसके महत्व को नहीं जानते। संस्कृत में ज्ञान समाहित है जिसे समझने वाला ही समझ सकता है।

5.9.1.3 तृतीय दृष्टिकोणः– तीसरा वर्ग उन विचारकों का है, जो संस्कृत की अनिवार्यता के पक्षधर हैं। संस्कृत विषय परिषद् की स्थापना का श्रेय भी इसी विचारधारा को जाता है। संस्कृत आयोग (1956–57) के द्वारा भी इस बात पर विशेष बल दिया गया की संस्कृत की शिक्षा अनिवार्य रूप से विद्यालयों में दी जानी चाहिए। इनका कथन यह है कि संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है। अतः इसका अध्ययन भारतीय आर्य भाषाओं के अध्ययन में सहायक होगा। इसके अध्ययन से छात्र अपनी भारतीय संस्कृति को समझ सकेंगे। इसके द्वारा छात्रों में राष्ट्रीय एकता की भावना भी विकसित होगी। इनकी मान्यता है कि संस्कृत कालजयी भाषा है, यह आज भी प्राचीन काल में समान प्रासंगिक है। संस्कृत भाषा ज्ञान-विज्ञान का भंडार है। अपने महत्त्व के कारण ही यह भाषा विश्व स्तर पर अपना स्थान बना चुकी है। अतः इस भाषा का पठन-पाठन अनिवार्य होना चाहिए।

5.9.2 संस्कृत आयोग (सुनीति कुमार चटर्जी आयोग 1956–57):– यह आयोग स्वतंत्र भारत में संस्कृत की स्थिति एवं विकास की संभावनाओं पर चिंतन करने के लिए गठित किया गया। इस आयोग ने कहा कि माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में संस्कृत को अनिवार्य स्थान मिलना चाहिए। इसके लिए त्रिभाषा सूत्र में परिवर्तन करना अपेक्षित हो तो परिवर्तन भी अवश्य किया जाए। संस्कृत आयोग ने चार योजनाओं का उल्लेख किया है–

5.9.2.1 प्रथम योजनाः–

5.9.2.1.1 मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा

5.9.2.1.2 अंग्रेजी

5.9.2.1.3 संस्कृत या कोई अन्य प्राचीन भाषा

5.9.2.2 द्वितीय योजनाः-

5.9.2.2.1 मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा

5.9.2.2.2 अंग्रेजी

5.9.2.2.3 संस्कृत

5.9.2.2.4 संस्कृत

5.9.2.3 तृतीय योजनाः- द्वितीय योजना की भांति हो, किंतु संस्कृत माध्यम से परीक्षा न हो तथा संस्कृत विषय के अंको का परीक्षा फल में नाजोड़ा जाए, परंतु यह योग्यता व छात्र वृत्ति का आधार अवश्य हो, किंतु आयोग ने इस योजना की अभिशंसा नहीं की, क्योंकि अंक न जुड़ने पर संस्कृत की उपेक्षा की जाएगी।

5.9.2.4 चतुर्थ योजनाः-

5.9.2.4.1 मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा/मातृ भाषा एवं संस्कृत का मिश्रित पाठ्यक्रम।

5.9.2.4.2 अंग्रेजी ।

5.9.2.4.3 हिंदी या अन्य भारतीय भाषा या हिंदी एवं संस्कृत का मिश्रित पाठ्यक्रम।

संस्कृत आयोग ने संस्कृत के पठन-पाठन के विषय में निम्नलिखित सुझाव दिएः-

प्रथम 5 वर्ष (कक्षा 5 वी तक) केवल मातृभाषा का शिक्षण हो, जिसमें संस्कृत का स्थान सुभाषित श्लोकों के रूप में हो।

कक्षा 6 में मातृभाषा तथा अंग्रेजी। संस्कृत को सुभाषित के माध्यम से पढ़ाया जाए।

कक्षा 7 से 11 तक मातृभाषा की मात्रा कम करते हुए अंग्रेजी तथा संस्कृत का विशेष अध्ययन।

अतः संस्कृत शिक्षण के विषय में प्रथम दृष्टिकोण तथा तृतीय दृष्टिकोण उपयुक्त प्रतीत नहीं होते हैं इसलिए मध्यम मार्ग अपनाना ही उचित है।

भारत सरकार द्वारा स्वीकृत त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत का महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। सरकार के द्वारा अनुमोदित त्रिभाषा सूत्र इस प्रकार हैः-

1. अंग्रेजी 2. हिंदी
3. मातृभाषा या अन्य आधुनिक भारतीय भाषा

नई शिक्षा नीति के अंतर्गत स्वीकृत त्रिभाषा सूत्र को उपयोगी माना गया है क्योंकि यह भाषा सूत्र देश की वर्तमान परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है। 1964-66 में कोठारी आयोग ने भाषा समस्या की निम्नलिखित योजना प्रस्तुत की हैः-

1. मातृभाषा 2. संघ की राज भाषा 3. आधुनिक भारतीय भाषा या यूरोपीय भाषा ।

इस योजना से सिद्ध होता है कि कोठारी आयोग ने संस्कृत भाषा को अधिमान नहीं दिया है। विद्वानों का मत है कि त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत को स्थान न देना सरकार की भारी भूल है।

स्थिति यह है कि सरकार के कुछ व्यक्ति संस्कृत से दुर्भावना रखते हैं। वे इसके महत्व से परिचित होते हुए भी इसका प्रचार-प्रसार नहीं चाहते हैं। इन लोगों के कारण ही माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य संस्कृत को हटा दिया गया था।

इसके बारे में जो प्रथम दृष्टिकोण है वह भारतीय विचारधारा के सर्वथा प्रतिकूल है। यह उन लोगों का विचार है जो संस्कृत ज्ञान से शून्य हैं तथा उन्हें संस्कृत के महत्व का किंचित् भी ज्ञान नहीं है। इसके साथ ये लोग भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठता से भी अपरिचित हैं। इन पर पाश्चात्य सभ्यता का रंग स्पष्ट झलकता है। अतः इनका चिंतन एकांकी एवं पक्षपात पूर्ण है।

तृतीय दृष्टिकोण अतिवादी तो है परंतु बड़े महत्व का है। संस्कृत एक महत्वपूर्ण भाषा है जिसके महत्व पर पीछे पर्याप्त लिखा जा चुका है। अतः इसे अनिवार्य बनाने में कोई बड़ा दोष प्रतीत नहीं होता है। यहां सबसे बड़ी समस्या है कि वर्तमान परिस्थितियों में संस्कृत को अनिवार्य बनाया जाना व्यावहारिक नहीं लगता। अतः तृतीय दृष्टिकोण अत्यधिक उपयोगी होने पर भी ग्राह्य नहीं कहा जा सकता। द्वितीय दृष्टिकोण के भी कई दोष है तथापि इसे ग्राहय कहा जा सकता है।

5.9.3 संस्कृत भाषा का विविध स्तरों पर पाठ्यक्रम में स्थानः-

हमारे देश में संस्कृत भाषा का पठन-पाठन दो प्रकार से होता रहा है- एक तो संस्कृत पाठशालाओं में, दूसरा स्कूल, कालेजों में। संस्कृत पाठशालाओं में संस्कृत की

कक्षाएं ‘प्रथमा’ से आरंभ होती हैं और आचार्य तक चलती हैं। जबकि स्कूल-कालेजों में संस्कृत का अध्ययन विभिन्न कक्षाओं से आरंभ होता है। वर्तमान में किसी भी राज्य में प्रारम्भिक विद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन नहीं होता। संस्कृत भाषा का विविध स्तरों पर पाठ्यक्रम में स्थान निम्न प्रकार से निर्धारित किया जा सकता हैः-

5.9.3.1 प्राथमिक स्तरः- कक्षा 1 से 5 तक। इस स्तर पर बालकों की शैशवावस्था होती है। यह उनके विकास की प्रारंभिक अवस्था है। इस अवस्था में उनकी इंद्रियों और मांसपेशियों का विकास होता है। 3 वर्ष तक बालक भी लगभग समस्त मानसिक शक्तियां कार्य करने लगती हैं। इस अवस्था में बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति अति प्रबल होती है। प्रारंभ में बालक मातृभाषा का ज्ञान प्राप्त करता है। अहिंदी भाषी राज्यों में बालकों को संस्कृत का सामान्य ज्ञान एवं ईश वंदना संबंधी श्लोक, सुभाषित गीतों के कुछ श्लोको को कंठस्थ कराकर संस्कृत शिक्षण की अभीष्ट पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।

5.9.3.2 उच्च्व प्राथमिक स्तर या निम्न माध्यमिक स्तर- कक्षा 6 से 8 तक। यह स्तर बालकों की बाल्यावस्था का है। इस स्तर पर बालकों का शारीरिक एवं मानसिक विकास बड़ी तीव्रता से होता है। अतः यह स्तर संस्कृत के औपचारिक शिक्षण के लिए उपयुक्त है। इसलिए इस स्तर पर कक्षा 6 के पाठ्यक्रम में संस्कृत को अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। परंतु संस्कृत आयोग को कक्षा 7 और और उसके आगे की कक्षाओं में पढ़ाने का सुझाव दिया है। इस स्तर से संस्कृत को अनिवार्य करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ अवश्य उपस्थित होंगी। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने लिखा है- ‘‘जहां तक हम अनुभव करते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में एक बालक के लिए तीन भाषाओं का अध्ययन सुलभ/संभव होना

चाहिए। इस सत्य में कोई आशंका नहीं है कि लिपि की भिन्नता होने से बालकों पर कुछ जोर पड़ेगा। परंतु हमारा विश्वास है कि बाद के स्तर की अपेक्षा प्रारंभिक स्तर पर इन भाषाओं को सीखना बालकों के लिए सरलतम है।''

शिक्षा आयोग द्वारा संशोधित त्रिभाषा सूत्र में छात्रों को तीन भाषाएं पढ़नी पड़ती हैं:-

1. मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा

2. संघ की राजभाषा

3. एक आधुनिक भारतीय भाषा

हिंदी भाषी क्षेत्रों में इस समस्या का समाधान तो स्वयंमेव में ही हो जाता है क्योंकि यहां मातृभाषा और हिंदी दोनों एक ही है। अतः हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी ये तीन भाषाएं ही इस स्तर पर छात्रों को पढ़नी पड़ेगी। अहिंदी भाषी राज्यों में अवश्य ही छात्रों पर चार भाषाओं का भार पड़ेगा क्योंकि वहां पर मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी- यह चार भाषाएं छात्रों को पढ़नी पड़ेगी।

सुझावः-यदि विचार किया जाए तो इस स्तर पर चार भाषाओं का अध्ययन भी कोई गंभीर समस्या नहीं है, इस संदर्भ में निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं:-

- यूरोपीय देशों में प्रारंभिक स्तर पर चार भाषाएं पढ़ाई जाती हैं, अतः भारत में भी चार भाषाओं का अध्ययन कोई समस्या नहीं होनी चाहिए। संस्कृत आयोग ने लिखा है- ''बहुभाषी भारत जैसे देश में चार भाषाओं का भार बिल्कुल नहीं समझना चाहिए।''

- लोगों का विचार है कि चार भाषाओं को एक साथ पढ़ने से छात्रों के मस्तिष्क पर अनावश्यक बोझ पड़ेगा परंतु ऐसा नहीं होता है। कनाडा के मस्तिष्क विशेषज्ञ डा0 बिल्डर पैनीफील्ड ने लिखा है-''जीवन की केवल प्रारंभिक अवस्था में ही बालक अनेक भाषाओं के विशिष्ट गुणों को अपने मस्तिष्क के निर्दिष्ट उपभागों में अंकित कर सकता है और यही अंकन उसके भावी विकास में मूलाधार बन जाता है।''
- भाषाओं का बोझ कम करने के लिए संस्कृत और मातृभाषा का समन्वित प्रचलित किया जा सकता है और संस्कृत के समुचित स्थान दिया जा सकता है। नरेन्द्र देव समिति 1953 में कुछ सुझाव दिए थे-
    - हिंदी के साथ संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाए और कक्षा 6 से 12 तक संस्कृत की शिक्षा दी जाए।

निम्न माध्यमिक कक्षाओं में पाठ्यक्रम में से कुछ विषयों को निकाला जा सकता है। इस प्रकार संस्कृत जैसे महत्वपूर्ण विषय को उचित स्थान दिया जा सकता है।

5.9.3.3 माध्यमिक स्तरः- कक्षा 9 से कक्षा 12 तक। इस स्तर पर संस्कृत भाषा के दो रूप प्रचलित हैं। प्रथम अनिवार्य विषय के रूप में और द्वितीय वैकल्पिक विषय के रूप में। कक्षा 9 से 12 तक का स्तर बालकों की किशोरावस्था है। इसे शारीरिक एवं मानसिक विकास के सर्वश्रेष्ठ काल माना गया है। इस स्तर पर बालकों पर बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास के कारण उनके मन में विचारों की उथल-पुथल होने लगती है क्योंकि उनमें कल्पना, विचार एवं तर्क्रशक्ति का सम्यक् विकास हो जाता है। अतः इस स्तर पर उन्हें समुचित निर्देशन, चारित्रिक एवं आदर्श युक्त शिक्षा की आवश्यकता होती है। इसके लिए संस्कृत का

शिक्षण अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती है क्योंकि संस्कृत साहित्य उन्हें वे सब कुछ प्रदान कर सकता है जो इस स्तर के किशोरों के लिए वांछनीय है। आजकल प्रायः कक्षा 10 तक इसे सभी विद्यालयों में अनिवार्य कर दिया गया है तथा उच्च माध्यमिक स्तर 11 तथा 12 में यह वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं हिंदी भाषा तथा साहित्य के सम्यक ज्ञान के लिए इस स्तर पर आचार्य नरेन्द्र देव समिति 1953 की संस्तुतियों के आधार पर संस्कृत को हिंदी के साथ अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाना चाहिए।

शिक्षा आयोग ने इस स्तर पर छात्रों को दो भाषाएं अनिवार्य रूप से पढ़ने का सुझाव दिया है और संस्कृत को वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाई जाने पर बल दिया-''शास्त्रीय भाषाओं को यह स्थान कक्षा आठ तथा आगे की कक्षाओं में हो सकता है।''

इस स्तर पर संस्कृत के उचित स्थान हेतु इस प्रकार कहा गयाः-

विद्यालयों में छात्रों को वैकल्पिक रूप से एक स्वतंत्र विषय संस्कृत चुनने की व्यवस्था होनी चाहिए।

विद्यालयों में विषय के विकल्प के वर्गों का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि संस्कृत में रुचि रखने वाले छात्र संस्कृत को आसानी से चुन सकें

विज्ञान वर्ग के छात्रों के लिए भी यह सुविधा होनी चाहिए कि वे यदि संस्कृत पढ़ना चाहें, तो वे संस्कृत को अपना एक विषय रख सकें।

5.10 विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा संस्कृत पाठ्यक्रम सुधार के लिए सुझाव

संस्कृत भाषा की महत्ता एवं आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए महात्मा गांधी जी ने कहा था ‘‘संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसमें भारतीय संस्कृति का चिर संचित ज्ञान भरा है बिना संस्कृत पढ़े कोई अपने को पूर्ण भारतीय और विद्वान नहीं बना सकता।’’ संस्कृत भाषा के संरक्षण हेतु आवश्यक है कि यह लोगों की मौखिक अभिव्यक्ति का माध्यम बने एवं इसकी लोकप्रियता बढ़े। भाषा की क्लिष्टता को दूर कर सरलता प्रदान कर उसे सम्प्रेषण योग्य बनाना आवश्यक है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा की शिक्षा को पाठ्यक्रम में उचित स्थान देना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से समय-समय पर विभिन्न आयोगों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैंः-

5.10.1 विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (डा0 राधाकृष्ण कमीशन, सन 1948-49)ः-

स्वतंत्रता उपरांत विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में सुधार हेतु डा0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। आयोग ने अपने प्रतिवेदन के 131वें पृष्ठ पर माध्यमिक विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भाषाओं के स्थान की भी चर्चा की है। आयोग ने कक्षा 9 एवं 10 के पाठ्यक्रम में शास्त्रीय भाषा के रूप में संस्कृत को स्थान दिया। कक्षा 11 एवं 12 तथा प्रथम डिग्री कोर्स के पाठ्यक्रम में भी शास्त्रीय भाषाओं को स्थान दिया गया। इस प्रकार आयोग ने संघीय भाषा के विकल्प में संस्कृत विषय को अनिवार्य करने की सिफारिश की। आयोग के पृष्ठ 131 पर कहा गया है-‘‘उपाधि पाठ्यक्रम में हमारे छात्रों को अब संस्कृत के अध्ययन में प्रोत्साहित किया जाएगा।’’ आयोग ने यह भी कहा कि संस्कृत भाषा तथा साहित्य हमारा सांस्कृतिक उत्तराधिकार है। इसमें अनुसंधान के विस्तृत क्षेत्र विद्यमान है।

5.10.2 माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन 1952-53)- माध्यमिक शिक्षा के स्तर के उन्नयन हेतु निर्मित इस आयोग में द्विभाषी सूत्र प्रस्तुत किया गया। इस सूत्र के दोनों विकल्पों में शास्त्रीय भाषा को भी स्थान दिया गया-

5.10.2.1 प्रथम विकल्पः-

निम्नलिखित में से कोई एक भाषा-

(अ) मातृभाषा

(ब) क्षेत्रीय भाषा

(स) मातृभाषा या शास्त्रीय भाषा का मिश्रित पाठ्यक्रम

5.10.2.2 द्वितीय विकल्पः-

निम्नलिखित में से कोई एक भाषाः-

(अ) हिंदी (अहिंदी भाषा क्षेत्रों के लिए)

(ब) प्रारंभिक अंग्रेजी (जिन छात्रों ने पूर्व माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी नहीं पढ़ी हो)

(स) उच्च अंग्रेजी (जिन्होंने पूर्व माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी पढ़ी हो)

(द) कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा (हिंदी तथा संख्या 1 पर ली गई भाषा को छोड़कर)

(य) कोई एक आधुनिक विदेशी भाषा (अंग्रेजी को छोड़कर)

(र) कोई एक भारतीय भाषा/शास्त्रीय भाषा

उपर्युक्त दोनों विकल्पों से सुस्पष्ट है कि मुदालियर आयोग ने मातृभाषा एवं क्षेत्रीय भाषा के मिश्रित पाठ्यक्रम में संस्कृत को स्थान दिया है। साथ ही संस्कृत आधुनिक भारतीय भाषा में सम्मिलित की है, किंतु स्पष्टतः संस्कृत पाठ्यक्रम की घोषणा नहीं की है।

5.10.2.3 संशोधन द्विभाषा सूत्रः-

(अ) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा

(ब) (क) आधुनिक भारतीय भाषा (हिंदी क्षेत्रों के लिए)

(ख) संघीय भाषा हिंदी (अहिंदी क्षेत्रों के लिए)

संख्या 2 पर आधुनिक भारतीय भाषा में हिंदी प्रदेशों में संस्कृत को महत्व दिया जा सकता है। आयोग ने सांस्कृतिक तथा धार्मिक दोनों ही पक्षों से संस्कृत की महत्ता तथा हृदय ग्राह्यता को स्वीकार किया है। संस्कृत के वर्तमान ह्रास पर खेद प्रकट करते हुए आयोग ने इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है कि यदि यही स्थिति बनी रही तो भय है कि कहीं अन्ततोगत्वा इस भाषा के पठन-पाठन का कालोप न हो जाए।

5.10.3 केंद्रीय सलाहकार बोर्ड (1956):- इस बोर्ड के द्वारा दो रूपों में त्रिभाषा सूत्र प्रस्तुत किया गया, वह इस प्रकार हैः-

प्रथम प्रारूपः-

(1.) (क) मातृभाषा या

(ख) क्षेत्रीय भाषा या

(ग) मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा का मिश्रित पाठ्यक्रम

(घ) मातृभाषा और सांस्कृतिक भाषा का मिश्रित पाठ्यक्रम।

(2.) हिंदी अथवा अंग्रेजी

(3.) कोई आधुनिक भारतीय भाषा या यूरोपीय भाषा (जो संख्या एक और दो बिंदु में से न ली गई हो)

5.10.4 राजभाषा आयोग (जून 1955 से जून 1956):- इस आयोग ने अपनी प्रश्नावली में संस्कृत संबंधी अनेक प्रश्नों का समावेश किया है। राजभाषा आयोग ने भी संस्कृत के मौलिक महत्व को स्वीकार किया है।

द्वितीय प्रारूपः-

1. प्रथम प्रारूप के समान (सभी विकल्प)

2. अंग्रेजी या कोई एक यूरोपीय भाषा।

3. हिंदी (अहिंदी क्षेत्रों के लिए) या कोई भी एक भारतीय भाषा (हिंदी क्षेत्रों के लिए)

उपर्युक्त दोनों प्रारूपों में संसेंतिक भाषा वर्ग में वे भाषाएं आती हैं जिनमें भारतीय संस्कृति निहित है और इस दृष्टि से संस्कृत का स्थान सर्वोपरि है। अतः शिक्षा परामर्श दात्री समिति ने संस्कृत को महत्व दिया है।

5.10.5 संस्कृत आयोग (सुनीति कुमार चटर्जी आयोग 1956-57):- 1 अक्टूबर 1956 को भारत के सुविख्यात शिक्षाविद स्व0 डा0 सुनीति कुमार चटर्जी की

अध्यक्षता में संस्कृत के पठन-पाठन तथा संस्कृत संबंधी प्रशासन एवं जनसंपक्र के निष्णातस यशस्वी विद्वानों से विभूषित एक संस्कृत आयोग का गठन किया था।

इस आयोग के कुल 9 सदस्य थे :-

1. डा0 सुनीति कुमार चटर्जी- अध्यक्ष विधान परिषद,पश्चिम बंगाल, कोलकाता।
2. डा0 जे0 एच0 दवे, संचालक- भारतीय विद्वान विद्याभवन, बंबई।
3. डा0 एस0 के0 डे0- प्रो0 भारतीय भाषा तथा साहित्य, स्नातकोत्तर अनुसंधान वि0 संस्कृत कालेज, कलकात्ता।
4. डॉ0 टी0 आर0 वी0 मूर्ति, सयाजीराव गायकवाड़, प्रो0 भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति काशी हिंदू विश्वविद्यालय, मद्रास।
5. डा0 राघवन, प्रो0 संस्कृत, मद्रास वि0 मद्रास।
6. आस्थान विद्वान पंडितराज द्वी0 एस0 रामचन्द्र शास्त्री, शंकर मठ बंगलौर।
7. प्रो0 विश्वबंधु शास्त्री, संचालक विश्वेश्वरानन्द वैदिक अनुसंधान संस्थान, होशियारपुर।
8. प्रो0 आर0 दाण्डेकर प्राध्यापक सं0 पूना विश्व वि0 पुना (सदस्य सचिव)
9. श्री के0 सुंदरराम शर्मा, सहायक शिक्षा अधिकारी, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली ने सहायक सचिव का कार्य किया।

इस आयोग के विद्वानों ने संपूर्ण देश में प्रचलित पारंपरिक तथा आधुनिक दोनों प्रकार की संस्कृत शिक्षा का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने साक्ष्यों एवं अपनी

प्रश्नावली के उत्तरों को अपने परिपक्व ज्ञान, अनुभव और विचारों से समन्वित करते हुए अक्टूबर 1957 में अपना संपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

आयोग ने अपने इस प्रतिवेदन में सम्मानित सदस्यों ने संस्कृत शिक्षा के ऐतिहासिक विवेचन के साथ उसकी वर्तमान स्थिति का रोचक सुचित्रण किया तथा वर्तमान स्थिति के परिपेक्ष्य में संस्कृत शिक्षा एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार तथा उसकी लोकप्रियता स्थापित करने की अनिवार्यता पर भी अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। प्रतिवेदन में पारम्परिक तथा आधुनिक दोनों ही संस्कृत पठन-पाठन की सारणियों को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेकानेक मार्गो का केबल निर्देश ही नहीं किया गया है अपितु संस्कृत शिक्षा के राष्ट्रीय संगठन इत्यादि पर भी सुझाव दिए गए हैं।

संस्कृत वाङ्मय के माध्यम से राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत का व्यक्तित्व कैसे उज्ज्वल किया जा सकता है तथा स्वतंत्र भारत की आकांक्षाओं की पूर्ति किन-किन उपायों से की जा सकती है। इस संबंध में भी आयोग का प्रतिवेदन मौलिक, ठोस तथा व्यावहारिक दिशाओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

5.10.5.1 आयोग द्वारा मुख्य विचारणीय बिंदुः-

- विश्वविद्यालयों तथा संस्कृत पाठशालाओं में संस्कृत संबंधी उपलब्ध सुविधाओं का सर्वेक्षण करना तथा संस्कृत के अध्ययन एवं शोध को समुचित करने का सुझाव देना।
- परम्परागत संस्कृत पठन-पाठन की छानबीन करना तथा इस बात पर अपने विचार प्रकट करना कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में उसके किन-किन अंगों में सम्मिलित करना उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

उपर्युक्त दोनों विचार बिंदुओं के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु आयोग ने विभिन्न समितियों में चर्चा की। जिससे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत में दो प्रकार के परस्पर विरोधी विचारधाराएं प्रचलित हैं। एक और तो संस्कृत के विद्वानों तथा संस्कृत न जानने वाले दोनों ही वर्ग के लोगों में संस्कृत के प्रति अदम्य उत्साह विद्यमान है। किंतु दूसरी ओर संस्कृत की पारंपरिक एवं आधुनिक दोनों ही अध्ययन धाराओं का विस्तार तथा स्तर तक निराशाजनक रूप धारण करता जा रहा है। एक और संस्कृत के विद्वान हमारा जन वर्ग तथा हमारा अधिकारी समुदाय संस्कृत के महत्व का अनुभव कर रहा है तो दूसरी और किसी न किसी प्रकार की प्रशासकीय कठिनाई या व्यावहारिक सहायता का विघ्न संस्कृत के प्रेमियों को निराश कर रहा है।

5.10.5.2 आयोग द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन का सारः- आयोग ने अपने प्रतिवेदन के प्रथम अध्याय में संस्कृत आयोग के उद्देश्य एवं कार्य क्षेत्र निर्धारित किए हैं। द्वितीय अध्याय में संस्कृत शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। इसमें उन परिस्थितियों का चित्रण किया गया है, जिसमें की पारम्परिक तथा आधुनिक संस्कृत शिक्षा के दो समानांतर स्वरूप प्रकट हुए। तृतीय अध्याय में पाठशालाओं, माध्यमिक विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा शोध संस्थानों की वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन किया गया है। इस अध्याय में संस्कृत के संवर्धन तथा समुन्नयन में प्रचलित विभिन्न क्रियाकलापों पर भी प्रकाश डाला गया है।

यहां संस्कृत तथा स्वतंत्र भारत की आकांक्षाओं से संबंधित निम्न बिंदुओं का विवेचन है:-

- राष्ट्रीय चेतना की जागृति तथा संस्कृति

- भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के अध्ययन के क्षेत्र में संस्कृत का महत्व।
- मानवीय शास्त्रों के अध्ययन में संस्कृत का बौद्धिक मूल्य।
- मानसिक तथा चारित्रिक निर्माण के मार्ग में संस्कृत में के विशाल भंडार की महत्ता।
- राष्ट्रीय एकता बनाए रखने के लिए संस्कृत का अंशदान
- पूर्व तथा पश्चिम के राष्ट्रों के सूत्र में बांधने के लिए संस्कृत की संघ शक्ति।
- मृत अन्य प्राचीन भाषाओं के विपरीत एक जीवित शक्ति के रूप में संस्कृत की विशेषताएं।
- भारत की समस्त भाषाओं के परीपोषण तथा समुन्नयन की दिशा में संस्कृत की भूमिका।
- भारत की सामान्य शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत का उपयुक्त स्थान।
- संस्कृत के लिए एक विशेष व्यवहार तथा व्यवस्था की आवश्यकता।
- संस्कृत के लिए विशेष प्रोत्साहन की व्यवस्था।

पांचवें अध्याय में संस्कृत शिक्षा के संदर्भ में निम्नलिखित दो बातों की समीक्षा की गई है:-

- सामान्य शिक्षा के एक अंग के रूप में माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में संस्कृत का स्थान कैसे संरक्षित किया जा सकता है।

- संस्कृत शिक्षा की पारंपरिक तथा आधुनिक दोनों ही पद्धतियों के गुण-दोषों की समीक्षा की गई है

छठे अध्याय में आयोग ने संस्कृत की यथोचित विधियों को विकसित करके उनके प्रयोग की आवश्यकता पर बल दिया है साथ ही साथ पाठ्यक्रम तथा परीक्षा प्रणाली में सुधार के विषय में भी सुझाव दिए हैं।

सातवें अध्याय में संस्कृत में शोध कार्य पर बल देने तथा प्रोत्साहन करने के लिए छात्रवृत्ति यों की चर्चा की गई है।

आठवें अध्याय में पांडुलिपियों की खोज, उनका संग्रह, उनका संरक्षण, उन्हें सूचीबद्ध करने, उनका अध्ययन तथा उनके प्रकाशन के संदर्भ में चर्चा की गई है।

नौवें अध्याय में केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना पर विचार किया गया है।

दसवें अध्याय में संस्कृत के प्रचार प्रसार से संबंधित बातों पर बल दिया जाता है।

ग्यारवें अध्याय में संस्कृत शिक्षा तथा शोध कार्य के प्रकाशन एवं संघठन का वर्णन है तथा इस बात पर भी बल दिया गया है कि केंद्रीय संस्कृत परिषद को पूर्ण सुविधा दी जाए ताकि वह संस्कृत के उन्नयन हेतु कार्य कर सकें।

बारहवें अध्याय में संपूर्ण प्रतिवेदन के निष्कर्षों, सुझावों तथा संस्तुतियों को स्थान दिया गया है।

5.10.5.3 संस्कृत आयोग की संस्तुतियों तथा सुझावः-

यहां आयोग को प्रतिवेदन में से यह सार रूप में प्रस्तुत हैः-

5.10.5.3.1 माध्यमिक विद्यालयों में संस्कृत शिक्षाः-

- माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में भाषाओं का जो अध्ययन निर्धारित किया गया है, उसमें कुछ ऐसी व्यवस्था को स्थान देना चाहिए कि संस्कृत को एक ऐसा सुरक्षित स्थान प्राप्त हो जाए जिसके बल पर सभी बालक संस्कृत ले सके।
- केंद्रीय शासन द्वारा उद्घोषित त्रिभाषासूत्र में संशोधित किया जाए।
- संस्कृत शिक्षा हेतु पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जाए।

5.10.5.3.2 भाषा सूत्रः-

माध्यमिक विद्यालयों के समस्त संस्कृत छात्रों को तीन भाषाओं का अध्ययन करना चाहिए-

- मातृ भाषा या क्षेत्र भाषा
- अंग्रेजी
- संस्कृत या विशेष स्थिति में उसके समकक्ष कोई अन्य प्राचीन भाषा जैसे अरबी, फारसी, प्राचीन तमिल, लैटिन या ग्रीक आदि

5.10.5.3.3 संस्कृत शिक्षा तथा पठन-पाठन की परंपरिक प्रणालीः-

- पाठशालीय पाठ्यक्रम में आधुनिक विषयों को जोड़कर उसके स्तर को बनाए रखा जाए।
- उच्च माध्यमिक और उसके स्तर की पाठशालाओं को छात्रों का समान योग्य माना जाए।

- समय-समय पर पाठशालाओं का निरीक्षण भी करवाया जाए, जिसमें विशेषतः यह देखा जाए कि आधुनिक विषयों के पठन-पाठन के लिए समुचित व्यवस्था की गई है अथवा नहीं।
- विद्वान संस्कृत अध्यापकों को विश्वविद्यालयों की विभिन्न परिषदों का सदस्य भी बनाया जाए।
- महाविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्नातक तथा स्नातकोत्तर उपाधियों के लिए सामान्य, विशेष व वैकल्पिक विषयों में संस्कृत के अध्ययन का प्रावधान रखा जाना चाहिए।
- संस्कृत अध्यापकों के प्रशिक्षण हेतु शिक्षाशास्त्री पाठ्यक्रम का आयोजन किया जाए।

5.10.5.3.4 आधुनिक व परम्परागत प्रणालियों का एकीकरणः-

आधुनिक व परंपरागत प्रणालियों का एकीकरण छात्रों को ऐतिहासिक, समालोचनात्मक व तुलनात्मक पद्धति से परिचित करवाया जाये।

5.10.5.3.5 संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाएं एवं अन्य सम्बद्ध विषयोंः-

संस्कृत भाषा तथा अन्य भारतीय भाषाओं को पाठ्यक्रम में समन्वित रूप से स्थान दिया जाए। देश की पैतृक संपत्ति का कुछ ज्ञान कराने की दृष्टि से विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के समस्त छात्रों के लिए संस्कृत साहित्य, भारतीय चिन्तन, दर्शन तथा धर्म, कला-कौशल एवं वास्तु विद्या से सबंधित एक क्रमिक पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए।

5.10.5.3.6 संस्कृत शिक्षणः-

संस्कृत भारतवर्ष की अधिकांश बोलियों की विचार परम्पराओं तथा उनकी शब्दावलियों में अन्तः प्रविष्ट है। इसीलिए संस्कृत शिक्षण कला को एक विशेष विषय मानते हुए स्नातक अध्यापकों संस्कृत शिक्षण विधियों में प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण महाविद्यालयों में विशेष पाठ्यक्रमों का आयोजन एवं संघटन करना चाहिए।

5.10.5.3.7 संस्कृत शोध कार्यः-

1 संस्कृत पाठशालाओं से निकले हुए छात्रों को भी विश्वविद्यालयों में शोध संबंधी वही सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिए जो अन्य महाविद्यालयों के छात्रों को दी जाती है।

2 जिन उच्च स्तरीय संस्कृत महाविद्यालयों में प्रतिष्ठित संस्कृत के विद्वान् विद्यमान हैं तथा पुस्तकालय एवं पांडुलिपियों के संग्रह भी हैं, उन्हें विश्वविद्यालय के द्वारा तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा भी शोध कार्य के केंद्र के रूप में मान्यता प्राप्त होनी चाहिए।

3 विभिन्न विश्वविद्यालयों में जो शोध कार्य हुए हैं उस शोध कार्य के प्रकाशन के लिए तथा प्रकाशनों के भलीभांति प्रचार करने के लिए भारत एवं विदेशों के शोध केंद्रों तक उन्हें सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिए।

4 संस्कृत तथा उससे संबंधित विषयों पर लेख प्रकाशित करने वाली पत्र-पत्रिकाओं के स्तर उन्नयन पर ध्यान दिया जाए।

5 उच्च स्तरीय शोध कार्य को समुन्नत करने के लिए साहित्य संस्थान द्वारा अन्य परितोषिकों के समान संस्कृत एवं भारतीय ज्ञान संबंधी कार्य के लिए भी परितोषिकों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

6 देश के गैर सरकारी एवं भारतीय ज्ञान संस्थाओं को एक सूत्र में समन्वित करने की कोई योजना बनाई जाए।

5.10.5.3.8 पाण्डुलिपियांः–

- देश के विभिन्न भागों में पड़े हुए पाण्डुलिपियों के विशाल संग्रह की समस्या को यथोचित रूप से नियंत्रित करने के लिए शासन को चाहिए कि वह एक केंद्रीय पाण्डुलिपि सर्वेक्षण विभाग की स्थापना करें।
- यह विभाग संस्कृत तथा उससे सम्बद्ध ग्रंथों की खोज, उनका सर्वेक्षण, एकत्रीकरण विवरणात्मक सूचीकरण तथा प्रकाशन का कार्य करेगा तथा इस कार्य को संपन्न करने के लिए उनकी केंद्रीय एवं क्षेत्रीय शाखाओं में ऐसे सुयोग्य कर्मचारी नियुक्त किए जाएं जिन्हें पाण्डुलिपि सम्पादन के कार्य का अनुभव प्राप्त हो तथा जो स्थानीय लिपियों तथा परिस्थितियों से भलीभांति परिचित हो।

5.10.5.3.9 प्रकाशन तथा संघठनः–

1 संस्कृत के अध्ययन एवं अन्य उद्देश्यों के लिए जो धन दिया जाए, उसे संस्कृत के संरक्षण तथा संवर्धन पर व्यय किया जाए।

2 केंद्रीय संस्कृत परिषद् का गठन किया जाना चाहिए।

3 यह परिषद देश के व्यक्तिगत संघठनों द्वारा व्यवस्थापित संस्कृत के शोध संस्थानों तथा पाण्डुलिपि पुस्तकालयों को समन्वित करें तथा उनके विभिन्न क्रियाकलापों के लिए उन्हें अनुदान भी दें।

अंत में संस्कृत आयोग का कहना है कि केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों द्वारा उनके प्रतिवेदन पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि प्रतिवेदन में दी गई प्रत्येक संस्तुति संस्कृत के किसी न किसी पहलू को समुन्नत करने की दृष्टि से प्रस्तुत की गई है।

5.11 सारांशः-

विद्यालय शिक्षा में पाठ्यक्रम एवं उसमें किसी भविष्य को दिए गए स्थान का शिक्षा प्रणाली में उल्लेखनीय योगदान होता है। अतः शिक्षण में शामिल व्यक्तियों को इस तथ्य से अवगत होना चाहिए कि पाठ्यक्रम में किसी विषय को क्या स्थान दिया गया है और क्या दिया जाना चाहिए? प्रस्तुत पाठ में पाठ्यक्रम के अर्थ व परिभाषाएं, लक्ष्य, आवश्यकता एवं महत्व पर चर्चा की गई है। पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा के स्थान की चर्चा की गई है पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा का स्थान वैकल्पिक होना चाहिए या अनिवार्य इस पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ में प्रचलित दोनों मुख्य विचारधाराओं के समर्थकों द्वारा दिए गए तर्कों का विवेचन किया गया है। इसके साथ ही साथ इस विवेचन को समर्थन प्रदान करने के लिए संस्कृत आयोग की सिफारिशों की चर्चा की गई है। त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत को दिए गए स्थान का भी वर्णन किया गया है। विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा संस्कृत पाठ्यक्रम सुधार के लिए दिए गए सुझाव का भी वर्णन किया गया है।

5.12 कठिन शब्दावली :-

पाण्डुलिपि = हस्तलिखित, अभिक्षमता = योग्यता/क्षमता, पार्श्व = अगल-बगल की जगह

5.13 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :-

1. (i) सामान्य कोर पाठ्यक्रम, (ii) राष्ट्रीय एकात्मकता तथा एकता को बढ़ावा।
2. (i) शिशु केन्द्रित का सिद्धान्त, (ii) व्यापकता का सिद्धान्त

5.14 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ :-

1. कुमार, डॉ. संजीव, ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, S. Samar Publications, Dharamshala, Distt. Kangra, H.P. PIN- 176215

2. मित्तल, डॉ सन्तोष, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।

3. मिश्र, डॉ सन्त कुमार, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।

4. वर्मा, डॉ. पूर्णसिंह, संस्कृत-शिक्षण, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी, हरियाणा।

5. शर्मा, डॉ. संजीव, पाठ्यक्रम में भाषा का स्वरूप, S. Samar Publications, Dharamshala, Distt. Kangra, H.P. PIN- 176215

6. सिंह, राम किशोर, पाठ्यक्रम में भाषा, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेण्ट इण्टर कॉलेज, बेगमब्रिज रोड, मेरठ-250001

5.15 अभ्यास प्रश्नः-

1 पाठ्यक्रम का क्या अर्थ है? पाठ्यवस्तु तथा पाठ्यक्रम में अंतर स्पष्ट करते हुए बताएं कि पाठ्यक्रम की प्राचीन तथा आधुनिक धारणाओं में क्या अंतर है।

2 पाठ्यक्रम को परिभाषित करते हुए इसके लक्षणों का वर्णन कीजिए।

3 पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं महत्व का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

4 पाठ्यक्रम निर्माण के अनेक आधारों की विवेचना कीजिए।

5 पाठ्यक्रम निर्माण के मुख्य सिद्धांतों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

6 संस्कृत पाठ्यक्रम निर्माण एवं समीक्षा में विभिन्न दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।

7 विभिन्न शिक्षा आयोग एवं पाठ्यक्रम में संस्कृत के स्थान का वर्णन कीजिए।

इकाई–2

पाठ–6.

संस्कृत साहित्य की विधा : गद्य एवं पद्य के शिक्षण का महत्व एवं विधियाँ

सरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 संस्कृत गद्य-शिक्षण का महत्व एवं उद्देश्य

6.4 गद्य-शिक्षण की विधियां

6.5 गद्य-शिक्षण की पाठ योजना

6.6 स्वयं आकलन प्रश्न

6.7 संस्कृत पद्य-शिक्षण का महत्व एवं उद्देश्य

6.8 पद्य शिक्षण की विधियाँ

6.9 पद्य-शिक्षण में सुधार के सुझाव

6.10 सारांश

6.11 कठिन शब्दावली

6.12 स्वंय आकलन प्रश्नों के उत्तर

6.13 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ

6.14 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना :-

संस्कृत साहित्य विश्व के प्राचीनतम साहित्यों में सर्वाधिक समृद्ध है। आर्यजाति के साहित्य में गद्य का प्रथम हमारी संस्कृत भाषा में ही हुआ है। संस्कृत भाषा के समृद्ध साहित्य में चार वेदों से यात्रा आरम्भ होते हुए अनेक रत्न प्राप्त हुए है जैसे-षट्दर्शनो पर आधारित उपनिषद्- भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, अठारह पुराण आदि । साहित्य क्षेत्र में रघुवंशम्, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् जैसे महाकाव्य पद्य साहित्य के अनमोल रत्न है तो कादम्बरी की समकक्षता करने वाला गद्य साहित्य में दूसरा ग्रन्थ नहीं है।

6.2 उद्देश्य – इस पाठ के अन्त मे :-

1. संस्कृत गद्य - शिक्षण का महत्व एवं उद्देश्यों से परिचित होंगे।

2. गद्य - शिक्षण की विधियों की चर्चा करने सक्षम होंगे ।

3. गद्य - शिक्षण की पाठ योजना से परिचित होगे।

4. संस्कृत पद्य - शिक्षण का महत्व एवं उद्देश्य बताने में सक्षम होंगे।

5. पद्य-शिक्षण की विधियों से परिचित होंगे।

6. पद्य - शिक्षण में सुधार के सुझावों से परिचित होंगे ।

6.3 संस्कृत गद्य-शिक्षण का महत्व एवं उद्देश्य :-

संस्कृत शिक्षण की विविध विधाओं में गद्य शिक्षण भी प्रमुख है। गद्य में कवि को अपनी शैली के विकास में व्यक्तिगत गुणों का भी आश्रय लेना पड़ता है इसलिए गद्य

को कवियों की कसौटी कहा जाता है-“ गद्यं कवीनां निकषः वदन्ति।” गद्य शिक्षण द्वारा कथाओं उपन्यासो, निबन्धों, संस्मरणों, आत्मकथाओं को शिक्षक सरल भाषा शैली द्वारा संप्रेषित करने में सक्षम होते हैं। संस्कृत भाषण में कई गद्य भाषा के उत्कृष्टतम उदाहरण हैं। जैसे- कादम्बरी। इसलिए ‘कादम्बरी रसास्वादनं विना ? आहारोडपिन रोचते’ यह सूक्ति संस्कृत जगत् में प्रसिद्ध है। संस्कृत भाषण में गद्यशिक्षण का ज्ञान अनिवार्य है।

6.3.1 गद्य शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ :-

‘गद्य’ शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की ‘गद्’ धातु से हुई है जिसका अर्थ है- ‘स्पष्ट कहना’। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार ‘वृत्तबन्धोज्झितं गद्यम्’ अर्थात् ‘छन्दबन्धहीन’ शब्दार्य योजना गद्य है। गद्य की परिभाषा देते हुए दण्डी ने ‘अपाद’ शब्द का उल्लेख किया है अर्थात् जिस रचना में छन्दशास्त्र के गण, मात्राओं आदि का बन्धन न हो वह गद्य है। संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव भी वैदिक काल में हुआ है। कृष्ण यजुर्वेद ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में गद्य मिलते हैं। निरुक्त तथा महाभारत में भी गद्य की रचना मिलती है। महार्षि पतंजलि का विश्व विख्यात व्याकरण ग्रन्थ महाभाष्य भी गद्य मे ही लिखा गया है। संस्कृत भाषा का गद्य साहित्य निम्न वर्गों मे बांटा गया है।

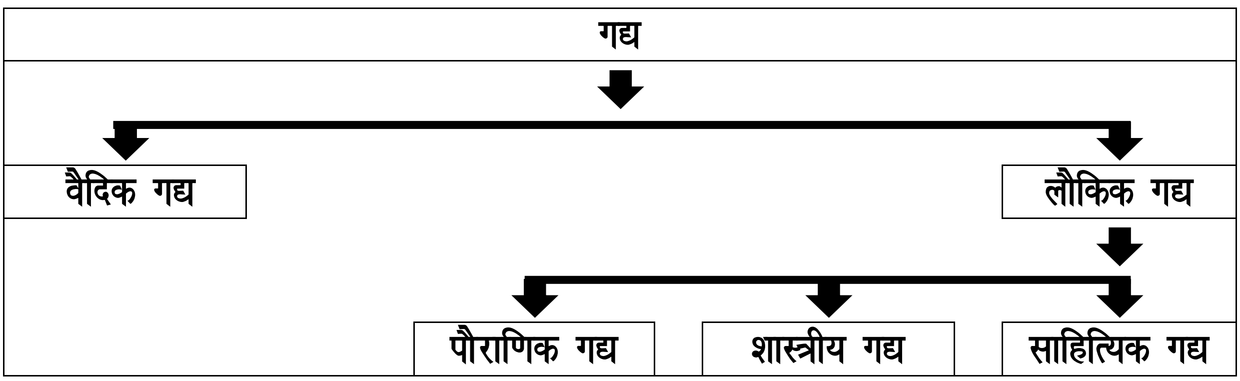

संस्कृत गद्य काव्य के तीन उन्नायक माने जाते हैं। दण्डी, सुबन्धु तथा बाणभट्ट। इस काल में गद्य का चरम विकास हुआ है। दशकुमारचरित वासवदना, कादम्बरी जैसी गद्य रचनायें गद्य साहित्य की अमूल्य निधियां है।

6.3.2 संस्कृत गद्य की विशेषताएँ :- प्रत्येक विधा की अपनी कुछ विशेषताएं होती है। गद्य शिक्षण की भी विशेषताएं है-

6.3.2.1 समास बहुल शैली :- संस्कृत गद्य की विशेषताएं उसकी सामासिकता है। समास को यदि संस्कृत गद्य का प्राण कहा जाय तो अतिश्योक्ति न होगी जो विचार दूसरी भाषाओं में बहुत बड़े लम्बे-2 वाक्यों में व्यक्त किये जाते हैं वे संस्कृत गद्य में एक ही पद में अभिव्यक्त किये जा सकते हो। समाज बहुलता ही ओज का प्रधान लक्षण है। संस्कृत के महान् गद्यकारों की कृतियों में विशेष रूप से इस शैली का प्रयोग देखा जा सकता है।

6.3.2.2. भाषायी तत्त्वों का ज्ञान :- संस्कृत गद्य के माध्यम से छात्रों को शब्दों की संरचना उपसर्ग, प्रत्यय, सन्धि, समास आदि का ज्ञान सरलता से हो जाता है क्योंकि गद्य की रचना गद्यकार के लिए एक जटिल कार्य है, इसलिए इसे साहित्यकार की कसौटी माना गया है।

6.3.2.3 गद्य एवं पद्य का सम्मिश्रण :- संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसमे पद्य तथा गद्य का प्रयोग एक साथ होता है। उपनिषदों में तो यह प्रवृत्ति विशेष रूप से विद्यमान है। हितोपदेश, पंचतन्त्र, कथासरित्सागर, वेतालपंचविंशतिका बृहत्कथामंजरी, भोज प्रबन्ध आदि गद्य- पद्य मिश्रित शैली की रचनाये हैं।

6.3.2.4 विचार विनिमय एवं सिद्धान्त वर्णन का उचित माध्यम :- संस्कृत गद्य के माध्यम से कोमल और दुरुह दोनों की तरह के भावों को सुविधापूर्वक अभिव्यक्त किया जा सकता है।

6.3.3 गद्य-शिक्षण के उद्देश्य :- संस्कृत गद्य शिक्षण के दो प्रकार के उद्देश्य है – प्रथम - ज्ञान, बोध व क्रिया के आधार पर बिन्दुओं को नाम प्रदान करके। द्वितीय - समस्त बिन्दुओं को क्रमशः प्रकरणानुसार व स्तरानुसार लिखकर ।

6.3.3.1 उद्देश्य लेखन :-

6.3.3.1.1 ज्ञानात्मक उद्देश्य :- ज्ञानात्मक उद्देश्यों को मुख्यता दो भागों में बाँटा जाता है:-

(अ) भाषा तत्वों का ज्ञान - इसमें उच्चारण, वर्तनी व अर्थ की दृष्टि से प्रकरण में जो कठिन शब्द होते हैं उनको छाँटकर लिखा जाता है तथा सन्धि, समास तथा प्रकृतिप्रत्यय युक्त शब्दों का भी स्पष्टीकरण किया जाता है।

(ब) विषयवस्तु का ज्ञान कराना - 'प्रकरण' सांस्कृतिक, पौराणिक, व्यावहारिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक जिस पक्ष से सम्बद्ध होता है उसका ज्ञान प्रदान करना ही पाठ का उद्देश्य होता हो

6.3.3.1.2 अर्थग्रहणात्मक :- इस उद्देश्य में अर्थग्रहण करने के प्रमुख दो कौशल होते हैं,

(अ) सुनकर अर्थग्रहण करना (श्रवण कौशल)

(ब) पढ़कर अर्थग्रहण करना (पठन कौशल)

गद्य शिक्षण करते समय अध्यापक द्वारा आदर्शवाचन, छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन व मौनवाचन करवाकर इस उद्देश्य की प्राप्ति की जाती है।

6.3.3.1.3 अभिव्यक्त्यात्मक उद्देश्य :- इस उद्देश्य में अभिव्यक्ति के दो कौशल होते हैरू-

(अ) लिखकर अभिव्यक्त करना (लेखन कौशल)

(ब) बोलकर अभिव्यक्त करना (वाचन कौशल)

गद्य शिक्षण करते समय अध्यापक द्वारा प्रश्नोत्तर के माध्यम से मौखिक व लिखित अभिव्यक्ति का मूल्यांकन किया जाता है।

6.3.3.1.4 अभिरूच्यात्मक उद्देश्य :- प्रकरण को विविध विधियों, प्रविधियों व दृश्यकाव्य सामग्री के प्रयोग द्वारा रूचिकर बनाया गया है तथा गद्य साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न की जाती है।

6.3.3.1.5 अभिवृत्यात्मक उद्देश्य :- 'प्रकरण' में आए सद्विचार की ओर छात्रों की सकारात्मक अभिवृत्ति उत्पन्न कर इस उद्देश्य की प्राप्ति की जाती है।

6.3.3.1.6 कौशलात्मक उद्देश्य :- 'प्रकरण' में सीखी गई विषय वस्तु तथा योग्यता का व्यावहारिक प्रयोग करने का कौशल उत्पन्न कर इस उद्देश्य की प्राप्ति की जाती है।

6.3.3.2 स्तरानुसार गद्य शिक्षण के उद्देश्य :-

6.3.3.2.1 प्रारम्भिक स्तर (कक्षा 6,7,8)

1. शब्दों, पदों तथा पदबंधों को प्रवाह के साथ पढ़ना व उनका शुद्धोच्चारण करवाना !

2. विराम चिह्नों का ध्यान रखते हुए पढने की योग्यता उत्पन्न करना।

3. छात्रों के शब्द भण्डार में वृद्धि करना।

4. नूतन शब्दों के अर्थ समझकर उनका उचित प्रयोग करने की योग्यता उत्पन्न करना।

5. छात्रों में संस्कृत साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना।

6. छोटे-2 वाक्यों में भावाभिव्यक्ति का अभ्यास कराना।

7. संस्कृत प्रति अनुराग उत्पन्न करना ।

8. संस्कृत को सामान्य रूप से परिचित कराना।

9. संस्कृत पाठ का रसास्वादन कराना।

6.3.3.2.2 माध्यमिक स्तर (कक्षा, 9, 10, 11, 12)

1. शब्दों का शुद्धोच्चारण करने की योग्यता उत्पन्न करनी।

2. शब्द और सूक्ति भण्डार में वृद्धि करना ।

3. लेखकों की विविध गद्य शैलियों से परिचित करवाना।

4. छात्रों में कल्पना शक्ति का विकास करना।

5. छात्रों में सर्जनात्मकता का विकास करना ।

6. छात्रों को भाषा का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना।

7. तुलनात्मक व आलोचनात्मक दृष्टि का विकास करना।

8. संस्कृत साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना।

9. छात्रों में नैतिकता का विकास करना।

10. संस्कृत गद्य में भावाभिव्यक्ति की क्षमता विकसित करना।

6.3.3.2.3 उच्चस्तर (स्नातक स्तर)–

1. संस्कृत में भावाभिव्याक्ती की क्षमता को सुदृढ करना।

2. संस्कृत गद्य की विभिन्न शैलियों का ज्ञान परिपुष्ट करना।

3. कल्पना, तक्र, निरीक्षण व समीक्षा शक्ति का उच्च स्तरीय विकास करना।

4.सर्जनात्मक शाक्ति का विकास करना।

5. संस्कृत साहित्य की दूसरे साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन की क्षमता का विकास करना ।

6. नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों से परिचित करवाना।

7. पाठ्यक्रम के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य पढ़ने की प्ररेणा देना।

6.3.4. गद्य पाठों के प्रकार :–

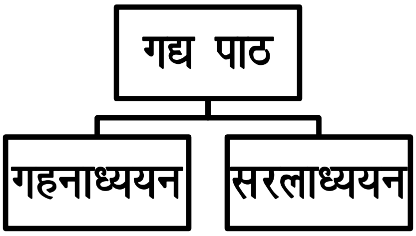

6.3.4.7 उद्देश्यों की दृष्टि से

प्रस्तुत सामग्री का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करना।	प्रस्तुत सामग्री का शीघ्रता से अध्ययन करके तद्‌गत भावों को ग्रहण करने की योग्यता उत्पन्न करना ।
अभिव्यक्ति में कुशलता उत्पन्न करना।	संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के सरल अंशो को समझने की योग्यता उत्पन्न करना।
शब्द भण्डार में वृद्धि करना।	साहित्य से अधिकाधिक परिचय प्राप्त करवाना।
पाठ्‌य पुस्तकों पर बल देना।	विषयवस्तु को समझने की योग्यता उत्पन्न करना ।
अर्थ, व्याख्या, विश्लेषण, समानार्थक शब्द, सूक्तियाँ, पाठ्यसामग्री का भाव ग्रहण करने के पश्चात् सारांश अथवा भावार्थ लिखने की क्षमता उत्पन्न करना।	शीघ्र पढ़ने का अभ्यास करवाना, जिससे उनमें शीघ्र किन्तु शुद्ध पठन की आदत उत्पन्न हो सके।
लोकोक्तियों का ज्ञान करवाना।	स्वतन्त्र अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना।

6.3.4.2 शिक्षण विधि की दृष्टि से

इसमें आदर्श वाचन, अनुकरण वाचन पर अधिक बल दिया जाता है।	इसमें मौनवाचन पर अधिक बल दिया जाता है।
इसमें काठिन्य निवारण विविध विधियों से विस्तृत व्याख्या सहित वर्णन किया जाता है।	इसमें छात्रों द्वारा अनुभूत कठिन शब्दों के अर्थमात्र बता दिए जाते हैं।
इसमें विचार विश्लेषणात्मक प्रश्नों को महत्व दिया जाता है, जो कि मुख्य व सूक्ष्म भावों को स्पष्ट करने में सहायक	जबकि इसके बोध प्रश्नों पर अधिक बल दिया जाता है जोकि सूचनात्मक होते हैं।

होते हैं।	

6.3.4.3 पाठ योजना की दृष्टि से :-

इसकी पाठयोजना विस्तृत होती है।	इसकी पाठयोजना संक्षिप्त होती है।

6.3.5 संस्कृत गद्य शिक्षण के सोपान :- गद्य शिक्षण के निम्नलिखित सोपान है-

(क) प्रस्तावना :- संस्कृत गद्य पाठ का आरम्भ करने से पूर्व यह सोपान होता है। इसमें छात्रों के पूर्व पठित पाठ का नवीन पाठ से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अतः अध्यापक छात्रों से पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित प्रश्न पूछता है। इस प्रकार प्रस्तुत पाठ की भूमिका तैयार की जाती है।

(ख) उद्देश्य कथना :- प्रस्तावना के पश्चात् अध्यापक पाठ का उद्देश्य कथन करे । वह इस प्रकार की आज हम अमुक्त गद्यांश को पढ़ेगें जिससे अमुक शिक्षा प्राप्त होती है।

(ग) प्रस्तुतीकरण :- इसमें शिक्षक गद्य पाठ प्रारम्भ करें जैसे :-

1. आदर्श वाचन - गद्यांश का उचित हावभाव के साथ तथा विराम चिह्नों को ध्यान में रखते हुए अध्यापक द्वारा सुन्दर तथा अनुकरणीय वाचन कक्षा में प्रस्तुत किया जाता है। अध्यापक संयुक्त पदों का सन्धिविच्छेद करता चले।

2. अनुवाचन - प्रत्येक छात्र बारी-बारी से गद्य भाग का वाचन करेगा। अध्यापक उनके संस्कृत गद्य उच्चारण को ध्यान पूर्वक सुनेगा । छात्रों के द्वारा संस्कृत गद्य का सामूहिक वाचन भी कराया जा जकता है। इसी प्रकार संधि युक्त शब्दों तथा कठिन शब्दों के उच्चारण का विशेष अभ्यास करवाया जाए ।

3. संशोधन – यदि छात्र गद्य पाठ का अशुद्ध वाचन करता है तो अध्यापक उसका शुद्ध उच्चारण बताए तथा इस ओर कक्षा का ध्यान ही आकर्षित करें। अध्यापक ऐसे अवसर पर छात्रों के द्वारा ही संशोधन करवाये तो अच्छा रहेगा।

4. व्याख्या – संस्कृत गद्य वाचन के पश्चात् गद्य पदों और वाक्य खण्डों की व्याख्या होनी चाहिए। इसके लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। सन्धियुक्त संस्कृत शब्दों का सधिविच्छेद तथा समासमुक्त शब्दों का विग्रह किए बिना छात्र इसका अर्थ नहीं जान सकते।

5. मौन वाचन – अध्यापक शब्दों, वाक्यांशों एवं वाक्यों की व्याख्या के पश्चात् छात्रों की मौन वाचन के लिए कहे। मौन पाठ से छात्रों के विषयवस्तु सम्बन्धी ज्ञान को ओर अधिक पुष्ट करने का अवसर प्राप्त होता है।

6. आवृत्ति – तत्पश्चात् अध्यापक छात्रों से उस गद्यांश सम्बन्धी प्रश्न पूछे ताकि छात्रों को पाठ अच्छी प्रकार समझ में आ जाए। जिन बन्दुओं को छात्र न समझ पाएं हों उन्हें फिर से समझा देना चाहिए।

(घ) पुनरावृति :- प्रस्तुत किए गए सम्पूर्ण गद्य पाठ की पुनरावृत्ति होनी चाहिए । पुनरावृति से सम्बन्धित प्रश्न सम्पूर्ण गद्य पाठ पर आधारित है। ।

ये प्रश्न दो प्रकार के होगे :-

1. एक तो वस्तु बोध का परीक्षण करने के निमित्त ।

2. दूसरे भाषा ज्ञान की परीक्षा से सम्बन्धित।

इसके अतिरिक्त यदि समझने में किसी प्रकार की कमी हो तो उसे भी तत्काल दूर कर देना चाहिए। ऐसा करने से पढ़े हुए पाठ की पुनरावृत्ति करने का उद्देश्य की पूरा हो जाएगा।

(ड.) गृहकार्य :- यह गद्य - शिक्षण का अन्तिम सोपान है। इससे छात्रों के ज्ञान को स्थायी करने हेतु उन्हें कक्षा में तथा घर पर करने के लिए कार्य दिया जा सकता है। यह कार्य ऐसा हो जिसे करने के लिए छात्रों के अपनी बुद्धि का प्रयोग करना पड़े। इसमें अध्यापक निम्नलिखित प्रश्न प्रस्तुत करेगा :-

1. नवीन शब्दों के अर्थों को कण्ठस्थ करना।

2. नवीन शब्दों का वाक्यों में प्रयोग करना।

3. महत्वपूर्ण वाक्यों का मातृभाषा में अनुवाद करना ।

4. मूल पाठ में आए हुए धातु शब्दों तथा संज्ञा शब्दों को समझना ।

5. संधि तथा समास करना।

6. उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति करना।

7. सप्रसंग व्याख्या करना।

8. सार लेखन करना चाहिए।

6.4. गद्य-शिक्षण की विधियाँ :- गद्य शिक्षण का एक महत्वपूर्ण सोपान व्याख्या है। इसके लिए प्रायः निम्नलिखित विधियों अपनाई जाती है

(क) उद्‌बोधन :- इस विधि में शब्दों का अर्थ छात्रों से ही निकलवाया जाता है। अध्यापक वस्तुओं, चित्रों तथा कार्यों की ओर संकेत करता है और संकेत के आधार पर शब्दार्थ बताता है । यथा 'हस्त' शब्द का अर्थ बताने के लिए अध्यापक अपने हाथ की आरे संकेत करेगा। 'मृगपति' शब्द की व्याख्या करने के लिए अध्यापक चित्र की सहायता लेगा। 'गम्' शब्द की व्याख्या करने के लिए अध्यापक चलकर दिखाएगा ।

गुण :-

1. प्रारम्भिक अवस्था में यह एक लाभदायक विधि है।

2. यह नवीन शब्दों को सीखने की सरल एवं शीघ्र विधि है।

3. इस विधि के द्वारा छात्र बौद्धिक प्रयत्न करता है। अतः उसकी स्मरण शक्ति स्थूल एवं चिरस्थायी बन जाती है।

दोषः-

1. यह विधि सर्वव्यापी नहीं हो सकती है।

2. जो शब्द किसी स्थूल वस्तु या कार्य को नहीं कहते हैं, उनकी व्याख्या इस विधि के द्वारा सम्भव नहीं है।

3. उच्च कक्षाओं में शब्दावली अत्यधिक सूक्ष्म एवं जटिल होती है अतः यह विधि उच्च स्तर पर उपयुक्त नहीं है।

(ख) अनुवादः- अध्यापक स्वयं ही किसी शब्द को मातृभाषा मे अनुदित करके उसका अर्थ बता देता है अथवा श्यामपट्ट पर लिख देता जैसे

पिकः - कोयल

मयूरः - मोर

आगच्छति = आता है।

गुण :-

1. यह अध्यापक की सर्वसाधारण विधि है।

2. यह विधि छात्रों के लिए भी सुगम एवं सरल है।

3. इस विधि में छात्र शब्दार्थ के लिए पुस्तिका रखते हैं। जिससे उनका शब्द -भण्डार विस्तृत होता रहता है।

4. छात्र नवीन शब्दावली के द्वारा किसी भी अनुच्छेद का अनुवाद कर सकते हैं।

दोष :-

मातृभाषा में अनुवाद करने के लिए यह अधूरी प्रक्रिया है। कुछ शब्दों का अर्थ का जान लेने मात्र से काम नहीं चलता है। ऐसे शब्दों की व्याख्या की जानी चाहिए।

(ग) कोष-विधि :- इसके अन्तर्गत अमरकोष आदि कोष ग्रन्थों का प्रसंग देखकर शब्द का पर्याय प्रस्तुत किया जाता है। कभी-2 समस्त श्लोक को उद्धृत किया जाता है तथा कभी-2 उद्धरण के बिना अर्थ बताया जाता है जैसे-

सव्य-वामम् । वाम शरीरं सत्यं स्यादपसव्यं तु दक्षिणम इत्यमरः। के

गुण :-

1. यह एक प्राचीन परिपाटी है।

2. यह शब्द - भण्डार की वृद्धि के लिए एक लाभदायक विधि है।

3. इस विधि से छात्र सभी पर्यायों को एक साथ याद कर लेता है जिनकी सहायता से कठिन शब्दों को भी समझ लेता है।

4. परम्परागत शैली में अमरकोष को प्रारम्भिक स्तर पर कण्ठस्थ कराया जाता है।

5. सरल पदार्थ रूपों के द्वारा शब्दों को समझने में कोष विधि लाभदायक है।

दोषः-

1. प्रत्येक प्रकार के शब्दों की व्याख्या कोष ग्रन्थों से सम्भव नहीं है। जैसे उपसर्गयुक्त तथा विभिन्न प्रत्ययों से निष्पन्न क्लिष्ट रूपों के ज्ञान में यह विधि सहायक नहीं है।

2. ऐतिहासिक या पौराणिक शब्दों के सम्बन्ध में भी यह विधि उपयुक्त नहीं है।

(घ) रचनाविधि :- शब्दों का वाक्यों में प्रयोग करके उनकी व्याख्या की जाती है। विशिष्ट वाक्यों कें द्वारा शब्द की बोधगम्यता बनाई जा सकती है। जैसेः-

अलं कोलाहलेन (शोर मत करो)

मा भूत विलम्बः (देर न होने पाये)

कुतः समायातः श्रीमन्तः ? (श्रीमान् कहाँ से पधारे हैं?)

गुणः-

1. संस्कृत की रचना को समझने के लिए यह विधि लाभदायक है।

2. वाक्य विन्यास तथा कारक प्रकरण के बिना रचनात्मक शब्दों को तथा वाक्य-खण्डों को पूर्णतः नहीं समझा जा सकता।

दोषः-

1. यह विधि भी सर्वथा उपयुक्त नहीं कही जा सकती।

2. रचनात्मक शब्दों, वाक्य खण्डों तथा मुहावरों में ही यह लाभदायक हो सकती है।

(ड.) तुलना विधि - शब्दों के पर्यायवाची तथा विपरीतार्थक शब्दों के साथ तुलना करके भी शब्दों की व्याख्या की जा सकती है। जैसे-

सुख-दुख

शीतोष्ण

अरि-मित्र

-यहाँ विपरीतार्थक द्वन्द्व दिखाया गया है।

आरि-शत्रु रिपु

अक्र - सूर्य, भास्कर

चंद्र - विधु, शशी

- यहाँ पर्यामशब्दों के द्वारा अर्थ को स्पष्ट किया गया है।

अनल, अनिल

अंस, अंश

कूल, कुल

यहाँ सूक्ष्म अन्तर के द्वारा अर्थभेद को प्रदर्शित किया गया है।

प्रतिकार, प्रतीकार

परिवार, परीवार

प्रतिवाद, प्रतीवाद

-यहाँ स्वरूप में अन्तर होने पर भी अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। पारस्परिक सम्बन्ध को बताने के लिए यह विधि अत्यधिक लाभदायक है। ऐसी विधि के प्रयोग योग्य शब्दों की संख्या भी सीमित होती है।

(च) व्युत्पत्ति विधिः- कुछ ऐसे कठिन शब्द होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति जाने बिना उनका अर्थ नहीं जाना जा सकता। प्रत्येक शब्द का मूल एक धातु होती है, जिसके साथ प्रत्यय जोड़कर प्रातिपदिक निष्पन्न किया जाता है प्रातिपदिक से भी प्रत्यय जोड़कर अन्य शब्द बनाये जाते हैं। जैसे-

आगमन - आ + गम + ल्युट्

यह विधि व्याकरण के द्वारा अभिव्यक्ति के वास्तविक स्वरूप को समझाने में सहायक सिद्ध होती है। व्युत्पत्ति ज्ञान के लिए निम्नलिखित बाते आवश्यक हैं।

1. समस्तपद का विग्रह करना।

2. संधि विच्छेद करना।

3. तद्धित या कृदन्त शब्द की व्युत्पत्ति ।

4. सुप् विभक्ति का परिचय ।

5. तिङ् प्रत्ययों का परिचय।

6. प्रत्ययान्त धातुओं की व्युत्पत्ति ।

(छ) प्रसंग विधि :- इसमें शब्दों का अर्थ ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा पौराणिक प्रसंगों द्वारा स्पष्ट किया जाता है। अतः ऐसे शब्दों की व्याख्या के लिए प्रसंग विधि उपयोगी है। जैसे- ''त्रिशुंक स्थिति'' की व्याख्या राजा त्रिशंकु की कथा के ज्ञान के बिना असम्भव है। इसी प्रकार ''भागीरथ प्रयास'' की व्याख्या राजा भागीरथ के प्रसंग के बिना असम्भव है। इसी प्रकार बडवानल, जनक, सुमरु पर्वत, कुंती, विदूषक आदि शब्दों की व्याख्या प्रसंगवश जानी जा सकती है।

(ज) टीका विधीः- प्राचीनकाल में साहित्यिक ग्रन्थों की टीकाएँ लिखने की परम्परा रही है। इनमें कई प्रौढ़ टीकाएँ मानी जाती है। टीका अनेक रूपों में प्राप्त होती है- वार्तिक, भाष्य, कारिका, टीका।

साहित्यिक ग्रन्थों की टीकाओं में पद्यों एवं अनुच्छेदों की साहित्यिक व्याख्या के साथ व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियां भी प्राप्त होती है। इसमें प्रायः उपर्युक्त सभी विधियों का समावेश हो जाता है। अतः इस विधि को समन्वय विधि भी कहते हैं। छात्रों को इसका अभ्यास करना चाहिए । पद्य की व्याख्या को लिए दण्डान्वय तथा खण्डान्वय दोनों पद्धतियों का उपयोग करना चाहिए।

गुण :-

1. यह विधि अत्यधिक उपयोगी है। इसमें भाषायी, सास्कृतिक धार्मिक, दर्शन सम्बन्धी सभी प्रकार के प्रसंग प्राप्त होते हैं।

2. यह विधि भाव को अत्यधिक स्पष्ट करती है तथा विषय सामग्री का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

3. यह विधि उच्च स्तर पर उपयोगी है।

6.4.1 गद्य-शिक्षण सम्बन्धी सुझाव :- गद्य - शिक्षण को अधिक रुचिकर तथा उपयोगी बनाने के लिए निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान दिया जाना चाहिए:-

1. पूर्व पठित गद्य का सम्यक ज्ञान होने पर ही अगला गद्य पाठ पढ़ाया जाए। किसी की प्रकार की शीघ्रता से बचना चाहिए।

2. गद्य-शिक्षण इस प्रकार किया जाये कि शिक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

3. गद्य-शिक्षण में प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर मातृभाष का सहारा लिया जा सकता है।

4. सम्पूर्ण गद्य - शिक्षण को यथा सम्भव एक ही कालांश में सम्पूर्ण किया जाये ताकि उसका तारतम्य बना रहे।

5. लम्बे गद्यांश को दो या तीन कालांश में पढ़ाया जा सकता है।

6. गद्य - शिक्षण से पूर्व अध्यापक उसकी तैयारी अवश्य करे।

7. गद्य के माध्यम से छात्रों को नवीन शब्दावली तथा व्याकरण से सम्बद्ध कराया जाए।

8. गद्य - शिक्षण के सन्दर्भ में अध्यापक छात्रों को लिखित कार्य अवश्य दें।

9. अध्यापक पाठ का उद्देश्य कथन अवश्य करें।

10.अध्यापक को प्रत्येक गद्यांश का आदर्श वाचन करना चाहिए ।

11.गद्य शिक्षण के सम्बन्ध में संशोधन अवश्य किया जाना चाहिए।

6.5. गद्य - शिक्षण की पाठ-योजना :- किसी भी कार्य को भली-भाँति सम्पादित करने एवं सफलता प्राप्ति के लिए कार्य की पूर्व-योजना बनाना आवश्यक होता है। देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनाई जाती है। शिक्षा भी मनुष्य के विकास का आधार है। अतः इसके लिए योजना बनाना अति-आवश्यक प्रतीत होता है। इन0 एल0 बासिंग के अनुसार, ''शिक्षण क्रियाओं तथा उद्देश्यों के आलेख को पाठ योजना कहते है। शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षक जिन क्रियाओं का नियोजन करता है उनके आलेख को पाठ योजना की संज्ञा दी जाती है। इले लिखित तथी अलिखित दोनों ही रूपों में तैयार किया जाता हो।

शिक्षक जब अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षण से पूर्व की योजना बनाता है कि कक्षा में जो पढ़ाना है, वह उसके बारे में निश्चित रूप से कक्षा में जाने में पूर्व योजना बना ले ताकि वह उसे भली प्रकार पढ़ा सके। ऐसा करने से अध्यापक का कार्य प्रभावी हो जाती है। इसे अध्यापक के शिक्षण कार्य की रूपरेखा माना जाता है।

कक्षा शिक्षण से पूर्व शिक्षक अपने पाठ की रूपरेखा तैयार करता है कि उसे कक्षा में पाठ को किस विधि से पढ़ाना है, कौन-कौन सी सहायक सामग्रियों का प्रयोग करना है, पूर्व ज्ञान परीक्षण में कौन- कौन से प्रश्न पूछने हैं तथा किस-किस समय

श्यामपट्ट का प्रयोग करना है। इस प्रकार शिक्षक पूरे पाठ की एक क्रमबद्ध योजना बना लेता है।

शिक्षण व्यवसाय में सफलता एवं कुशलता प्राप्त करने के लिए शिक्षक को चाहिए कि वह शिक्षण से पहले पाठ-योजना बनाएं इससे उसका आत्मविश्वास बढ़ता है और वह अपने शिक्षण कार्य में सफलता अर्जित करता है। इस योजना में उस पाठ से सम्बन्धित सूचनाएँ होती है। अध्यापक आज क्या पढ़ायेगा तथा वह पढ़ाने के लिए किस विधि का प्रयोग करेगा। पाठ-योजना का दूसरा नाम पाठ संकेत भी है। इस योजना में एक कार्य को करने के पश्चात् दूसरा कार्य करने के लिए संकेत होते हैं। ये संकेत भिन्न सोपानों के अन्तर्गत होते हैं। पाठ-योजना अध्यापन का एक आवश्यक अंग है। इसमें नियोजित कार्य सुगम, सरल तथा साध्य हो जाता है। इससे परिश्रम एवं समय का दुरुपयोग नहीं होता हैं। कोई भी कार्य बिना योजना असफल हो जाता है । अतः पाठ योजना के अभाव में शिक्षण कार्य भी आकर्षक एवं रोचक नहीं हो सकता।

6.5.1 पाठ-योजना की आवश्यकता एवं महत्त्व :-

(1) पाठ्यवस्तु एवं शिक्षण लक्ष्यों के स्पष्ट निर्धारण में पाठयोजना सहायक है।

(2) कक्षा-शिक्षण की क्रियाओं एवं सहायक सामग्री की पूर्ण जानकारी हा`जाती है।

(3) शिक्षक तथा छात्रों के कार्यों का निर्धारण हो जाता है।

(4) छात्राध्यापकों के परीक्षण के लिए पाठ योजना कक्षा की क्रियाओं के लिए रूपरेखा प्रदान करता है।

(5) छात्रों की व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर कक्षा को क्रियाओं को निर्धारण में सहायता मिलती है।

(6) शिक्षक को कक्षा-शिक्षण में आत्म विश्वास प्राप्त होता है।

(7) शिक्षण में समय व श्रम की बचत होती है।

(8) कक्षा में अनुशासन रखने में सहायता मिलती है।

(9) अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन किया जा सकता है।

6.5.2. अच्छी पाठ योजना की विशेषताएँ :- एक अच्छी पाठ योजना की निम्नलिखित विशेषताएँ होती है।

(1) पाठ योजना लिखित रूप में होनी चाहिए, इससे आगे के पाठों की योजना बनाने में सरलता होती है।

(2) पाठ योजना का निर्माण शिक्षण सिद्धान्तों के अनुरूप होना चाहिए।

(3) पाठ -योजना में शिक्षण लक्ष्यों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए

(4) पाठयोजना क्रमबद्ध, सुव्यवस्थित, बोधगम्य एवं व्यापक होनी चाहिए।

(5) पाठ योजना का स्वरूप व्यावहारिक होना चाहिए।

(6) पाठ योजना में यह स्पष्ट होना चाहिए कि किन तथ्यों को किन क्रियाओं या विधियों द्वारा स्पष्ट किया जायेगा।

(7) पाठयोजना समय, धन, श्रम की पुष्टि में मितव्ययी होनी चाहिए।

(8) पाठ-योजना में शिक्षक व छात्र दोनों के मूल्यांकन का स्थान होना चाहिए।

(9) अर्जित ज्ञान के अभ्यास के लिए सहकार्य का उल्लेख होना चाहिए।

(10) पाठ योजना में शिक्षक व छात्रों की क्रियाओं का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

6.5.3 पाठ योजना के आवश्यक तत्त्व :-

(1) शिक्षक को विषयवस्तु की पूर्ण ज्ञान स्पष्ट रूप में होना चाहिए तथा अन्य विषयों की उसे सामान्य जानकारी होनी चाहिए।

(2) शिक्षक में शिक्षण उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने की क्षमता होनी चाहिए।

(3) शिक्षक में छात्रों के पूर्व-ज्ञान का पता करने एवं विविध शिक्षण कौशलों की क्षमता होनी चाहिए।

(4) शिक्षक को शिक्षण सिद्धान्तों, सूत्रों, विधियों, प्रविधियों, युक्तियों, साधनों तथा मूल्यांकन विधियों का ज्ञान होना चाहिए।

(5) शिक्षक में अर्जित ज्ञान के मूल्यांकन हेतु परीक्षण निर्माण, आकंडो के संग्रह, विश्लेषण व निष्कर्ष स्थापना की क्षमता होनी चाहिए ।

6) शिक्षक को पाठ योजना में व्यावहारिक स्वरूप का बोध होना चाहिए।

7) शिक्षक को छात्रों की प्रकृति, कौशल रुचि एवं अभिवृत्ति का ज्ञान होना चाहिए।

(8) पाठ योजना के समय का ज्ञान शिक्षक को अवश्य होना चाहिए।

(9) शिक्षक में पाठ योजना को तत्क्षण परिवर्तित करने की क्षमता होनी चाहिए।

(10) शिक्षक को सहायक सामग्री-विशेष रूप से तकनीकी क्षेत्रों के संचालन एवं कार्य-प्रणाली का ज्ञान होना चाहिए।

(11) शिक्षक में कक्षा प्रबन्धन, सही प्रकार से गृह- कार्य देने व उसके संशोधन तथा छात्रों को प्रोत्साहित करने की दक्षता होनी चाहिए।

6.5.4 पाठ-योजना के प्रकार :- पाठ-योजना के मुख्यतः दो प्रकार है।

6.5.4.1 इकाई पाठ-योजना :-

पाठ्यपुस्तक में एक ही प्रसंग के कुछ पाठ होते हैं। उन सबको एक ही इकाई बनाकर इकाई पाठ-योजना बनाई जाती है। समानविधा समान प्रकरण या समान उद्देश्य या विषय-वस्तु के आधार पर उनके सम्मिलित रूप को एक इकाई मान लिया जाता है। इस इकाई की शिक्षण की पूर्व प्रक्रिया को इकाई पाठ योजना कहते हैं। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण पाठ्यक्रम मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक इकाइयों में विभाजन कर लिया जाता है। शिक्षण कार्य का विभाजन होने से शिक्षण कार्य व्यवस्थित एवं नियोजित हो जाता है। अन्यथा कार्य नियमित नहीं हो पाता। इस प्रकार विभाजन करने के बाद पाठों के लिए समय-सारिणी तैयार कर ली जाती है।

6.5.4.1.1 इकाई पाठ-योजना के आधार :-

(क) विषय वस्तु की समान विधाओं के पाठों की एक इकाई बनाई जाती है।

(ख) देशभक्ति, राष्ट्रीयता के आधार पर दो-तीन गद्य-पद्य पाठों की एक इकाई बनाई जाती है।

(ग) एक पाठ की इकाई बनाकर उसके रचना पाठ, व्याकरण ज्ञान का पाठ आदि अनेक पाठों का चिन्तन किया जा सकता है।

(घ) सामान्य उद्देश्य वाले दो-तीन पाठों की एक इकाई बनाई जा सकती है।

6.5.4.1.2. इकाई पाठ-योजना की आवश्यकता एवं उपयोगिता :-

(क) विषय-वस्तु को शिक्षण की दृष्टि से क्रमबद्ध करने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है।

(ख) प्रकरण एवं पाठ का संश्लिष्ट रूप छात्रों के सामने रखने के शिक्षण प्रभावपूर्ण होता है।

(ग) इकाई पाठ योजना से प्रत्येक पाठ के उद्देश्यों का स्पष्ट निर्धारण होता है।

(घ) इकाई योजना से अपेक्षित योग्यताओं एवं व्यवहारगत परिवर्तन का निर्धारण होता है।

(ङ) इससे शिक्षण क्रम तथा युक्तियों का निर्धारण सम्भव है।

(च) इस योजना में आवश्यकतानुसार सहायक सामग्री का निर्णय कर लिया जाता हैं।

6.5.4.2 दैनिक पाठ-योजनाः -

एक सुनिश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षण की पूर्ण तैयारी के साथ उपयुक्त व्यूह रचनाओं एवं युक्तियों से सुसज्जित होकर कक्षा में एक कालांश में शिक्षण कार्य के लिए तैयार की गई योजना दैनिक पाठ - योजना कहलाती है। इस योजना का सम्बन्ध दैनिक शिक्षण कार्य से होता है। इसे दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है जैसे-

(क) पूर्ण विवरण युक्त :- इस प्रकार की दैनिक पाठ योजना में एक कालांश में किए जाने वाले शिक्षण कार्य का पूरा विवरण होता है। यह छात्र अध्यापकों के लिए होती हैं। जिन्हें पूर्व प्रशिक्षण लेना होता है। अतः पाठ योजना में विस्तार की आवश्यकता होती है।

(ख) संक्षिप्त :- इस प्रकार की दैनिक पाठ-योजना संक्षिप्त होती है। कई बार अध्यापक के पास इतना समय नहीं होता है कि वह पाठ-योजना विस्तार से बना सके। इसके अतिरिक्त शिक्षण का पर्याप्त अनुभव हो जाने के पश्चात् विस्तृत पाठ योजना की कोई आवश्यकता नहीं रहती । संक्षिप्त पाठ-योजन के अन्तर्गत संक्षिप्त संकेत दिए जाते हैं। इन संकेतों के आधार पर अध्यापक कक्षा में शिक्षण कार्य करता है।

6.5.4.2.1 दैनिक पाठ-योजना की आवश्यकता :-

सफल एवं प्रभावपूर्ण शिक्षण के लिए दैनिक पाठ-योजना नितान्त आवश्यक हैं। जो शिक्षक अपने शिक्षण कार्य को सफल एवं प्रभावी बनाना चाहता है। उसे यह पाठ योजना अवश्य बना लेनी चाहिए। इससे अध्यापक शिक्षण के लिए मानसिक रूप ने तैयार हो जाता है तथा शिक्षण के समय आने वाली समस्याओं, काठनाइयों के निवारण हेतु पहले ही विचार कर लेता है। तत्पश्चात् वह शिक्षण हेतु सहायक सामग्री को तैयार कर लेता है।

6.5.4.2.2. दैनिक पाठयोजना का महत्वः-

1. इससे सफल प्रभावी शिक्षण हेतु पूर्व विचार एवं चिन्तन का अवसर मिलता है। इसके द्वारा स्थायी ज्ञान की प्राप्ति होती है।

2. इसके द्वारा बालकों को पूर्व ज्ञान के आधार पर नवीन विषय वस्तु का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, इसी कारण शिक्षण रोचक व आकर्षक हो जाता है।

3. इसके शिक्षण को उद्देश्य निष्ठ बनाया जा सकता है।

4. इसके कारण शिक्षक आत्मविश्वास के साथ-दृढ़ता से क्रमबद्ध शिक्षण करता है।

5. प्रदत ज्ञान का मूल्यांकन किया जा सकता है।

6. विषय वस्तु के भिन्न पक्षों को सुसंगठित, व्यवस्थित कर शिक्षण के छात्र क्रियाओं के साथ समन्वित करने में सहायता मिलती है।

7. इसके द्वारा कक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों का निर्धारण हो जाता है।

6.5.4.2.3 दैनिक पाठ-योजना की विशेषताएः-

1. दैनिक पाठ-योजना में शिक्षण के उद्देश्यों, प्रस्तावना और सहायक सामग्री का स्पष्ट उल्लेख होता है।

2 पाठ-योजना में विषय प्रस्तुतीकरण के सोपान क्रमबद्ध रूप से लिखे जाते हैं। इसी तरह शिक्षक क्रिया, छात्र क्रिया का स्पष्ट उल्लेख भी किया जाता है।

3. दैनिक पाठ-योजना में प्रयुक्त की जाने वाली सहायक सामग्री का पूर्णरूप से प्रयोग विधि सहित विवरण होता है।

4. पाठ-योजना में विश्लेषणात्मक प्रश्न, पुनरावृत्ति प्रश्न, मूल्यांकन विधि तथा गृह-कार्य का भी उल्लेख होता है।

5. पाठ-योजना शिक्षा का मार्ग दर्शन करती है तथा इससे शिक्षण व्यवस्थित तथा समय पर सम्पन्न होता है।

6.5.5 पाठ योजना के सोपान : -

संस्कृत में मुख्यतः तीन प्रकार के पाठ होते हैं। जैसे-

(क) ज्ञान प्राप्ति विषयकः- इस प्रकार के पाठों में, गद्य, रचना तथा व्याकरण सम्बन्धी पाठ आते है।

(ख) कौशल विषयक :- इसके अन्तर्गत मौखिक रचना उच्चारण, वर्तनी तथा श्रुतलेख विषयक पाठों का समावेश होता है।

(ग) सौन्दर्यानुभूति विषयक :- इस प्रकार के पाठों में पद्य तथा नाटक आदि आते हैं जिसमें काव्य के सौन्दर्य की अनुभूति होती है।

सभी प्रकार के पाठों के लिए पाठ-योजना एक समान ही होती है। उद्देश्य की दृष्टि से पाठयोजना में किसी पक्ष विशेष पर अधिक बल दिया जा सकता है। पाठ-योजना के निम्नलिखित सोपान होते है -

1. परिचय :- इसके अन्तर्गत अध्यापक नाम, उसकक्षा का नाम जिसे पढ़ाना है, इत्यादि का उल्लेख होता है। इसके अतिरिक्त इसी के अन्तर्गत दिनांक, कक्षा तथा वर्ग की जानकारी निहित होती है।

2. विषय :- इसे के अन्तर्गत जो विषय पढ़ाया जाता है उसका उल्लेख किया किया जाता है। विषय के अन्तर्गत व्याकरण शिक्षण, काव्य - शिक्षण तथा रचना शिक्षण का उल्लेख भी होता है।

3. उपविषय :- इसमे मुख्य विषय के किसी विशेष अंग का उल्लेख किया जातो है। उदाहरण के लिए पद्य-शिक्षण में सूक्ति या श्लोक उपविषय हो जाते हैं। इसी प्रकार व्याकरण शिक्षण में लकार, कारक, वाचन, प्रत्येय, उपसर्ग आदि उपविषय हो सकते हैं।

4. कालांश :- इसके अन्तर्गत कालांश तथा उसकी अवधि का उल्लेख होता है।

5. सहायक सामग्री :- पाठ-योजना में मुख्य रूप से चाक, श्यामपट तथा झाड़न का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त चित्रों, चार्टो तथा मॉडल का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग होता है।

6. उद्देश्य :- पाठ-योजना में पास के सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्यों का उल्लेख आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त उद्देश्य कथन भी किया जाता है। उद्देश्य कथन में अध्यापक कक्षा में घोषणा करता है कि आज छात्रों को आमुक विषय के अन्तर्गत आयुक्त उपविषय पढाया जाता है। जिसका अमुक उद्देश्य है।

7. पूर्व ज्ञान :- उद्देश्य कथन के बाद छात्रों के पूर्व ज्ञान की परीक्षा की जानी चाहिए। विषय का पूर्व ज्ञान होना आवश्यक है। पूर्व ज्ञान के बिना छात्र विषय को समझ नहीं सकते । इसलिए अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों के पूर्व ज्ञान की परीक्षा करे ।

8. भूमिका :- इसे प्रस्तावना भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत पाठ को पढ़ाने के लिए आधार तैयार किया जाता है। उससे पूर्व अध्यापक छात्रों के पूर्व पाठ से सम्बन्धित पूर्व ज्ञान का परीक्षण करता है। इसके साथ ही अध्यापक द्वारा पूर्व ज्ञान एवं प्रस्तुत पाठ से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। उसके बाद अध्यापक पाठ पढ़ाने

की विभिन्न विधियों तथा सोपानों का वर्णन करता है। जिस विधि का प्रयोग किया जाता है उसका उल्लेख अध्यापक प्रस्तावना के अन्तर्गत करता है तथा उसको सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है ।

9. प्रस्तुतीकरण :- इसे ही विषय उपस्थापन कहा जाता है। इस सोपान के अन्तर्गत अध्यापक पाठ को पढ़ाता है। यह मुख्य सोपान है। यह पाठ-योजना का मुख्य चरण है। इसके अनेक अंग होते है जो भिन्न-भिन्न अध्यायों में उस-उस स्थान पर दिखायें जाते हैं। पद्य-शिक्षण के अन्तर्गत दण्डान्वय तथा खण्डान्वय दिखाया जाना आवश्यक होता है। इसी प्रकार रचना शिक्षण में अध्यापक छात्रों की सहायता करता है। इसी प्रकार गद्य-शिक्षण के समय पहले अध्यापक आदर्श वाचन करता है तथा बाद में छात्र अनुवाचन करते हैं।

10. संशोधन :- कक्षा के छात्रों के लिखित कार्य का अध्यापक संशोधन करता है। यदि एक कालांश में संशोधन सम्भव नहीं होता है तो यह कार्य अगले कालांश में किया जा सकता है। मौखिक कार्य का संशोधन साथ-साथ कराया जाता है।

11. पुनरावृत्ति :- अध्यापक द्वारा कक्षा में पढ़ाये गये विषय की पुनरावृत्ति आवश्यक होती है अन्यथा पढ़ाया गया पाठ व्यर्थ हो जाता है। कक्षा में जो शिक्षण कार्य किया जाता है उसका मूल्यांकन इसके अन्तर्गत होता है। अतः पुनरावृति के द्वारा छात्रों को बोधगम्यता तथा उनकी स्मरण शक्ति की परीक्षा ली जाती है। इसे ही अभ्यास कार्य कहा जाता है।

12. गृहकार्य :- यह पाठ योजना का अन्तिम सोपान है। कक्षा में पठित-पाठ की आवृत्ति के बाद गृहकार्य भी आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार पढ़ाये गए पाठ को

छात्रों के द्वारा घर पर ही आवृत्ति की जाती है। गृहकार्य देते हुए अध्यापक इस बात का विशेष ध्यान रखे कि गृहकार्य पढ़ाये गए पाठ से सम्बन्धित हो। गृहकार्य स्वल्प मात्रा में हो कि छात्र उसे अच्छी प्रकार कर सके।

6.6 स्वयं आकलन प्रश्न :-

1. गद्य-शिक्षण की कोई दो विशेषताएं बताइए।
2. पद्य-शिक्षण की विधियों के नाम बताइए।

6.7 संस्कृत में पद्य / काव्य-शिक्षण :-

6.7.1 काव्य का अर्थ :- मानव चेतना सम्पन्न तथा संवदेनशील प्राणी है। मन अपने शरीर पर पड़ने वाले सुख-दुःख, प्रेम, दया, क्रोध एवं आशा से चलायमान रहता है और प्रकृति में प्रतिपल परिवर्तित होने वाले सौम्य, मनोहर एवं विविध रूपों में भी भाव ग्रहण करता चलता है। काव्य द्वारा मानव का भावनात्मक विकास होता हो। काव्य हमारी भावनाओं का उत्कर्ष है। भारत में वैदिक काल से आज तक कविता पद्य या काव्य को परिभाषित करने के प्रयास होते रहे है। किन्तु कोई की सर्वमान्य परिभाषा नहीं स्थापित की जा सकी है। प्राचीन तथा पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य की कई परिभाषाएँ दी है।

कविवर विश्वनाथ के अनुसार, ''वाक्य रसात्मकं काव्य'' अर्थात रस से युक्त वाक्य काव्य है।

प0 जगन्नाथ का मत है -''रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है।''

आचार्य मम्मट कहते है :-''तद्दोषौ शब्दार्थौ सुगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'' अर्थात् दोष रहित, गुणसहित प्रायः अलंकृत किन्तु कभी-2 अनलंकृत शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

आचार्य कुतक मानते है :- ''वक्रोक्ति काव्यजीवितम्'' अर्थात् वकृेति ही काव्य का प्राण है।

कहा जाता है कि कोई भी भाषा अपने प्रारम्भिक काल में पद्य रूप में होती है। यही कारण है कि प्रत्येक भाषा आदि साहित्य के पद्य रूप में मिलता है। पद्य में सौन्दर्यानुभूति होती है। पद्य कवि के हृदय से निकलता है। अतः पद्य विधा पाठक के हृदय को जितना आकर्षित करती है उतनी अन्य विधा नहीं।

6.7.2 संस्कृत काव्य की विशेषताएं :-

(1) संस्कृत काव्य प्रबन्धात्मक एवं मुक्तक दोनों शैलियों में मिलता है, जिसके प्रयुक्त छन्दबद्ध कविता में भावपक्ष व कलापक्ष का समन्वय मिलता है तथा सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की भावना निहित होती है।

(2) कविता में जीवन का सांगोपांग चित्रण होता हो

(3) कविता में प्रसाद एवं माधुर्य गुणों की अभिव्यंजना मिलती है।

(4) कविता भाव प्रधान होते हुए भी कल्पना प्रसूता तथा सुन्दर विचारों वाली होती है।

(5) कविता की भाषा संगीतमय होती है, जिसके पाठ से आनन्द की अनुभूति होती है।

(6) कविता के चार आयाम - भावतत्व, कल्पना तत्व, विचार या बुद्धितत्व तथा शैली तत्व होते हैं ।

(7) संस्कृत काव्य का वर्णन विषय प्रायः श्रृंगार, नीति, धर्म और प्रकृति होता है। इसमे वीर, रौद्र, भयानक रसों तथा बीभत्स घटना के लिए स्थान नहीं होता है

(8) संस्कृत काव्य की प्रमुख विशेषताएं पदलालित्य, संगीत, सौष्ठव, रमणीय शैली तथा रसानुभूति होती है।

6.7.3. काव्य का महत्व :-

(1) कविता स्वान्तः सुखाय व मनोविनोद के लिखी जाती है।

(2) कविता का मुख्य प्रयोजन 'रसोत्पन्ति' है। कवि कल्पना लोक में निमग्न होकर अपने हृदय के भावों को आभिव्यक्त करने परम आनन्द की अनुभूति करता है।

(3) आचार्य मम्मट ने काव्य के 'प्रयोजन' माने है :- यश, कामना, धन प्राप्ति, संसार के व्यवहार का ज्ञान, व्यक्तिगत व सामाजिक अनिष्ट का निवारण, थोड़ी देर के लिए भावानन्द होना या उपदेश देना है।

(4) आचार्य कुन्तल ने कविता का प्रयोजन चतुर्वर्ग धर्म, आर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति, व्याधिनाश, अज्ञाननाश तथा अमृतवत् आनन्द की प्राप्ति बनता है।

5) आचार्य भामह ने कविता का प्रयोजन चतुर्वर्ग की प्राप्ति के साथ-साथ अन्य कलाओं में दक्षता एवं कीर्ति की प्राप्ति बताया है।

6.7.4 पद्य-शिक्षण का उद्देश्य :- पद्य-शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य है

(क) साधारण उद्देश्य :-

1. उचित स्वराघात के साथ काव्य का सस्वर वाचन करना ।

2. श्लोक की शैली शब्द चित्र, ध्वनि चित्र तथा लय आदि का रसास्वादन करना ।

3. चरित्र निर्माण करना।

4. पद्य के प्रति अनुराग विकसित करना।

5. कल्पना और विचारधारा के स्वरूप को समझना ।

6. पद्य की सुन्दरता का विश्लेषण करना तथा आलोचनात्मक अध्ययन करना।

7. पद्य के मुख्य भावों का विकास करना ।

8. शब्द योजना के आधार पर दृश्य चित्रों का उद्भावना करना।

9. पद्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना ।

(ख) विशेष उद्देश्य :-

1. एक या अधिक ग्रन्थों द्वारा नाना कवियों की शैली का परिचय देना।

2. छात्रों को कवि के विशिष्ट संदेश से परिचित कराना।

3. छात्रों को कवि विशेष के जीवन और उसकी कृतियों से परिचित कराना।

4. छात्रों के द्वारा पद्य का साहित्यिक मूल्याकन करना ।

5. छात्रों को काव्य रचना के लिए प्रेरित करना।

6.8 पद्य-शिक्षण की विधियां :-

संस्कृत पद्य-शिक्षण के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है, इनमें प्रमुख ये हैं-

(क) भाषानुवाद विधि :- इसे परम्परागत अथवा अर्थबोध विधि भी कहा जाता है। इसमें विषय-सामग्री के प्रत्येक शब्द का शिक्षक द्वारा या शिक्षक की सहायता से छात्रों द्वारा मातृभाषा में अनुवाद किया जाता है। इस विधि में छात्र श्लोक को अर्थ सहित कठस्थ कर लेते हैं। इस प्रकार यह नीरस विधि है, क्योंकि इनका शिक्षण गद्य की तरह किया जाता है। इसमें छात्र निष्क्रिय रहते हैं। प्रारम्भिक स्तर के लिए यह उपयोगी है तथा इसके शिक्षण में समय भी कम लगता है। अधिकांश संस्कृत शिक्षा की विधि का उपयोग करते है।

(ख) व्याख्या प्रणाली :- इस विधि में शिक्षक कविता में आये एक-एक पद्य का अर्थ, उसकी रचना शैली, कवि-परिचय प्रसंग, भाषाशैली, सम्बधित घटना या आख्यान बताते हुए भावार्थ स्पष्ट करता है। इस विधि में छात्र को भावार्य के साथ-साथ संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित ज्ञान भी हो जाता है ।

(ग) दण्डान्वय विधि :- इसके अन्तर्गत प्रत्येक पद्य का अन्वय किया जाता है। इनमें मुख्य खण्ड को ढूंढ लिया जाता है। इस मुख्य खण्ड में प्रत्येक भाग जैसे मुख्य क्रिया के साथ-साथ इनके विशेषण शब्द भी होते हैं।

'अन्वय प्रबोध' में दण्डान्वय की परिभाषा इस प्रकार बताई गई हैः-

आहो विशेषणं योज्यम् विशेष्य तदन्नतरम् ।

क्त्वाणमुल्ल्यप् प्रभृत्यैव दण्डान्वये भवेत् ।।

इस प्रकार वाक्य खण्ड में शब्दों का क्रम इस प्रकार होता है- कर्ता का विशेषण, कर्ता, कर्म के विशेषण, कर्म, अन्य कारक शब्दों के विशेषण, अन्य कारक अव्यय, क्रिया आदि।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सर्वप्रथम किसी पद्य को एक वाक्य रूप में परिवर्तित किया जाता है फिर उस वाक्य का अर्थ किया जाता है। यह क्रम प्रत्येक पद्य के लिए अपनाया जाता है। दण्डान्वय प्रणाली में मुख्य वाक्य का अन्वेषण करना होता है। अतः छात्र को लिंग, विभक्ति तथा वचन का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इस विधि में शब्दों को संश्लेषणात्मक रूप में रखना होता है। अत : यह विधि अपेक्षा करती है कि अध्यापक प्रत्येक पद्य का विश्लेषण पहले ही कर लें परन्तु जहाँ शब्दों का क्रम गूढ़ होता है, वहां अध्यापक को शब्दार्थ समझने में छात्रों की सहायता करनी चाहिए। इस क्रम मे अर्थस्वतः स्पष्ट हो जाता है।

यह गीता तथा हितोपदेश जैसे ग्रन्थों के अध्ययन में परमोपयोगी है। दण्डान्वय विधि का अनुसरण करते हुए गीता के कई सुन्दर संस्करण आये हैं। संस्कृत के टीका कारों में यह विधि सर्वसुलभ तथा सर्वप्रिय रही है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक को दण्डान्वय की विधि से इस प्रकार पढ़ाया जायेगा

माता शत्रु पिता वैरी, येन बालो न पाठितः ।

न शोभते सभामध्ये, हंसमध्ये बको यथा।।

प्रश्न :- इस श्लोक का कर्ता बताओ।

उत्तर :- बकः।

प्रश्न :- इसमें क्रिया कौन-सी है ?

उत्तर :- शोभते ।

अब इसी प्रकार के एक दो प्रश्नों के पूछने के बाद अध्यापक छात्रों की सहायता से इन श्लोक का दण्डान्वय इस प्रकार करेगा -

येन बालोन पाठितः, (सा) माताशत्रु (सा) पिताच वैरी (आस्ति)

(यतः सः बाला) सभामध्ये (तथैव) न शोभते, यथा बको हंसमध्ये (न शोभते)

दोष :-

इस विधि के प्रयोग से छात्र निष्क्रिय हो जाते हैं। अतः यह विधि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से दोषपूर्ण हैं।

(घ) खण्डान्वय विधि :- पद्य के सरलार्थ के विषय में यह विधि दण्डान्वय विधि से भिन्न है। परन्तु पदच्छेद, पदार्थकथन, समास विग्रह तथा तात्पर्य के विषय में उक्त दोनों विधियों में समानता पाई जाती है। इस विधि में प्रधान क्रिया को ढूँढने के पश्चात् प्रश्नोत्तर द्वारा वाक्य के शेष अंशों को ढूंढा जाता है। इस कारण इसे प्रश्नोत्तर विधि भी कहते हैं। इस विधि में छात्रों का भी सहयोग लिया जाता है। इसे विधि की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं:-

1. मुख्य वाक्यखण्ड विशेषतः प्रधान क्रिया को ढूँढा जाता है तब इसे कती से जोड़ा जाता है।

2. कर्ता, कर्म तथा क्रिया से सम्बन्धित अन्य शब्दों को ढूँढने के लिए प्रश्न पूछे जाते हैं।

3. पद्य को विभाजित किया जाता है। सर्वप्रथम क्रिया को तथा फिर कर्ता को रखा जाता है। तत्पश्चात् इनकी विशेषता बतलाने वाले प्रत्येक शब्द को रखा जाता है।

यह प्रश्नोत्तर विधि है। अतः यह विधि मनोवैज्ञानिक है। इसमें छात्रों को सदैव क्रियाशील रहना पड़ता है। दण्डान्वय विधि की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है। इसमें वाक्यों का अनेक खण्डों में विभाजन होता है। अतः छात्र वाक्य तत्त्व और खण्डों में पारस्परिक सम्बन्ध को समझ लेता है। इसके अतिरिक्त यह विधि मीमांसा शास्त्र के विख्यात भाषायी सिद्धान्त का अनुसरण करती हैं। जिसमें वाक्य को समझने के लिए आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि आवश्यक तत्त्व माने गए हैं। इस विधि में प्रश्न प्रायः संस्कृत में पूछे जाते हैं। जैसे

''काव्यशास्त्र विनोदन, कालो गच्छति धीमताम् ।

व्यसनेन तु मूर्खाणाम, निद्रया कलहेन वा।।''

प्रश्न :- केषां कालो गच्छति ?

प्रश्न :- मूर्खाणां कालः कथं गच्छति ?

प्रश्न :- व्यसनेन केषां कालो गच्छति ?

यहाँ प्रारम्भिक कक्षाओं में छात्रों की मातृभाषा में भी पूछा जा सकता है । उत्तरावस्था में संस्कृत का प्रयोग हो सकता है। उच्च कक्षाओं में सम्पूर्ण पाठ को प्रश्नोत्तरी में ही परिवर्तित करके विस्तृत प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

(ड.) समीक्षा विधि :- यह विधि उच्च स्तर की कक्षाओं से सम्बन्धित है। इस विधि में शिक्षक छात्रों को साहित्यालोचन के सिद्धान्तों का परिचय कराता है। इसको

व्याख्या विधि का ही रूप मान सकते हैं। इसके अन्तगर्त पद्य का भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों को महत्व दिया जाता है। इस विधि में बच्चों की व्याख्या में शैली, अलंकार, भाव, रीति, गुण, छन्द, कल्पना आदि पक्षों की सहायता ली जाती है। इस विधि में शिक्षक शिक्षार्थी की पुस्तको से सम्बन्धित सहायता करता है। इस प्रणाली में छात्रों को भी सक्रिय एवं विवेकशील होना आवश्यक है। पद्यों में निहित गुण-दोषों की समीक्षा की जाती है।

दोष :-

यह प्रणाली प्राराम्भिक एवं माध्यमिक स्तर के छात्रों के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि निम्नस्तर पर छात्रों का परिचय आलोचना के सिद्धान्तों से नहीं रहता है।

(च) तुलना विधि :- संस्कृत पद्यों के शिक्षण में तुलनात्मक विधि की प्राचीन विधि है। इसके अन्तर्गत शिक्षक समानान्तर भाव के पद्यों को छात्रों के सम्मुख रखकर तुलनात्मक शिक्षण करता है। यह विधि माध्यमिक एवं उच्चमाध्यमिक स्तर पर ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। तुलना करने वाले पद्यों में समान एवं असमान दोनों तत्वों को महत्व दिया जाना चाहिये। पद्यों की तुलना हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

1. प्रस्तुत पद्य के कार्य की अन्य रचनाएं।

2. प्रस्तुत पद्य को भावों के समान अन्य रचनाएं ।

3. विभिन्न कवियों की शैली एवं विचारधाराओं की रचनाएं ।

4. समान भाषा एवं असमान भाव की रचनाएं।

इस विधि के द्वारा छात्रों को प्रस्तुत पद्य के अतिरिक्त एक और पद्य का ज्ञान होता है। छात्र दो पद्यों के मध्य भावों, अर्थो एवं पद्यों में अन्तर कर सकता है किन्तु तुलना निष्पक्ष भाव से होनी चाहिए और शिक्षक को पद्यों को चयन, आयु, स्तर, योग्यता के अनुसार करना चाहिए।

व्यास प्रणाली :- इसे भाष्यविधि भी कहते है। यह तुलना और समीक्षा प्रणाली का ही परिवर्तित रूप है। इसमें साहित्यिक, पौराणिक, ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक प्रसंगो का उल्लेख किया जाता है। आचार्य शंकर ने उपनिषद् भगवद्गीता तथा ब्रहमसूत्र पर टीका करते हुए इस विधि का अनुसरण किया है।

दोष :-

यह प्रणाली व्याख्यान, शास्त्रार्थ तथा धार्मिक धर्मोपदेश आदि के लिए उपयुक्त है। यह संस्कृत शिक्षण के लिए अपेक्षाकृत उपादेय नहीं है।

6.9 पद्य-शिक्षण के विभिन्न सोपानों एवं सुधार के उपाय :- आजकल पद्य-शिक्षण की जिन प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है। उसका परिणाम सन्तोष जनक नहीं हैं। इनमें कई गद्य-शिक्षण जैसी है। पद्य को प्रायः गद्य की तरह पढ़ाया जाता है। पद्य के सौन्दर्य एवं भाव से छात्रों को परिचित नहीं कराया जाता है।

वस्तुतः संस्कृत पद्य-शिक्षण व्याकरण अथवा शब्दार्थ शिक्षण के लिए नहीं है। यह सत्य है कि भावार्थ के लिए सरलार्थ की आवश्यकता होती है परन्तु पद्य-शिक्षण का मुख्य उद्देश्य सरलार्थ नहीं है। इसलिए छात्रों को चाहिए कि श्लोक के सौन्दर्य की अनुभूति करें व इसके साथ-साथ उन्हें काव्य रस का आस्वादन भी करना चाहिए। अतः पद्य-शिक्षण को गद्य-शिक्षण से अलग रखा जाना चाहिए।

6.9.1 संस्कृत पद्य-शिक्षण के सोपान :- संस्कृत गद्य-शिक्षण की अपेक्षी पद्य-शिक्षण में थोडा अंतर पाया जाता है। पद्य-शिक्षण के लिए निम्नलिखित सोपानों का अनुसरण किया जाना चाहिए :-

(क) प्रस्तावना :- इसका उद्देश्य काव्यमय वातावरण बनाना है। इसमें छात्रों के पूर्वज्ञान से सम्बद्ध कुछ प्रश्न करने चाहिए। यहाँ कवि तथा उसके काव्य से भी सम्बधित चर्चा करनी चाहिए। श्लोक के समान भाव वाले अन्य श्लोकों पर भी प्रकाश डालना चाहिए ।

(ख) उद्देश्य कथन :- इसके अन्तर्गत अध्यापक छात्रों को श्लोक के उद्देश्य से अवगत कराये तथा उस श्लोक के सम्बद्ध में संकेत करे। अध्यापक घोषणा करेगा कि आज कक्षा में अमुक विषय से सम्बन्धित श्लोकों का अध्ययन कराया जाएगा।

(ग) प्रस्तुतीकरण :- इस सोपान के निम्नलिखित चरण हैं :-

(1) आदर्श वाचन :- अध्यापक श्लोक का शुद्ध तथा स्पष्ट वाचन करे। छोटे श्लोकों को वाचन एक ही बार में किया जा सकता है, अन्यथा खण्डों में वाचन होना चाहिए । वाचन मे लय, गति, छन्द, ध्वनि आदि का ध्यान अवश्य रखें ।

वाचन के निम्नलिखित दोषों का उल्लेख किया है-

1. गुनगुनाते हुए पढ़ाना।

2. अनावश्यक शीघ्रता से पढ़ाना।

3. बार-बार सिर का हिलाना ।

4. लिखित की आवृत्ति मात्र करना ।

5. शब्दार्थ को न समाझना

6. अत्यधिक अस्पष्ट वाचन करना।

अतः शिक्षक तथा छात्र दोनों ही इन दोषों से बचने का प्रयोग करें।

(2) अनुवाचन :- वाचन के पश्चात् छात्र उस श्लोक का अनुवाचन करे। अनुवाचन कम से कम दो बार अवश्य हो । छात्रों के अशुद्ध वाचन को शुद्ध कराया जाना चाहिए। प्रारम्भिक स्तर पर छात्र और शिक्षक साथ मिलकर भी वाचन कर सकते हैं।

(3) व्याख्या :- इसके अन्तर्गत अन्वय, शब्दों का पदच्छेद, समास विग्रह होना चाहिए। छात्रों को श्लोक का भाव समझना चाहिए।

(4) सौन्दर्य बोध :- पद्य-शिक्षण का मुख्य उद्देश्य है- सौन्दर्य बोध । अध्यापक छात्रों का ध्यान श्लोक के भाव सौन्दर्य, कल्पना सौन्दर्य तथा शैली सौन्दर्य की ओर आकर्षित करें। यह कार्य प्रश्नोत्तर अथवा वार्तालाप के द्वारा सम्पन्न करना चाहिए।

(5) मौन वाचन :- बोधगम्यता तथा रसप्राप्ति के पठित पद्य का मौन वाचन करना चाहिए। इसमें कल्पना द्वारा चित्रित परिस्थिति के कार्य साधारणीकरण हो जाता हैं। इसके अनुभव के लिए अध्यापक को छात्रों की सहायता करनी चाहिए।

(6) आवृत्ति :- इस सोपान के अन्तर्गत अध्यापक द्वारा पठित श्लोक की आवृत्ति की जाएगी । अध्यापक को इसके द्वारा ज्ञान हो जाएगा कि छात्र श्लोक को कितना समझ पाए हैं?

(घ) पुनरावृत्ति :- इस चरण में अध्यापक सम्पूर्ण पाठ को पुनरावृत्ति करें। इसके लिए छात्रों से श्लोक के भाव तथा शब्दार्थ से सम्बन्धित प्रश्न करें।

(ङ.) कक्षा कार्य एवं गृहकार्य :- अध्यापक छात्रों को कुछ कक्षा की कार्य दें तथा कुछ गृहकार्य दें। गृहकार्य के द्वारा छात्रों की विवेकशक्ति विकसित होती है। संस्कृत पद्य-शिक्षण के उपर्युक्त सोपान ही प्रयोग में आते हैं परन्तु स्तर को ध्यान में रखते हुए अध्यापक किसी भी सोपान पर न्यूनाधिक बल अपने अनुसार दे सकता है।

6.9.2 पद्य-शिक्षण के सम्बन्ध में सुझाव :- पद्य शिक्षण के सम्बद्ध में अध्यापक को निम्नलिखित सुझावों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए :-

1. काव्य का सम्बन्ध हृदय से होता है। अतः यह कार्य रूचि से किया जाना चाहिए।

2. संस्कृत पद्य में अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक मिठास एवं सौन्दर्य पाया जाता है। अतः अध्यापक संस्कृत पद्य-शिक्षण में तन्मयता पर बल दे ।

3. पद्य-शिक्षण को यथासम्भव सरल बनाया जाए।

4. पद्य-शिक्षण में व्याकरण पर अधिक बल नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि व्याकरण प्रक्रिया सौन्दर्य ग्रहण में बाधक होती है।

5. संस्कृत पद्य-शिक्षण में व्याकरण प्रक्रिया की तरह ही शब्दार्थ सम्बन्धी व्याख्या पर भी अधिक बल नहीं दिया जाना चाहिए। यह व्याख्या जितनी आवश्यक हो उतनी ही की जानी चाहिए।

6. श्लोक गायन जैसी प्रतियोगिताएँ श्लोक शिक्षण में अत्यधिक उपयोगी होती है।

अतः इस प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन समय-समय पर होना चाहिए।

7. अध्यापक छात्रों को श्लोकों को कण्ठस्थ करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करे। इस सम्बंध में श्लोक अन्त्याक्षरी जैसी प्रतियोगिताओं से लाभ मिलता है।

8. पद्य शिक्षण में सस्वर वाचन अत्यधिक उपयोगी होता है।

9. श्लोक के भाव से प्राप्त होने वाली शिक्षा को छात्रों के नैतिक विकास में उपयोग किया जाए।

10. सम्पूर्ण श्लोक को अखण्ड रूप में पढ़ाया जाये। खण्डों में पढ़ाए गए श्लोक में सौन्दर्य का स्वाद छात्र नहीं ले सकते।

11. अध्यापक छात्रों में कवि के कोमल भावों को आनन्द लेने की क्षमता उत्पन्न करें।

12. संस्कृत पद्य-शिक्षण छात्रों के स्तर के अनुरूप होना चाहिए।

13. पद्य-शिक्षण अपने उद्देश्यों की पूर्ति अवश्य करें।

14. छात्रों को श्लोक रचना के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

6.10 सारांश :-

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि संस्कृत भाषा तथा संस्कृत साहित्य की गद्य तथा पद्य / काव्य विधियों का शिक्षण कैसे किया जाता है। गद्य तथा पद्य विधा को किन-किन विधियों के माध्यम से पढ़ाया जाता है। गद्य तथा पद्य शिक्षण के उद्देश्य क्या है ? गद्य तथा पद्य विधा का क्या स्वरूप है और सबसे महत्वपूर्ण गद्य तथा पद्य की पाठयोजना कैसी बनानी है। इन दोनों विधाओ की पाठयोजना के अन्तर्भूत सोपानों से समझ चुके होंगे।

6.11 कठिन शब्दावली :-

परिपाटी - प्रथा, प्रातिपदिक - धातु शब्द, मूल और रूढ़ शब्द, संशोधन - शुद्ध करना, पौराणिक - पुराण सम्बन्धी।

6.12 स्वंय आकलन प्रश्नों के उत्तर :-

1. गद्य-शिक्षण की दो विशेषताएं - (i) भाषायी तत्वों का ज्ञान, (ii) समास बहुल शैली

2. पद्य-शिक्षण की विधियां - (i) भाषानुवाद विधि, (ii) समीक्षा विधि, (iii) व्यास विधि

6.13 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थः-

1. उपाध्यक्ष, आचार्य बलदेव, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, शारदा संहयान, रवीन्द्रपुरी, दुर्गामुण्ड, वाराणसी-5

2. मित्तल, डॉ सन्तोष, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।

3. मिश्र, चिरंजीव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, भारतीय संस्कृत भवन, माई हीरा गेट, जलन्धर।

4. मिश्र, डॉ सन्त कुमार, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।

6.14 अभ्यास प्रशन :-

1. संस्कृत गद्य-शिक्षण का महत्व एवं उद्देश्य का वर्णन कीजिए।

2. गद्य-शिक्षण की विधियों की व्याख्या कीजिए।

3. पाठ-योजना से क्या अभिप्राय है ? पाठ-योजना के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

4. संस्कृत पद्य शिक्षण का महत्व दर्शाते हुए उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

5. पद्य - शिक्षण विधियों का वर्णन कीजिए।

6. पद्य-शिक्षण के विभिन्न सोपानों एवं सुधार के उपायों की वर्णन कीजिए।

पाठ-7

संस्कृत साहित्य की विधाः कहानी एवं नाटक आदि के शिक्षण का महत्व एवं उनकी विधियाँ

संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 संस्कृत कहानी या कथा साहित्य तथा उसका महत्त्व

7.4 संस्कृत कहानी या कथा की शिक्षण की प्रविधियाँ

7.5 स्वयं आकलन प्रश्न

7.6 नाटक साहित्य का महत्व

7.7 नाटक शिक्षण के उद्देश्य एवं शिक्षण की विधियाँ

7.8. सारांश

7.9. कठिन शब्दावली

7.10. स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

7.11. संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ

7.12. अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना :-

संस्कृत शिक्षण की विभिन्न विधाओं में से गद्य-पद्य का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। इस पाठ में कथा तथा नाटक शिक्षण पर चर्चा करेंगे। साहित्य की विधाओं में सें कथा भी एक महत्त्वपूर्ण विधा है, जो छात्रों में तक्र व निरीक्षण शक्ति का विकास करती है। साथ ही उनकी जिज्ञासाओं का समाधान कर मनोरंजन भी करती है। नाटक रसास्वादन का मुख्य साधन है। जिसमें दर्शक नाटक को देखने के साथ-साथ पात्रों के संवादों को भी सुनता है। नाटक जनसाधारण की वस्तु है। नाटक कला के आविष्कार का श्रेय भी इसी भाषा को दिया गया है। भास के 13 नाटक उत्कृष्ट नाटक कला के ज्वलन्त उदाहरण है। इतना सामृद्ध साहित्य विश्व की किसी भी भाषा में नहीं मिलता है।

7.2 उद्देश्य :- इस पाठ के अन्त में :-

1. संस्कृत कहानी या कथा साहित्य के महत्त्व की व्याख्या करने में सक्षम होंगे।

2. संस्कृत कहानी या कथा शिक्षण की विधियों से अवगत होंगे।

3. संस्कृत नाटक के स्वरूप को समझ सकेगें । संस्कृत नाटक शिक्षण के उद्देश्यों विधियों का ज्ञान प्राप्त करेगें।

7.3 संस्कृत कहानी या कथा साहित्य तथा उसका महत्त्व :-

साहित्य की विभिन्न विधाओं में कथा भी एक महत्त्वपूर्ण हैं जो छात्रों की तर्क व निरीक्षण शक्ति का विकास करती है, साथ ही उनकी जिज्ञासाओं का समाधान कर मनोरंजन भी करती है। इसलिए भाषा शिक्षण करते समय कथाओं को अलग से

महत्व दिया जाता है। साथ ही अन्य विषयों जैसे - इतिहास, नागरिकशास्त्र, भूगोल आदि के शिक्षण को रोचक बनाने में भी इनकी भूमिका अहं है।

भारतीय कथा साहित्य का उद्गम संस्कृत साहित्य से ही हुआ और इसने विश्व के सभी देशों के साहित्य में अपना स्थान बना लिया। संस्कृत साहित्य में कहानी के दो रूप मिलते हैं- (1) आख्यायिक (2) कथा। किन्तु बाद में दण्डी ने आख्यायिका और कथा के भेद को कृत्रिम मानकर उसे अस्वीकार कर दिया। तथापि संस्कृत साहित्य के इतिहास में कथा साहित्य का स्वरूप इस प्रकार देखने को मिलता है :-

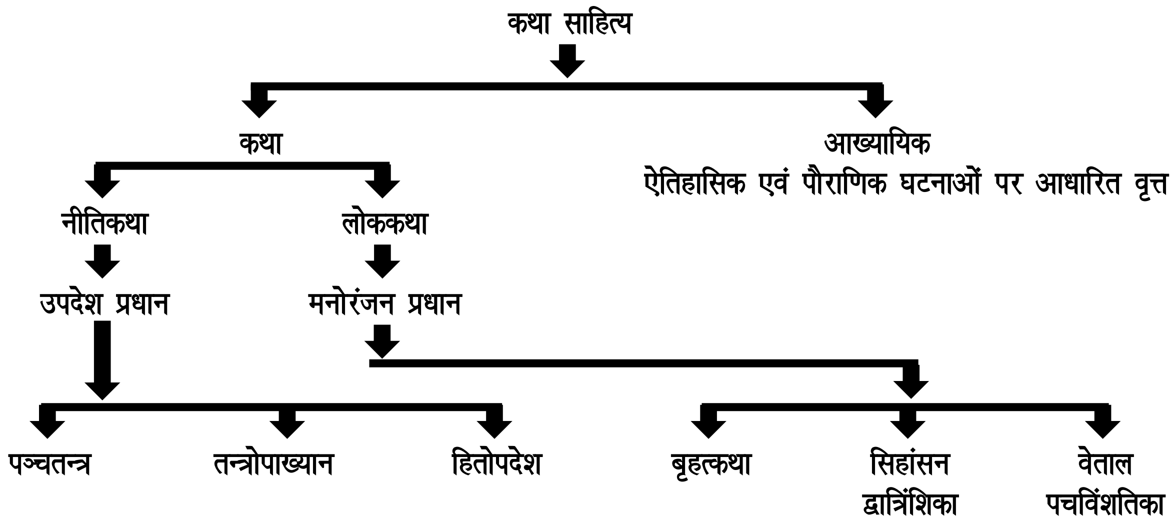

7.3.1 नीतिकथा :- इस कथाओं का विषय सदाचार, नैतिकता, राजनीति और व्यावहारिक ज्ञान है। इसके पात्र पशु पक्षी है। मनुष्य और मछली की कथा ऋग्वेद में प्राप्त होती है। छान्दोग्योपनिषद में की उद्गीथ श्वान का आख्यान वर्णित है। पुराणों में तो बहुत-सी नीति कथायें प्राप्त होती है। पतंजलि 150 ई0 ने अपने 'महाभाष्य' में भी अजाकृपाणीय और काकतालीय जैसी लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। जैनों और बौद्धों की लिखी हुई नीति कथायें भी इसी समय की है। बौद्ध ग्रन्थ 'जातक' 380 ई0 पू0 में ही विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त 668 ई0 पू0 के एक

चीनी विश्वकोष में अनेक भारतीय नीतिकथाओं के अनुवाद उपलब्ध होते हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि ईसा पूर्व इनकी संख्या पर्याप्त थी।

7.3.1.1 पंचतन्त्र :- यह विश्व में संस्कृत नीतिकथा साहित्य का अत्यन्त प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें नीति की बड़ी उपयोगी, शिक्षाप्रद और मनोहर कथाएँ हैं। बीच-बीच में सारगर्भित और निष्कर्षमय पद्यों का सन्निवेश हुआ है। पंचतंत्र की रचना का मूल उद्देश्य महिलारोप्य नामक नगर के राजा अमरशक्ति के तीन मूर्ख पुत्रों को राजनीति की शिक्षा देना है। इसके लेखक विष्णु शर्मा ने स्वयं प्रस्तावना में इसका उल्लेख किया है। इसमें समस्त राजनीति का सार है जिसे कथा के माध्यम से सरल ढंग से समझाया गया है। इसमें पांच तत्र हैं :-

(अ) मित्रभेद (ब) मित्रलाभ (स) सन्धि विग्रह (4) लब्धप्रणाश (1) अपरीक्षितकारक

इसकी भाषा सरल एवं मुहावरेदार है तथा विषय में पूर्णतः अनुरूप है। इसका गद्य सुबोध है। वाक्य छोटे-छोटे हैं तथा वाक्य विन्यास में दुरुहता नहीं है। कथानक का वर्णन गद्य में किया गया है। किन्तु उपदेशात्मक सूक्तियाँ पक्षों में हैं। जो प्राचीन ग्रन्थों महाभारत एवं जातक आदि से संग्रहीत है। पंचतन्त्र का अनुवाद प्रायः 50 से भी अधिक भाषाओं में किया जा सकता है।

7.3.1.2 तन्त्रोपाख्यान :- तन्त्रोपाख्यान पंचतन्त्र का ही एक विशिष्ट स्वरूप है। इसके प्रत्येक प्रकरण में पंचतन्त्र की ही शैली का अनुसरण किया गया है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही इसकी विशेषता का अनुसरण किया गया है कि अर्थ के जानने पर नीति का ज्ञान होता है और कथा सुनने में सुख मिलता है। इस तरह ज्ञान और सुख दोनों की उपलब्धि के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गयी है।

7.3.1.3 हितोपदेश :- नीतिकमाओं में पंचतन्त्र के बाद हितोपदेश का स्थान सुरक्षित है। इस ग्रन्थ के रचयिता नारायण पण्डित थे। जिनके आश्रयदाता धवलचन्द्र बंगाल के कोई राजा थे। इस ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि 1373 ई0 की प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ का आधार पंचतन्त्र है। इसकी भाषा पंचतन्त्र से भी सरल है। इसमें 43 कथायें ही मिलती है जिनमें से 25 कथायें पंचतन्त्र से उद्धृत की गई है। इसमें चार परिच्छेद :- मित्रलाभ, सुहृदभेद, विग्रह तथा संधि। इसमें से प्रथम दोनों तन्त्रों का आधार पंचतन्त्र ही हैं। हितोपदेश में पद्यों की संख्या भी अधिक है। ये पद्य प्राचीन नीति-यन्त्रों से लिए गए हैं। इसमें 679 नीति विषयक पद्य हैं। इस ग्रन्थ का प्रचार भारतवर्ष में पंचतन्त्र से कही अधिक है।

7.3.2 लोककथा :- उपदेश प्रधान नीतिकथाओं के अतिरिक्त मनोरंजनात्मक लोक कथाओं का भी अस्तित्व संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से ही पाया जाता है। लोक कथायें कल्पना प्रधान है। ये मनुष्यमात्र के जीवन से अनुस्यूत ही नहीं अनुप्राणित भी हैं।

7.3.2.1 बृहत्कथा :- लोककथाओं का प्राचीनतम संग्रह बृहत्कथा है। जिसका समय प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई0 है। कुछ लेखकों में इसे पंचम शतक की रचना कहा है। मूल बृहत्कथा पैशाची प्राकृत भाषा में थी। यह आज उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि इसमें एक लाख पद्य थे।

7.3.2.2 बृहत्कथा मञ्जरी :- क्षेमेन्द्र कृत इस ग्रन्थ का समय 11वीं शताब्दी कहा जाता है और वह कश्मीर के राजा अनन्त के आश्रित कवि थे। इस कृति में 7500 श्लोक हैं। यह बृहत्कथा का संक्षिप्त स्वरूप है, परन्तु इसके कथानक में स्पष्टता की मात्रा कम हैं। शैली प्रान्जल व कवित्वपूर्ण है ।

7.3.2.3 कथासरित्सागर :- सोमदेव रचित इस ग्रन्थ का समय 11वीं शती है। इसमें 2400 श्लोक हैं। विश्व में यही सबसे प्राचीन विशालकाय उत्कृष्ट कथा संग्रह है। कथा की पुष्टि कौशल से हुई है। इसमें कश्मीरियों के अन्धविश्वास तथा परायण स्वभाव का सुन्दर वर्णन मिलता है।

7.3.2.4. वेताल पंचविंशतिका :- इसका आधार बृहत्कथा मञ्जरी और कथा सरित्सागर है। यह पूर्णरूप से प्राप्त होती है। इसके गद्यमय स्वरूप के रचयिता शिवदास है तथा जेमेलदत्त इनके पद्यमय स्वरूप के रचयिता है। इसमें प्रहेलिका के स्वरूप 25 कौतूहलपूर्ण कथाओं का संग्रह है।

7.3.2.5 सिहासनद्वात्रिंशिका :- जैन मुनिक्षेमकर रचित सिहासनद्वात्रिंशिका द्वात्रिंशितपुत्तलिका अथवा विक्रमचरित भी एक मनोरंजन कथा संग्रह है। इसमें राजा विक्रमादित्य 'भोज' को उनके सिंहासन पर विद्यमान 32 पुत्तलियाँ सिंहासन पर बैठने से पूर्व राजा विक्रम का चरित्र सुनाकर उसे उस स्थान के योग्य होने का संकेत देती हैं।

7.3.3 संस्कृत कथाओं की विशेषताएं एवं महत्व :-

1. कथा के विभिन्न तत्त्व कथानक, चरित्रचित्रण, कथोपकथन, भाषा एवं शैली, शीर्षक व उद्देश्य की दृष्टि से संस्कृत कथाएँ उत्कृष्ट कोटि की है।

2. इनके कथानक क्रमबद्ध तथा जीवनोपयोगी से सभी सम्बन्धित है। पशु-पक्षी तथा मानव को पात्रों के रूप में लिया गया है।

3. इनमें मनोरंजन के साथ-साथ नीति व सदाचरण की शिक्षा भी मिलती है।

4. ये कथाएँ कौतूहल पूर्ण है, कल्पना ही इनके विकास तथा प्रादुर्भाव का स्रोत है।

5. मानव को व्यवहार कुशल बनाने में सहायक है क्योंकि इनसे पाठकों में नैतिक गुणों का विकास होता।

6. इनसे धर्म, अर्थ व काम इस त्रिवर्ग की प्राप्ति होती हैं।

7 ये कथाएँ देव भाषा की पाठन शैली का आदर्श भी उपस्थित करती हैं।

8. कथाएँ जटिल भावों को समझाने का सुन्दर साधन है।

9. कथा से प्रसंग में आए हुए शब्दों, वाक्यों एवं मुहावरों का वास्तविक अर्थ वे सरलता से सीख लेते हैं।

10. कहानियों द्वारा सांसारिक ज्ञान की वृद्धि होती है।

11. कथा द्वारा छात्रों में तर्कशाक्ति, विवेक, संकल्प आदि सद्‌गुणों की वृद्धि होती है।

12. कथाओं द्वारा कल्पना शक्ति का विकास एवं भावों को व्यक्त करने की क्षमता का प्रादुर्भाव होता है।

13. ये छात्रों को संयमित व अनुशासित जीवन जीने की प्ररेणा देती है।

4.3.4 शिक्षण हेतु कथा का चयन :- शिक्षण करते समय कथाओं का उपयुक्त चयन किया जाना आवश्यक है :-

1. कथाओं के द्वारा छात्रों के मानसिक विकास व स्तर को ध्यान में रखते हुए पढ़ाई जानी चाहिए। उनकी व्यक्तिगत भिन्नताओं का ध्यान भी रखना आवश्यक है।

प्रारम्भिक स्तर पर पशु पक्षियों की कथाएँ सुनाई व पढाई जाए। माध्यमिक व उच्च स्तर पर आयु के अनुसार, जीवन जगत की नित्यप्रति की घटनाओं पर आधारित यथार्थवादी कथाएँ पढाई जाएँ।

2. उच्च स्तर पर सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा महापुरुषों की कथाओं को उच्च स्तर पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

3. उसकी भाषा शैली सरल व बोधगम्य हो ।

4. कथा रोचक व जिज्ञासा का समाधान करने वाली होनी चाहिए।

5. प्रत्येक कथा सोद्देश्य होनी चाहिए।

6. कथाओं में संवाद पर्याप्त मात्रा में हो।

7. कथाएँ सुखान्त हो, ताकि वे छात्रों को आशान्वित बनाने में सहायक हो सके

8. कथाएँ उद्देश्यपूर्ण हो।

9. कथा में पात्रों को बहुलता नहीं होनी चाहिए ।

7.4 संस्कृत कहानी या कथा शिक्षण की प्रविधियाँ :-

1. कथन प्रविधि :- कथा सुनाना भी एक कला है। वस्तुतः कथा का प्रस्तुतीकरण अध्यापक द्वारा जितने प्रभावशाली ढंग से किया जाता है, उतना ही इसका शिक्षण सफल रहता है। अतः शिक्षक इसके लिए कथन प्रविधि का प्रयोग करते हैं। यह प्रविधि प्राथमिक स्तर के लिए उपयुक्त है। माध्यमिक व उच्च स्तर पर इनको कुछ

अंश तक अपनाया जा सकता है। यह प्रविधि भाव प्रधान व मनोवैज्ञानिक कथा के लिए यह प्रविधि उपयुक्त नहीं है।

2. चित्र प्रविधि :- इस प्रविधि में अध्यापक कथा से सम्बन्धित चित्रों को लेकर अध्यापक क्रमशः कथन करता हुआ इनका प्रदर्शन करता है तथा कथा का विकास करता है। इससे कथा छात्रों के लिए बोधगम्य हो जाती है। नूतन चित्रों का कौतूहल अन्त तक बना रहता है। इसमें शिक्षक तथा छात्र दोनों सक्रिय रहते हैं। इससे छात्रों में कल्पना शक्ति का विकास होता है तथा उन्हें मौखिक अभिव्यक्ति का अवसर भी मिलता है। यह प्रविधि तीनों स्तरों पर प्रयोग में लाई जा सकती है किन्तु प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर यह अधिक उपयुक्त है।

3. प्रश्नोत्तर प्रविधि :- इस प्रविधि में शिक्षक क्रमबद्ध ढंग से छोटे-छोटे प्रश्न पूछता है। छात्र चित्र व कथन द्वारा समझे गए विषय के आधार पर प्रश्नों के उत्तर देते हैं। यह प्रविधि माध्यमिक व उच्च स्तर के लिए अधिक उपयोगी है।

4. संवाद प्रविधि :- इस विधि में शिक्षक कथापात्रों के कथन पर छात्रों के साथ वार्तालाप करता है तथा छात्रों की सहायता से पूरी कथा कहता है। पात्रों के कथन पर महत्व देने के कारण तथा छात्रों की प्रतिक्रिया वार्तालाप द्वारा जानने के कारण इसे संवाद प्रविधि है। यह विधि माध्यमिक स्तर के लिए अधिक उपयुक्त है।

5. कक्षाभिनय प्रविधि :- इसमें अध्यापक उचित हावभाव सहित कथा का वाचन प्रस्तुत करता है तथा छात्रों को अलग-अलग पात्रों के अनुसार खड़ा करके वाचन करने का आदेश देता है जिन कथाओं में संवाद अधिक होते हैं उनके लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त प्रविधि है ।

6. गहन अध्ययन प्रविधि- इस प्रविधि से कथा में आए कठिन शब्द, नए विचार मुहावरे, लोकोक्ति आदि की समुचित व्याख्या करते हुए पढ़ाया जाता है। इसमें कथा के कथन, संदेश, उपदेश, निर्देश, कथाकार का दर्शन, कथा की अन्य कथाओं के सन्दर्भ में साहित्यिक तुलना और समीक्षा के अन्यान्य पहलुओं पर भी विचार किया जाता है। यह उच्चस्तर के लिए उपयुक्त प्रविधि है।

7.4.1 कथा शिक्षण के सोपान :-

1. सामान्य उद्देश्य :- इसके अन्तर्गत अध्यापक कथा शिक्षण के सामान्य उद्देश्य निर्धारित करेगा। छात्रों की कल्पना शक्ति का विकास करना कथा शिक्षण का एक सामान्य उद्देश्य हो सकता है।

2. विशिष्ट उद्देश्य :- इसके अन्तर्गत अध्यापक छात्रों के सम्मुख उस विशिष्ट उद्देश्य को रखेगा जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर वह कथा पढ़ाई जा रही है।

3. सहायक सामाग्री :- इसमें श्यामपट्ट पर लिखित कथा या पाठ्यपुस्तक सहायक सामग्री के रूप में प्रस्तुत की जाती है।

4. पूर्व ज्ञान :- इसके अन्तर्गत अध्यापक कथा से सम्बन्धित कुछ प्रश्न करके छात्रों के पूर्व ज्ञान का निरीक्षण करता है।

5. प्रस्तावना :- संस्कृत कथा का आरम्भ करने से पूर्व यह सोपान होता है। इसमें छत्रों के पूर्व पठितपाठ का नवीन पाठ से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अध्यापक छात्रों से पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित प्रश्न पूछता है।

6. उद्देश्य कथन :- प्रस्तावना के बाद अध्यापक कथा का उद्देश्य कथन करना है। वह छात्रों को कहता है कि आज हम अमुक कथा को पढ़ेगें जिससे अमुक शिक्षा प्राप्त होती है।

7. प्रस्तुतीकरण (प्रथमान्विति) :- इसके अन्तर्गत अध्यापक कथा का वाचन करना प्रारम्भ करेगा।

बोध प्रश्न :- इसमें प्रमुख कथा बिन्दुओं से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जायेंगे।

द्वितीयान्विति :- इसमें कथा के सार को दोहराया जाएगा।

बोधप्रश्न :- पुनः कथा से सम्बंधित सभी प्रकार से प्रश्न पूछे जायेंगे।

8. काठिन्य निवारण :- इसके अन्तर्गत जहाँ-जहाँ छात्र कथा को समझने में कठिनता अनुभव करते हैं वहाँ-वहाँ उनको विशेष ध्यान देने के लिए कहा जाएगा।

9. शुद्धोच्चारण :- इसके अन्तर्गत छात्रों को शुद्ध उच्चारण करने के लिए प्रेरित किया जाएगा।

10. उत्प्रेरणात्मक प्रश्ना :- इसमें अध्यापक कथा की शिक्षा से परिचित कराता हुआ छात्रों से अन्य शिक्षाओं के बारे में भी प्रश्न पूछेगा।

11. मूल्यांकन :- कथा शिक्षण के उपरान्त अध्यापक छात्रों के बोध या ज्ञान का मूल्यांकन करेगा।

12. गृहकार्य :- छात्रों ने कक्षा में जो कथा पढ़ी है उससे सम्बंधित कार्य घर पर करने के लिए उनको कहा जाएगा।

7.4.2. कथा शिक्षण के लिए ध्यातव्य बिन्दु :-

1. कथा में कथा सुनाने से पहले शिक्षक को उसकी पूर्ण तैयारी कर लेनी चाहिए जिससे वह बीच-बीच में भूले नहीं। कथा का पंक्तिशः वाचन न करके उसे अपने शब्दों में छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए ।

2. शिक्षक द्वारा कथा को दत्तचित्त होकर सुनाया जाना चाहिए।

3. शिक्षक का दृष्टिकोण कथा की विचारधारा के अनुसार चलना चाहिए क्योंकि शिक्षक की तन्मयता, कौतूहल तथा उत्साह कथा-कथन का प्राण है।

4. उसे कथा पूर्णतः हाव-भाव सहित कक्षा में प्रस्तुत करनी चाहिए।

5. कथा को कहते हुए प्रसंगानुसार स्वर में आवश्यक परिवर्तन भी किया जाना चाहिए।

6. चित्र एवं अन्य दृश्यश्रव्य साधनों का प्रयोग करते हुए कक्षा में कथा प्रस्तुत करनी उचित है।

7. शिक्षक के द्वारा छात्रों को कथा की विशेषता से अवगत करवाया जाना चाहिए।

8. लघु कथाओं को एक ही अन्विति में पढ़ाया जाना चाहिए। लम्बी कथाओं को विषयानुसार अन्वितियों में विभक्त कर पढ़ाना चाहिए।

9. कथा में आए कठिन स्थलों, शब्दों की व्याख्या की जानी चाहिए।

10. छात्रों में रचनात्मक शक्ति का विकास करने हेतु कथा के वाक्यों के आधार पर लिखित कार्य भी करवाया जाना चाहिए।

7.5 स्वयं आकलन प्रश्न :-

1. कहानी या कथा शिक्षण की किन्ही दो विधियों के नाम लिखो।
2. नाटक शिक्षण की विधियों के नाम लिखों।

7.6 नाटक साहित्य का महत्त्व :-

नाटक गद्य साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। संस्कृत आचार्य इसे काव्य ही मानते हैं। काव्य के मुख्य दो भेद है- श्रव्य काव्य एवं दृश्य काव्य । श्रव्य काव्य श्रवण के माध्यम से समाज के हृदय को उकृष्ट करता है। दृश्य काव्य नेत्र के माध्यम से दर्शक के हृदय को आकृष्ट करता है। यह निर्विवाद सिद्ध है कि जिस कार्य में हमारी जितनी ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग होता है, वह हमारे लिए उतना ही रुचिकर, सग्राह्य व आकर्षक होता है। 'नाटक' संस्कृत साहित्य की एक ऐसी ही विधा है जिसमें दर्शक नाटक को देखने के साथ-साथ पात्रों के संवाद को भी सुनता है। अतः अन्य विधाओं की तुलना में इसका विशेष स्थान है तथा इसकी शिक्षण-विधि भी भिन्न है।

'काव्येषु नाटकं रम्यं' :- यह उक्ति प्रसिद्ध एवं सार्थक भी है। नाटक जनसाधारण की वस्तु है व इसमें लोकहित और लोकरंजन है। नाटक दर्शकों की ऐतिहासिक व काल्पनिक पात्रों में साक्षात्कार करवाकर उनके जीवन-चरित्र से शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं।

7.6.1 नाटक का अर्थ :-

नाटक शब्द संस्कृत की 'नट्' धातु से बना है। जिसके नाचना, अभिनय करना, अनुकरण करना आदि अर्थ हैं। संस्कृत में इसे रूपक का पर्याय माना जाता है, जबकि हिन्दी में नाटक एवं अंग्रेजी में इसके लिए ड्रामा (drama) शब्द प्रचलित है। संस्कृत के आचार्यों ने नाटक की परिभाषा अलग-अलग दी है :-

भरत मुनि के नार्यशास्त्र के अनुसार :-

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं संसग्रहम्।

भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ।।

सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वाशिल्प प्रवर्त्तकम् ।

नाटयाख्यं पंचमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम् ।।

'यह नाटक धर्म तथा अर्थ की प्राप्ति कराने वाला यशप्रदाता, उपदेश - सहित, संग्रह से युक्त, भावी लोक के समस्य कार्यों को बताने वाला, समस्त शास्त्रों के अर्थों से परिपूर्ण, सब शिल्पों को काम में प्रवृत्त करने वाला होगा। मैं ऐसे नाटय नामक पांचवे वेद की रचना इतिहास सहित करता हूँ।'

इससे स्पष्ट है कि भरतमुनि ने नाटक को पाँचवे वेद की संज्ञा दी है। उनका कहना है - 'ब्रह्मा ने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गान, यजुर्वेद से नाट्य अथवा अभिनय और यजुर्वेद से रस लिया और पंचमवेद नाटक की रचना कर दी।

धनंजय के 'दशरूपक' के अनुसार :- 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'

'किसी भी अवस्था के अनुकरण को नाटक कहते हैं। यहाँ अवस्था से तात्पर्य मानव जीवन की उस सम्पूर्ण परिस्थितियों से है जिसका उसे अपने जीवन में सामना करना पड़ता है।'

महाकवि कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' के अनुसार - कालिदास ने अपने इस नाटक की भूमिका में लिखा है :-

'नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकम् समाराधनम्।'

अर्थात् नाटक भिन्न-भिन्न रुचि के मनुष्यों को संतुष्ट करने का एक मात्र साधन है।

अभिनव भारत के 'अभिनव नाटयशास्त्र' के अनुसार - नाटक वह प्रयोग है जिसमें किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक या कल्पित कथा के आधार पर नाटककार द्वारा उचित रूपानुसार नाटक प्रयोक्ता द्वारा प्रशिक्षित नट रंगमंच पर अभिनय तथा संगीत की सहायता से दर्शकों के हृदयों में रस उत्पन्न कर उनका मनोविनोद करते है और परोक्ष रूप में उन्हें उपदेश देते हैं और मनः शक्ति प्रदान करते हैं।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र की महत्ता बताते हुए कहा है :-

न तच्छ्रतं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

न स योगो न तत्कर्म यन्नाटयेडस्मिन्न दृश्यते।।

'अर्थात् अध्ययन (श्रवण) द्वारा प्राप्त किया कोई ऐसा ज्ञान नहीं है, शिल्प नहीं है, विद्या नहीं है, कला नहीं है, योग नहीं है, काम नहीं है, जो इस नाटय मे न देखा जाता हो।'

वस्तु, नेता तथा रस की दृष्टि से नाटक के दस भदे है :- नाटक प्रकरण भाण, व्यायोग, समवकार, वीथि, डिम ईहामृग, अंक, प्रहसन । कथावस्तु के तीन भेद है - प्रख्याता (ऐतिहासिक), उत्पाद्य (काल्पनिक), मिश्र (दोनों का मिश्रण)। इन दस भेदों मे से नाटक सर्वप्रथम एवं प्रमुख है। नाटक साहित्य के उद्भव के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। 'पिशेल' नामक पाश्चात्य विद्वान पुतलियों के खेल व नृत्य से ही नाटक साहित्य का उद्गम मानते हैं। समालोचको ने इस मत का यह कहकर खण्डन किया है कि पुतलियों के नाच से नाटक प्राचीनतर है।

वैदिक युग में नाट्यकला के अस्तित्व के सम्बन्ध में हमें पर्याप्त सामग्री बिखरी हुई मिलती है। पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी, इन्द्र-इन्द्राणी, सरमा-पाणि आदि ऋग्वेदोक्त संवाद प्रसंगों में नाट्यकला के बीच स्पष्ट दिखाई देते हैं।

यजुर्वेद की वाजसेनयी संहिता के एक प्रसंग से ज्ञात होता है कि वैदिक युग में एक शैलूष नामक जाति के लोग व्यावसायिक रूप से नाटकों का आयोजन कर जीविकोपार्जन किया करते थे। उत्तरवर्ती साहित्य में हमें नाटकों एवं नाट्यकला की शिल्पविधियों का पूर्ण इतिहास दिखाई देता है । अष्टाध्यायी, रामायण, अर्थशास्त्र, बौद्धजातकों और महाकाव्यों आदि में नाट्यकला के विभिन्न अंगों, उसके पात्रों और साथ ही पारिभाषिक शब्दों का पूर्ण वितरण प्राप्त होता है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी यह वर्णन मिलती है कि उस समय नट, नर्तक, गायक, वादक, कुशीलव, प्लवक, ऐन्द्रजालिक और चारण आदि की विभिन्न मण्डलियाँ गा-बजाकर और नाटक करके जीविकोपार्जन किया करती थीं। यह निर्विवाद सत्य है कि संस्कृत साहित्य में नाटकों के निर्माण की परम्परा बहुत प्राचीन है और

आदिकाल से ही भारतीय जन-जीवन के मनोरंजन के लिए इन नाटकों का श्रेष्ठ माध्यम के रूप में अपनाया जाता रहा है।

7.6.2 नाटक शिक्षण का महत्त्व :-

1. इससे छात्रों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, चारित्रिक एवं नैतिक विकास होता है।
2. इसके द्वारा किसी भी घटना या चरित्र को सफलतापूर्वक और सरलता से समझा जा सकता है।
3. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अन्य विधाओं की अपेक्षा यह महत्वपूर्ण है क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों के सक्रिय रहने के कारण इसका प्रभाव मानसपटल पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है।
4. इसके द्वारा अभिनय कला, वास्तुकला, मूर्तिकला, संगीतकाल, चित्रकला आदि की शिक्षा दी जा सकती है।
5. अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करने में सहायक है।
6. बालक किसी बात को प्रायः दो प्रकार से सीखते हैं- विधिवत् शिक्षण तथा अनुकरण। नाटक में इन दोनों की प्रधानता है।
7. इससे छात्रों की मौखिकाभिव्यक्ति सशक्त होती है।

7.7 नाटक शिक्षण के उद्देश्य एवं शिक्षण की विधियाँ :-

शिक्षण कार्य उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। कक्षा में किसी भी विषय को पढ़ाने से पूर्व उसके उद्देश्य निर्धारित करने होते हैं। उसके पश्चात् उनसे सम्बन्धित शिक्षण विधियों के द्वारा शिक्षण को लक्ष्य तक पहुंचाया जाता है। यही बात शिक्षण के सम्बंध में जाननी चाहिए

4.7.1 नाटक शिक्षण के उद्देश्य :-

1. भरतमुनि ने नाटक के तीन उद्देश्य बताये हैं :-

(अ) हितोपदेशजननम्-व्यक्ति एवं समाज के कल्याण के लिए उपदेश देना।

(ब) विश्रान्तिजननम्-व्यक्ति एवं समाज को शक्ति प्रदान करना।

(स) विनोदजननम्-व्यक्ति एवं समाज का मनोरंजन करना।

2. छात्रों को उचित आरोह-अवरोह तथा उचित हाव-भाव के साथ नाटक का अभिनय करने की योग्यता का विकास करना।

3. उन्हें अभिनय कला से अवगत कराना।

4. उन्हें मानव स्वभाव एवं मानव चरित्र से परिचित कराना ।

5. छात्रों के भाषा ज्ञान में वृद्धि करना ।

6. उन्हें अवसरानुकूल आचरण करना एवं वार्तालाप करना सिखाना ।

7. उनकी निरीक्षण, कल्पना, चिन्तन एवं विवेचन शक्तियों का विकास करना।

8. छात्रों का मनोरंजन करना ।

9. उनमें उच्च सामाजिक आचरण करने की अभिवृति का निर्माण करना।

10 उन्हें भावाभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करना तथा मानवोचित व्यवहार का शिक्षण देना ।

11. उनमें संस्कृत साहित्य के अध्ययन के लिए रूचि उत्पन्न करना।

12. उन्हें अपने देश और अन्य देशों की संस्कृति से अवगत कराना।

13. उन्हें किसी देश अथवा समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक मान्यताओं एवं परिस्थितियों से अवगत कराना।

14. उन्हें आत्म प्रकाशन एवं आत्माभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करना आदि।

7.7.2. नाटक शिक्षण की विधियाँ :-

1. आदर्श नाट्यविधि :- इसमें अध्यापक स्वयं नाटक के सभी पात्रों का वाचिक अभिनय करता है। वह नाटक के संवादों को इस ढंग से पढ़ता है कि प्रत्येक चरित्र का आभास छात्रों को हो जाता है। उसका स्वर भावानुकूल एवं पात्रानुकूल होता है।

गुण :-

(1) आदर्श नाट्य विधि को प्रत्येक परिस्थिति में अपनाया जा सकता है।

(2) इसमें छात्रों को भावानुकूल एवं पात्रानुकूल वाचन सुनने का अवसर मिल जाता है।

(3) यह प्राथमिक स्तर के लिये उपयुक्त है क्योंकि नाटक सरल एवं लघु होते हैं।

दोष :-

(1) इसमें छात्र मूक श्रोता रहते हैं। अतः निष्क्रिय रहते हैं।

(2) इसमें कठिन शब्दों के अर्थ तथा सन्दर्भों की व्याख्या नहीं की जाती। इसके कई बार उन पर वाछित प्रभाव नहीं पड़ता।

(3) इसमें नाटक के तत्त्वों पर व्याख्या के लिये कोई स्थान नहीं है।

2. व्याख्या विधि :- इसमें अध्यापक द्वारा नाटक की कथा, पात्र, कथोपकथन, भाषा-शैली आदि की व्याख्या की जाती है। यह व्याख्या कथन व प्रश्नोत्तर द्वारा की जाती है। नाटक के गुण-दोषों को सामने लाया जाता है।

गुण :-

(1) व्याख्या विधि में नाटक के गुण-दोषों पर प्रकाश डाला जाता है।

(2) इस विधि के द्वारा नाटक की कथा का संदेश छात्रों तक भली-भाँति पहुँच जाता है क्योंकि इसमें व्याख्या की जाती है।

(3) यह विधि नाटक की कथा, भाषा-शैली आदि का समुचित व्याख्या करने में सहायक है।

दोष :-

(1) इसमें छात्र निष्क्रिय रहते हैं।

(2) इसमें शिक्षण नीरस हो जाता है।

(3) इसमें कठिन शब्दों तथा सन्दर्भों की व्याख्या पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(4) इसका प्रयोग केवल उच्च कक्षाओं में ही हो सकता है।

रंगमंच अभिनय विधि :- इसमें छात्र पूरे नाटक को वास्तविक रंगमंच पर प्रस्तुत करते है।

गुण :-

(1) उस विधि में छात्रों का वास्तविक रंगमंच पर नाटक का अभिनय करने का अवसर मिलता है।

(2) इसमें जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाटक लिखा जाता है, उसकी पूर्ति होती है।

(3) इसमें रंगमंच की तैयारी, नाटक का निर्देशन, संचालन आदि करने के अवसर मिलते हैं।

दोष :-

(1) इसमें समय, शक्ति तथा धन तीनों की अधिक आवश्यकता होती है।

(2) विद्यालयों में इतने साधन उपलब्ध नहीं है कि नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सके।

कक्षाभिनय विधि :- इसमें अध्यापक छात्रों को नाटक की भूमिकाएँ देता है और छात्र अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार नाटक का वाचिक व कायिक अभिनय करते हैं।

गुण :-

(1) इस विधि से नाटक शिक्षण रोचक बन जाता है।

(2) इसमें छात्रों को भावानुकूल अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है तथा व्यक्तित्व का विकास होता है।

(3) इसमें रंगमंच व्यवस्था, साज-सज्जा, प्रकाश-व्यवस्था, ध्वनि-व्यवस्था आदि पर समय व धन की बचत होती है।

दोष :-

(1) यह रंगमंचं अभिनय प्रणाली की तुलना में कम प्रभावशाली है।

(2) इसमें नाटक के अन्य उद्देश्यों तथा नाटक की तात्विक समीक्षा तथा शब्दों व सन्दर्भों की व्याख्या आदि की उपेक्षा की जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक विधि के अपने कुछ गुणदोष हैं। कोई एक विधि नाटक के लिए सर्वोत्तम नहीं है। ऐसी स्थिति में इन सभी विधियों का समवाय कर नाटक शिक्षण किया जाता है तो नाटक शिक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति होगी।

7.7.3. नाटक शिक्षण के सोपान :-

1. सामान्य उद्देश्य :- सर्वप्रथम अध्यापक नाटक-शिक्षण के सामान्य उद्देश्य निर्धारित करेगा।

2. विशिष्ट उद्देश्य :- तत्पश्चात् अध्यापक नाटक शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य को निर्धारित करेगा।

3. सहायक सामग्री :- इसमें पाठ्यपुस्तक को सहायक सामग्री के रूप में प्रयोग किया जाता है।

4. पूर्व ज्ञान :- अध्यापक नाटक-शिक्षण आरम्भ करने से पूर्व छात्रों के नाटक से सम्बन्धित ज्ञान का परीक्षण करेगा।

5. प्रस्तावना :- इसके अन्तर्गत अध्यापक छात्रों के पूर्व पठित पाठ का नवीन पाठ से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उनसे कुछ प्रश्न पूछेगा।

6. उद्देश्य कथन :- प्रस्तावना के बाद अध्यापक छात्रों को कहेगा कि आज अमुक नाटक को पढ़ेंगें जिससे अमुक शिक्षा प्राप्त होती है।

7. प्रस्तुतीकरण :- इसके अन्तर्गत अध्यापक कक्षा में नाटक को पढ़ाना प्रारम्भ करेगा।

8. पाठ्याभिनय :- अध्यापक सम्बन्धित पाठ को यथा सम्भव अभिनय के साथ-2 पढ़ाएगा। वह छात्रों को यह भी बताएगा कि किस वाक्य को किस प्रकार कहना है।

9. मूल्यांकन :- इसमें अध्यापक पाठ के तत्काल बाद छात्रों के ज्ञान का विभिन्न प्रश्न पूछकर मूल्यांकन करेगा।

10. गृहकार्य :- अध्यापक छात्रों को पाठ से सम्बन्धित गृह कार्य भी देगा।जिससे छात्र घर पर पढ़ने का क्रम जारी रखेंगे।

7.8. सारांश :-

इस पाठ को पढ़कर आप जान चुके होगें कि संस्कृत साहित्य में कथा या कहानी या नाटक विधाओं को किन-किन शिक्षण विधियों से पढ़ाया जा सकता है। इन विधाओं को पढ़ाने के क्या-क्या उद्देश्य हैं और संस्कृत शिक्षण में इनका क्या महत्व है?

कथा/कहानी और नाटक की प्रयोजना के लिए कौन-कौन से सोपान होते हैं। इन सब से परिचित हो चुके होंगे।

7.9. कठिन शब्दावलीः-

अपरीक्षित कारक - बिना परीक्षा के कार्य करना, लब्धप्रणाश - प्राप्त का नाश, दरूहता - कठिन होने की अवस्था / विकट परिस्थिति।

7.10. स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :-

1. कहानी या शिक्षण की विधियां - (i) संवाद विधि, (ii) कक्षाभिनय विधि
2. नाटक शिक्षण की विधियां - (i) व्याख्या विधि, (ii) आदर्श नाट्य विधि

7.11 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थः-

1. उपाध्यक्ष, आचार्य बलदेव, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, शारदा संहयान, रवीन्द्रपुरी, दुर्गामुण्ड, वाराणसी-5
2. मित्तल, डॉ सन्तोष, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।
3. मिश्र, चिरंजीव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, भारतीय संस्कृत भवन, माई हीरा गेट, जलन्धर।
4. मिश्र, डॉ सन्त कुमार, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।
5. वर्मा, डॉ. पूर्णसिंह, संस्कृत-शिक्षण, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी, हरियाणा।

7.12 अभ्यास प्रश्न :-

1. संस्कृत कहानी का वर्णन करते हुए संस्कृत कथाओं के महत्व पर प्रकाश डालिए।

2. कहानी शिक्षण की प्रविधियों का वर्णन करते हुए कथा शिक्षण के सोपानों का भी वर्णन करें।

3. नाटय साहित्य का महत्व का वर्णन कीजिए ।

4. नाटक शिक्षण के उद्देश्य लिखते हुए शिक्षण की विधियों का विवेचन कीजिए।

पाठ-8

संस्कृत व्याकरण एवं शिक्षण की विधियाँ

संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 संस्कृत व्याकरण एवं महत्व

8.4 व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य एवं शिक्षण की विधियाँ

8.5 स्वयं आकलन प्रश्न

8.6 व्याकरण शिक्षण की वर्तमान स्थिति

8.7 सारांश

8.8 सारांश

8.9 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

8.10 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ

8.11 अभ्यास प्रश्न

8.1 उद्देश्य :- पाठ के अन्त में शिक्षार्थी :-

1. संस्कृत व्याकरण की व्याख्या देने में सक्षम होंगे।
2. संस्कृत व्याकरण के उद्देश्य को जानने के सक्षम होंगे ।
3. संस्कृत शिक्षण की विधियों से परिचित होंगे।
4. व्याकरण शिक्षण की वर्तमान स्थिति से परिचित होंगे।

8.2 प्रस्तावना :-

मानव विचारों की अभिव्यक्ति को शुद्ध, परिष्कृत, परिमार्जित व नियमानुसार स्वरूप देने का कार्य भाषा विशेष का व्याकरण करता है। संस्कृत भाषा के व्याकरण के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा बहुत प्राचीन है। इस पाठ के अन्तर्गत शिक्षार्थी व्याकरण का महत्व और व्याकरण-शिक्षण की विधियों से परिचित होने के साथ-साथ वर्तमान में व्याकरण की स्थिति से भी परिचित होंगे।

8.3 संस्कृत व्याकरण एवं महत्व :-

संस्कृत व्याकरण की शिक्षण विधि पर विचार करने से पूर्व संस्कृत व्याकरण के लक्षण एवं स्वरूप पर दृष्टि डालना आवश्यक है। भारत वर्ष में व्याकरण शिक्षण की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन काल में व्याकरण को एक शास्त्र के रूप में रखा गया है। इसलिए व्याकरण शास्त्र की छः वेदांगों में गणना की जाती है। व्याकरण वेद को समझने के लिए परमोपयोगी है।

छः वेदांग ये हैं :- शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, व्याकरण, निरुक्त तथा छन्दशास्त्र।

इन सभी में व्याकरण शास्त्र को प्रधानता दी जाती है। जैसे :-

'प्रधान च षडस्वंगेषु व्याकरणम्'

'मुखं व्याकरणं स्मृतम्।'

'व्याकरण' शब्द की व्युत्पत्ति वि+आ+कृ(धातु)+ल्युट् प्रत्यय के योग से हुई है अर्थात् 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेनति व्याकरणम्।' जिसके द्वारा शब्द का प्रकृति प्रत्यय विधान बनाकर व्युत्पादन किया जाए उसे व्याकरण कहा जाता है।

इसे साधारण भाषा में इस प्रकार भी कहा जा सकता है- 'व्याकरण वह शास्त्र है जिसके द्वारा भाषा में शुद्ध अशुद्ध शब्दों का ज्ञान हो सके' व्याकरण शब्दानुशासन भी कहा जाता है।

8.3.1 संस्कृत व्याकरण परम्परा :-

ऋक् तन्त्र में उल्लेख प्राप्त होता है कि ब्रहमा ने आचार्य बृहस्पति को व्याकरण का ज्ञान दिया। बृहस्पति ने इन्द्र को, इन्द्र ने ऋषि भारद्वाज, भारद्वाज ने ऋषियों और ऋषियों ने ब्राह्मणों को इसका ज्ञान प्रदान किया। उन्होंने ऋग्वेद भाष्य के उपोदघात मे लिखा है - 'ते देवा इन्द्रमबुवन्।' यहाँ कहा गया है कि प्राचीन काल में संस्कृत अव्याकृत थी, अतः देवो ने इन्द्र से संस्कृत के व्याकरण के निर्माण के लिए प्रार्थना की। उनके निवेदन को स्वीकार कर इन्द्र ने व्याकरण की रचना की । तब इन्द्र ने व्याकरण को संयत एवं परिमार्जित करने के लिए पदों के प्रकृति, प्रत्यय का विभाग किया। वस्तुतः व्याकरण शास्त्र के आदि प्रवक्ता तो ब्रह्मा ही थे । परन्तु भारतवर्ष में व्याकरण शास्त्र की दो प्रमुख परम्पराएँ रही है -ऐन्द्र तथा माहेश्वर। इन्द्र की शिष्य

परम्परा में ऐन्द्र प्रणाली तथा माहेश्वर की शिष्य परम्परा में माहेश्वर प्रणाली प्रचलित थी। आचार्य पाणिनि भी माहेश्वर व्याकरण के प्रवक्ता थे।

इन्द्र के अनेक शिष्यों का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें भारद्वाज, धन्वन्तरि, कश्यप, वसिष्ठ, भृगु तथा अत्रि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। स्वयं पाणिनि ने दस वैयाकरणों का नामोल्लेख किया है। आपिशलि प्रमुख वैयाकरण थे। इसके अतिरिक्त कश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, शौनक एवं स्फोटायन का नाम आदर सहित लिया जाता है। काशिका के अनुसार व्याघ्रपाद और माध्यन्दिन भी वैयाकरण थे। चरक संहिता में शौनक का नाम भी आया है। गौतम का उल्लेख महाभाष्यकार ने किया है। पतंजलि ने व्याडि की भी प्रशंसा की है। विश्व का प्राचीनतम व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी है जिसमें 3974सूत्र 32 पाद तथा आठ अध्याय है।

पाणिनि व्याकरण की विशेषताएँ इस प्रकार :-

1. सत्र शैली का चूडान्त निदर्शन।

2. प्रकृतिप्रत्यय कल्पना का आश्चर्यजनक उदाहरण है।

3. भाषा की इकाई के रूप में वाक्य की स्थापना ।

4. व्युत्पत्ति सिद्धान्त की मौलिकता।

5. श्रेण्य एवं वैदिक उभयविध शब्दों की व्युत्पत्ति ।

6. संस्कृत में वाक्यविन्यास तथा व्याख्या।

7. वैज्ञानिक प्रणाली का अनुसरण

8. सम्पूर्ण भारत के क्षेत्रीय रूपों का यथासम्भव समावेश।

वस्तुतः पाणिनी की अष्टाध्यायी प्राच्य तथा प्रतीच्य दोनों प्रकार के विद्वानों के लिए समान रूपेण आदर्श सिद्ध होती है।

मैक्समूलर के शब्दों मे - ''किसी भी भाषा में सर्वागपूर्ण व्याकरण नहीं पाया जाता, जो अष्टाध्यायी के आठ अध्यायों में वर्णित व्याकरण नियमों की आश्चर्यजनक व्यवस्था की समकक्षता कर सके'' आचार्य पाणिनि के पश्चात् व्याकरण जगत में मौलिक रचना तो नहीं हुई परन्तु अष्यध्यायी पर टीकाएँ तथा भाष्य ग्रन्थों की रचना होती रही। पतंजलि और कात्यायन का नाम उल्लेखनीय है। पाणिनी, कात्यायन तथा पतंजलि को मुनित्रय कहा जाता है।

महर्षि पतंजलि ने भाग का दार्शनिक विश्लेष प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ध्वनि क्या है? वाक्य के विभिन्न अंग कौन-कौन से है? शब्द और अर्थ का क्या सम्बन्ध है? पतंजलि ने महाभाष्य शैली को जन्म दिया तथा अध्ययी पर महाभाष्य लिखा। कात्यायन रचित वार्तिकों का परीक्षण करते हुए पाणिनि को समर्थित किया है। उन्होंने प्रचलित भाषा का प्रयोग कर व्याकरण जैसे नीरज विषय को अत्यन्त बोधगम्य व्याख्या की है।

आचार्य पाणीन के उत्तर काल में भर्तृहरि का वाक्यपदीय नागेशभट्ट का उद्योत, भट्टोजी दीक्षित की वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी आदि प्रौढ़ ग्रन्थों की रचना हुई है। इसके अतिरिक्त जयादित्य वामनकृत काशिका ग्रन्थ भी अध्यायी की प्रौढ़तम टीका है।

भारत वर्ष में पाणिनि से इतर व्याकरण परम्परा भी रही हैं। चन्द्रगोमिका, चान्द्रव्याकरण, जैनेन्द्र का जैनेन्द्रव्याकरण, भोज का सरस्वती काण्ठाभरण, हेमचन्द्र

सुरि का हेमशब्दानुशासन तथा बोपदेव का मुग्धबोध आदि मौलिक व्याकरण ग्रन्थों के रूप में वर्णनीय है। इस प्रकार संस्कृत व्याकरण की परम्परा बड़ी प्राचीन रही है। तदनुरूप व्याकरण शिक्षण की विधि में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं।

8.3.2 संस्कृत व्याकरण का महत्व :-

व्याकरण शास्त्र के प्राचीन आचार्य भाषा के शिक्षण के लिए व्याकरण की अनिवार्यता पर बल देते है। उनके अनुसार शिशु वस्तुतः व्याकरण की शिक्षा के बिना भाषा के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता । व्याकरण द्वारा भाषा को व्यवस्थित किया जाता है। भाषा का प्रवाह जन-साधारण द्वारा व्यवहृत होता है, व्याकरण उस प्रवाह को व्यवस्थित करता है। वह प्रचलित भाषा के नियमों को खोज निकालता है। डा0 स्वीट ने व्याकरण को भाषा का विश्लेषक कहा है। उनके अनुसार व्याकरण के द्वारा भाषा की रचना का ज्ञान होता है। वस्तुतः वाक्य रचना का आधार व्याकरण ही हैं। शब्द रचना भी व्याकरण के द्वारा होती है।

व्याकरण की अनिवार्यता के पक्षधर विद्वानों का मानना है कि व्याकरण की शिक्षा के बिना भाषा की शिक्षा सर्वथा अपूर्ण रहती है। व्याकरण अध्ययन में जो प्रशिक्षण मिलता है, उसका स्थानान्तर जीवन के अन्य पक्षों में भी हो सकता है। व्याकरण भाषा के रूप को सुगठित बनाता है। व्याकरण भाषा में अशुद्ध शब्दों के प्रवेश को रोकता है। व्याकरण के शासन के अभाव में भाषा उच्छृंखल हो जाती है। छात्र मातृभाषा को घर के वातावरण से सीखते हैं। इसलिए उन्हें शिक्षाकाल में मातृभाषा का व्याकरण पढ़ने की आवश्यकता होती है। इसका कारण स्पष्ट है कि बोलचाल की भाषा पूर्णतः संयत नहीं होती है। अतः भाषा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए

व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। व्याकरण के महत्व को दर्शाने वाली एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है :-

यद्यपि बहु नाधीपे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।

स्वजनः श्वजनो माभूत सकलं शकलं सकृच्छकृत् ।

इससे स्पष्ट है कि शुद्धोच्चारण के लिए भी व्याकरण का पढ़ना अत्यावश्यक है। व्याकरण के आलोचक भाषा में कौशल प्राप्त करने के लिए व्याकरण की अनिवार्यता पर प्रश्न चिहृन लगा देते हैं। उनके अनुसार यदि भाषा को मौखिक विधि से पढ़ाया जाए और इसकी रचना का अभ्यास कराया जाए तो व्याकरण शिक्षा की आवश्यकता नहीं रहती । अतः व्याकरण के झंझट से मुक्त होकर शुद्ध रूप का बार-बार अभ्यास कराया जाना चाहिए।

आलोचकों का यह भी मत है कि व्याकरण बड़ा दुरुह, नीरज तथा शुष्क विषय है। बाल्यावस्था में कोमल बुद्धि छात्रों के लिए व्याकरण एक क्लिष्ट साधन है। व्याकरण की शिक्षा के लिए अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व बुद्धि की आवश्यकता होती है। मनोविज्ञान के विद्वानों की मान्यता है कि भाषा केवल अनुकरण से आती है। व्याकरण शिक्षण के सम्बन्ध में तीन मत प्रचलित है :-

प्रथम मत – इस मत के समर्थक व्याकरण की औपचारिक शिक्षा पर बल देते है उन का मानना है कि इससे मानसिक अनुशासन मिलता है। सूत्रों को कण्ठस्थ करने से-स्मरण शक्ति, तक्रशक्ति, निरीक्षण शक्ति आदि का विकास होता है, यह सर्जनात्मक उत्पन्न करने में भी सहायक होती है। भाषा पर पूर्ण अधिकार होता है।

द्वितीयमत – इस मत के समर्थक कहते हैं कि व्याकरण के शिक्षण की आवश्यकता नहीं है, अपितु भाषा को मौखिक विधि से अथवा संरचनात्मक उपागम से यदि पढ़ाया जाए तो बार-बार बोलने, सुनने, लिखने तथा पढ़ने से भाषा स्वयं आ जाती है। भाषा व्याकरण से पहले सीखी जाती है।

तृतीयमत – इस मत के समर्थको ने दोनों मतों के मध्यम मार्ग का अनुसरण किया है। उनके अनुसार व्याकरण का ज्ञान देना आवश्यक है किन्तु उसके शिक्षण को रोचक बनाया जाए।

उपर्युक्त तीनों मतों के अनुसार कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा का ज्ञान तब तक असम्भव है, जब तक व्याकरण न पढ़ाया जाए। व्याकरण को नियमित रूप से पढ़ाया जाना आवश्यक है परन्तु व्याकरण के स्वतन्त्र अध्ययन पर अधिक बल देना ठीक नहीं है। भाषा और व्याकरण एक-दूसरे के पूरक है। अतः इन दोनों को शिक्षण साथ-साथ चलना चाहिए।

8.3.3 संस्कृत व्याकरण की विशेषताएँ :-

आचार्य पाणिनि का व्याकरण एक सर्वांगपूर्ण तथा वैज्ञानिक व्याकरण है। यह अपने ढंग का अनूठा ग्रन्थ है। इसे अष्राध्यायी के नाम से जाना जाता है। इसमें भाषा का इतनी सूक्ष्मता से विश्लेषण किया गया कि प्रत्येक नियम, मौलिक प्रतीत होता है। भारत के विद्वान ही नहीं, पाश्चात्य विद्वान् भी महर्षि पाणिनि की प्रतिभा को देखकर अचम्भित है। यह ग्रन्थ केवल व्याकरण को नियमों का ग्रन्थ न होकर भाषा विज्ञान का भी अनूठा ग्रन्थ हैं । इसकी रचना सूत्रशैली में हुई हैं। इस तरह

संस्कृत-व्याकरण रचना की एक समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है। यहाँ संस्कृत व्याकरण की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित रुप से दृष्टव्य है :-

प्रत्याहार का अर्थ वर्णों का संक्षेप में कथन है। पाणिनि ने 14 माहेश्वर सूत्र दिये, जिनमें से 42 प्रत्याहार बनते हैं।

धातुओं का वर्गीकरण भी गणों के रूप में प्राप्त होता है। समस्त धातुओं को 10 गणों में विभक्त किया गया है। एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार धातुएँ तीन प्रकार की है - (1) आत्मनेपदी (2) परस्मैपदी (3) उभयपदी । गणों की रचना का आधार ध्वनि है तथा धातुओं का वर्गीकरण गणों के रूप में किया जाता है। इस प्रकार इनका भी आधार है। अतः केवल इन्हीं का ज्ञान प्राप्त करके संस्कृत की वाक्य-रचना सरलता से की जा सकती है।

संस्कृत में सन्धि ज्ञान अनिवार्य है, इसके बिना सूत्र या मन्त्रों का सही अर्थ नहीं प्राप्त किया जा सकता। संस्कृत में सन्धि वैकल्पिक होती है, किन्तु धातु और उपसर्ग में सन्धि नित्य होती है। अतएव छात्रों को सन्धि का ज्ञान अवश्य देना चाहिए। ये स्वर, व्यंजन, विसर्ग होती है।

सन्धि की तरह समास भी आवश्यक है। संस्कृत में प्रमुख रूप से चार प्रकार के समास - द्वन्द्व, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, अव्ययीभाव होते हैं। कर्मधारय और द्विगु तत्पुरुष के ही भेद माने जाते हैं।

संस्कृत में लिंग का सम्बन्ध शब्दों से होता है, न कि शब्दों से व्यक्त होने वाले पदार्थों में । अतः संस्कृत में लिंग का निर्धारण कठिनाई से होता है। संस्कृत में तीन लिंग होते हैं- पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग । संस्कृत में लिंग का आधार प्रत्यय है।

संस्कृत में तीन वचन - एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन होते हैं जबकि हिन्दी व अंग्रेजी में दो ही वचन - एकवचन, बहुवचन होते हैं।

संस्कृत में 6 कारक होते है। सम्बन्ध का क्रिया से सीधा सम्बन्ध न होने के कारण कारक नही माना जाता तथा सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य विभक्ति नहीं लगती, इसलिए संस्कृत में इन्हें विभक्ति माना जाता है।

संस्कृत में तीन पुरुष - प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष होते हैं। संस्कृत भाषा में नाम शब्दों के साथ जो प्रत्यय जुड़ते हैं, उसके सात विभाग हैं। प्रत्येक विभाग को विभक्ति कहा जाता है। ये विभक्तियाँ सात हैं।

संस्कृत में अनिवार्य रूप से विशेष के अनुसार ही विशेषण का लिंग व वचन निर्धारित होता है। अंग्रेजी में सभी लिंगों के साथ विशेषण लगता है, जबकि हिन्दी भाषा में यह वैकल्पिक है।

विभिन्न क्रियाओं का ज्ञान कराते समय काल का ज्ञान होना आवश्यक है। संस्कृत में 10 काल या लकार माने जाते हैं। इनमें से केवल पांच लकारों-लट्, लोट, लृट, लिङ् एवं लङ का ज्ञान करा देना पर्याप्त होता है।

उपसर्गो के योग से धातुओं के अर्थ बदल जाते हैं, इसलिए संस्कृत में इनका बहुत महत्व है। इसे निर्बद्ध अव्यय भी कहा जाता है क्योंकि इनका अपना कोई अर्थ नहीं होता है। इनकी संख्या 22 है।

अव्यय स्वतंन्त्र रूप से प्रयुक्त होते हैं। ये सभी विभक्तियों, लिगों व वचनों में समान होते हैं। जैसे- अद्य, अघुमा, इव, अत्र आदि।

व्याकरण में अपना ध्वनिविचार, शब्दविचार, अर्थविचार तथा वाक्यविचार होता है।

8.3.3. संस्कृत व्याकरण की विशेषता :-

आचार्य पाणिनि का व्याकरण एक सवागपूर्ण तथा वैज्ञानिक व्याकरण है। यह अपने ढंग का अनूठा ग्रन्थ है। इसे 'अष्टाध्यायी' के नाम से जाना जाता है। इसमें भाषा का इतनी सूक्ष्मता से विश्लेषण किया गया है कि प्रत्येक नियम मौलिक प्रतीत होता है। भारत के विद्वान ही नहीं, पश्चात्य् विद्वान की महार्ष पाणिनि को प्रतिभा को देखकर अचम्भित है। यह ग्रन्थ केवल व्याकरण के नियमों का ग्रन्थ न होकर भाषा विज्ञान का भी अनूठा ग्रन्थ है। इसकी रचना सूत्र शैली से हुई है। पाणिनि ने अपने ग्रन्थ की पूर्णता के लिए, गणपाठ, धातुपाठ तथा लिंगानुशासन की भी रचना है। गणपाठ में समान कार्य वाले अनेक शब्दों को एक गण में एकत्रित किया जाता है। 'काशिका' में यह गणपाठ विस्तृत रूपेण प्राप्त होता है। धातुओं का वर्गीकरण भी गणों के रूप में प्राप्त होता है। समस्त धातुओं को 10 गणों में विभक्त किया गया है।

संस्कृत भाषा का अपना ध्वनिविचार, शब्दविचार, अर्थ विचार तथा वाक्यविचार है। इन सभी का विचार संसार में सर्वप्रथम संस्कृत भाषा मे ही प्राप्त होतो है। संस्कृत भाषा में संधि तथा समास बहुत महत्वपूर्ण है। सन्धि कोई कृत्रिम प्रक्रिया नहीं है। हम बोलने में सदैव सन्धि करते हैं। सभी भाषाओं में ध्वनियों का मेल प्राप्त होता है। सन्धि के बिना ध्वनियों का प्रवाहयुक्त उच्चारण सम्भव नहीं होता है। अतः भाषा में सन्धि अनिवार्य है। समास भी संस्कृत की विशेषता है। संस्कृत एक संश्लिष्ट भाषा है। इसमें पद-पद पर समान की आवश्यकता होती है। अतः छात्रों को समास का ज्ञान अवश्य कराया जाना चाहिए।

संस्कृत में संज्ञा शब्दों का लिंग निर्धारण प्रत्यय के आधार पर होता हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत में लिंग लोकाश्रित भी है। साहित्य के सतत् अभ्यास से ही लिंग का ज्ञान सम्भव होता है। संस्कृत में तीन वचन होते हैं। यहाँ, एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन का प्रयोग होता है। संस्कृत के विद्वानों ने अनुभव किया है कि संसार में एक तथा अनेक के मध्य द्विवचन की कड़ी की अत्यधिक प्रबल है जिसके दर्शन द्वन्द्वों में प्रायः देखे जाते हैं। जैसे- माता-पिता, भाई-बहन, दिन-रात, उपकार - अपकार आदि। अंतः संस्कृत के आचार्यों ने इस प्रकार की आवश्यकता के लिए द्विवचन का प्रचलन किया है।

कारक प्रत्येक भाषा में होते हैं। संस्कृत में छः कारक माने जाते हैं। संस्कृत में सम्बंध को कारक नहीं माना जाता। कारक एवं वचन के आधार पर ही प्रत्येक शब्द में विकार होता है जिसे शब्द रूप कहा जाता हो। संज्ञा शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्दों को सर्वनाम कहते हैं। विशेषण शब्दों के प्रयोग की ओर की छात्रों का ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए। संस्कृत में विशेष्य के अनुसार ही विशेषण का लिंग तथा वचन होता है। संस्कृत में उपसर्ग भी आवश्यक है। इनकी संख्या 22 हैं। उपसर्गों के योग से धातुओं का अर्थ प्रायः बदल जाता है।

8.4. व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य एवं शिक्षण की विधियाँ :-

8.4.1 व्याकरण शिक्षण के उद्देश्य :- संस्कृत शिक्षण के सभी स्तरों की दृष्टि से संस्कृत व्याकरण शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य है :-

1. छात्रों को संस्कृत भाषा के ध्वनि तत्त्वों से परिचित कराना चाहिए।

2. विभिन्न शब्दरूपों तथा धातुरुपों का ज्ञान कराना चाहिए।

3. शुद्ध वाक्य रचना की योग्यता उत्पन्न करना।

4. छात्रों में तर्कशक्ति व निरीक्षण शक्ति का विकास किया जाना चाहिए।

5. भाषा के शुद्ध रूप व गुणदोष को पहचानने की क्षमता प्रदान करना, जिससे वे शुद्ध रूप में बोल पढ़, लिख व समझ सके।

6. उनके शब्दकोश में वृद्धि करना।

7. व्याकरण के ज्ञान द्वारा छात्रों में संस्कृत साहित्य के प्रति रुचि जागृत करना।

8. अर्थग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना।

9. संस्कृत रचना शक्ति का छात्रों में विकास करना।

8.4.2. व्याकरण शिक्षण की विधियाँ :-

व्याकरण शिक्षण को रोचक, आकर्षक, सुगाह्य बनाने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग प्राचीनकाल से किया जाता रहा है। वर्तमान मनोविज्ञान शास्त्र ने व्याकरण के पाठ को रुचिकर बनाने पर बल दिया है। संस्कृत व्याकरण की शिक्षा को रोचक बनाया जाना असम्भव तो नहीं परन्तु कठिन अवश्य है। इसलिए व्याकरण शिक्षण में निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है :-

1. सूत्र विधि या कण्ठस्थीकरण विधि :- यह विधि संस्कृत व्याकरण शिक्षण की प्राचीनतम विधि है। इसमें व्याकरण के नियमों को सूत्ररूप में कण्ठस्थ करा दिया जाता था। इन कण्ठस्थ सूत्रों के आधार पर छात्र भाषा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस विधि में शिक्षण सूत्र - 'सामान्य से विशेष की ओर का अनुसरण किया जाता है। अर्थात् नियम से उदाहरण की ओर चलती है। सूत्रों का मुख्य उद्देश्य 'गागर में

सागर' भरना था क्योंकि सूत्र में कण्ठस्थ की गई संक्षिप्त विषयवस्तु से छात्र उसमें निहित बहुत विस्तृत ज्ञान सुविधा से प्राप्त कर लेता था।

दोष :-

1. यह विधि मनोविज्ञान के अनुकूल नहीं है।

2. इसमें अत्याधिक परिश्रम करना पड़ता है।

3. कोमलमति छात्रों के लिए सूत्र शैली को समझना कठिन कार्य है। परिपक्व बुद्धि वाले प्रौढ़ छात्र ही इस विधि के द्वारा भाषा में अधिकार प्राप्त करते है।

4. इसकी समस्त परिभाषाएँ अरोचक है।

2. आगमन विधि :- इस विधि में 'उदाहरणों से नियम की ओर' इस शिक्षण सूत्र का अनुसरण किया जाता है। पाणिनि ने वैज्ञानिक ढंग से आगमन विधि के आधार पर ही सूत्रों को क्रमबद्ध ढंग सें प्रस्तुत किया है। इसमें उदाहरणों तथा दृष्टान्तों को सुव्यवस्थित ढंग से क्रमानुसार प्रस्तुत किया जाता है ताकि किसी नियम की स्थापना हो सके। यह विधि वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक है। यहाँ छात्र ज्ञात से अज्ञात की ओर तथा सरल से कठिन की ओर जाते हैं। इस विधि से छात्र क्रियाशील तथा तक्रशील बनते हैं।

दोष :-

1. विधि की कई सीमाएँ हैं।

2. यह केवल वहाँ उपयोगी होती है जहाँ पर नियम को कैसे और किसलिए समझना इष्ट हो। जहाँ शिक्षण प्रारम्भीक अवस्था मे हो तथा नियम का विश्लेषण करना अभीष्ट है।

3. आगमन विधि समय साध्य है।

3. निगमन विधि – पतंजलि ने व्याकरण शिक्षण के लिए निगमन विधि को सर्वाधिक उपयुक्त माना है। इसमें पहले नियम को बताया जाता है। उसके बाद उसका उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार व्याकरण का नियम छात्रों की बुद्धि में स्थिर हो जाता है। इस विधि के अनुसार अधिक रटन्त भी नहीं करना पड़ता है। इसमें तीन सूत्र प्रयोग किए जाते हैं :-

1. सामान्य से विशिष्ट की ओर।

2. सूक्ष्म से स्थूल की ओर।

3. नियम से उदाहरण की ओर।

संस्कृत भाषा शिक्षण में व्याकरण इसी विधि से पढ़ाई जाती है।

4. अत्याक्रति विधि :- इस विधि में व्याकरण की शिक्षा अलग से नहीं दी जाती बल्कि भाषा की शिक्षा के साथ ही साथ नियमों का संकत किए बिना उसके शुद्ध प्रयोग को बोलकर पढ़कर, लिखकर तथा सुनकर समझने की योग्यता छात्रों में उत्पन्न की जाती है। जब मातृभाषा बिना व्याकरण के ज्ञान के केवल शुद्ध प्रयोग द्वारा सीखी जा सकती है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा भी सीखी जा सकती है। इस विधि का प्रयोग प्राथमिक स्तर पर किया जा जकता है। जब संस्कृत मौखिक

विधिद्वारा सिखाई जाती है किन्तु माध्यमिक, उच्च माध्यमिक तथा उच्च स्तर पर व्याकरण का क्रमबद्ध औपचारिक ज्ञान देना आवश्यक है जिससे छात्रों में भाषा के शुद्ध प्रयोग के प्रति आत्मविश्वास उत्पन्न हो सके।

दोष :-

1. इस विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि इस प्रकार व्याकरण के हजारों नियमों का बोध नहीं हो सकता।

2. इस विधि से भाषा को सीखने के लिए अधिक श्रम एवं समय खर्च करना पड़ता है।

3. इस विधि का प्रयोग प्राथमिक स्तर पर किया जा जकता है।

4. यह विधि प्रौढ़ता पाने के लिए कारगर नहीं है।

5. पाठ्यपुस्तक विधि :- इस विधि के अन्तर्गत अलग-अलग कक्षाओं के लिए व्याकरण की अलग-अलग पुस्तक निश्चित होती है। इस विधि के अन्तर्गत कुछ शिक्षक छात्रों को व्याकरण की पुस्तक को भी पाठ्य पुस्तक की तरह पढ़ाते हैं तथा छात्र व्याकरण के नियमों को रटते हैं।

दोष :-

1. इससे किसी भी स्तर पर छात्र प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं कर सकता।

2. इसमें पीछे के विषय पर छात्र की पकड़ कमजोर हो जाती है।

6. सहयोग विधि :- इस विधि के पोषक भी व्याकरण के स्वतन्त्र रूप से आलोचक हैं। इसका इस विषय में अव्याकृति विधि के पोषक लोगों से अपेक्षकृत कम विरोध है। ये मध्यम मार्ग को अपनाते हैं। इनके अनुसार काव्य, साहित्य तथा रचना शिक्षा के साथ-साथ आवश्यकतानुसार व्याकरण शिक्षा भी दी जानी चाहिए। इस विधि के अनुसार साहित्य का पठन-पाठन करते समय व्याकरण को प्रासंगिक रूप में पढ़ाया जाता है।

दोष :-

1. इसमें शब्दों और वाक्य खण्डों की सम्पूर्ण व्याख्या नही हो सकती।

2. यह विधि उसी अवस्था में सफल हो सकती है जब व्याकरण के नियम को पहले पढ़ाया जाए।

3. यह विधि नया प्रारम्भ करने की अपेक्षा प्रयोग और पुनरावृत्ति के लिए उपयुक्त है।

4. इससे पाठ्य विषय, अनुवाद, तथा रचना की साधारण प्रक्रिया बाधित होती है।

7. प्रयोग विधि :- इसमें व्याकरण के सूत्रों तथा नियमों को बिना रटाए व्याकरण का ज्ञान कराया जाता है। इसमें छात्रों को शुद्ध भाषा के सुनने, अनुकरण करने तथा प्रयोग करने के द्वारा व्याकरण की शिक्षा दी जाती है। जिसे छात्रों को व्याकरण का व्यावहारिक ज्ञान हो जाता है और वे शुद्ध बोलना एवं लिखना सीख जाते हैं। इस प्रकार छात्र प्रयोग के आधार पर धीरे-धीरे नियमों को भी जान लेते हैं।

दोष :-

1. व्याकरण शिक्षण का यह एक लम्बा मार्ग है।

2. यह एक श्रमसाध्य मार्ग है।

3. इस विधि से भाषा में विशेष अधिकार प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

4. यह विधि प्रारम्भिक स्तर पर अवश्य लाभदायक है।

8.4.3. व्याकरण शिक्षण की सर्वश्रेष्ठ विधि :-

उपर्युक्त व्याकरण शिक्षण की अनेक विधियों की चर्चा की गई है परन्तु इन सभी विधियों में कोई एक विधि सर्वतः पूर्ण नहीं है परन्तु सभी विधियाँ दोषपूर्ण भी नहीं है। इसलिए सभी शिक्षण विधियों का मिला-जुला रूप अपनाना ही श्रेयस्कर है।

आगमन-निगमन विधि व्याकरण शिक्षण की सर्वश्रेष्ठ विधि है। इसे प्राचीन काल में पाणिनि तथा पतंजलि द्वारा भी क्रमशः स्वीकार किया गया था। वर्तमान काल में आगमन व निगमन विधि का एक साथ प्रयोग कर व्याकरण शिक्षण को सुग्राहय् बनाया जाता है।

आगमन में पहले उदाहरण प्रस्तुत करके नियम की ओर बढ़ा जाता है तथा विविध प्रश्नों को कर छात्रों से ही नियम निकलवाने का प्रयत्न किया जाता है। निगमन में पहले नियम प्रस्तुत करके विविध प्रयोगों तथा उदाहरणों के द्वारा उस नियम को पुष्टि की जाती है। प्रारम्भिक स्तर पर अव्याकृति विधि द्वारा व्याकरण का परोक्ष रूप से ज्ञान कराना चाहिए। प्रयोग विधि भी व्याकरण के व्यावहारिक ज्ञान के लिए उत्तम है। यह प्रणाली प्रारम्भिक एवं माध्यमिक स्तर पर उपयोगी है। व्याकरण के नियमों

का मौखिक तथा लिखित अभिव्यक्ति में भी किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय स्तर पर व्याकरण शिक्षण के लिए सूत्र विधि उपयुक्त रहती है क्योंकि इस स्तर पर छात्र प्रौढ़ हो जाते हैं। व्याकरण के गहन अध्ययन के लिए यह विधि अधिक उपयोगी है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृत व्याकरण की शिक्षा के लिए आगमन एवं निगमन विधि का मिश्रित रूप अपनाना चाहिए । यह विधि सर्वथा वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक है।

8.5 स्वयं आकलन प्रश्न :-

1. वेदागं कितने है?
2. व्याकरण शिक्षण की किन्ही दो विधियों के नाम बताइए।

8.6 व्याकरण शिक्षण की वर्तमान स्थिति :-

व्याकरण शिक्षण की प्रणालियाँ हैं, जिनमें पाठशाला प्रणाली तथा स्कूल-कालेज प्रणाली - ये दो ही प्रणालियाँ प्रमुख हैं। पाठशाला प्रणाली में व्याकरण शिक्षण पर अत्यधिक बल दिया जाता है। पाठशालाओं, गुरुकुलों तथा मठों में व्याकरण को एक प्रमुख विषय की तरह पढ़ाया जाता है। इस प्रणाली के पक्षधरों की मान्यता है कि व्याकरण की शिक्षा के बिना भाषाज्ञान अधूरा है। अतः यहाँ प्रारम्भिक स्तर से ही अष्टाध्यायी जैसे प्रौढ़ ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाने लगा।

स्कूल-कालेज प्रणाली में माध्यमिक स्तर पर संस्कृत व्याकरण का शिक्षण प्रारम्भ होता है। यह शिक्षण पाठ्यक्रम तक सीमित रहता है। इस प्रणाली में व्याकरण शिक्षण को अधिक स्थान प्राप्त नहीं है। माध्यमिक स्तर पर व्याकरण शिक्षण की पृथक् कोई

पुस्तक निर्धारित नहीं होती है। उच्च स्तर पर व्याकरण शिक्षण की पाठ्यपुस्तक अवश्य निर्धारित होती है।

हम कह सकते है कि स्कूल तथा कालेज में संस्कृत व्याकरण की शिक्षा सन्तोषजनक नहीं है। यहाँ व्याकरण शिक्षण केवल परीक्षा की दृष्टि से कराया जाता है। इस प्रणाली में छात्रों का ज्ञान तलस्पर्शी नहीं होता है। भले ही वे रटन्त के आधार पर परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर ले। उदाहरण स्वरूप छात्रों को सन्धि एवं समास के नियम तो याद रहते हैं परन्तु वे उनके प्रयोग में सक्षम होते हैं।

8.6.1 व्याकरण शिक्षण के शिक्षण :-

संस्कृत व्याकरण की शिक्षा निम्नलिखित सोपानों के आधार पर होनी चाहिए :-

1. प्रस्तावना :- इसके अन्तर्गत छात्रों के व्याकरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान की परीक्षा होनी चाहिए। छात्र व्याकरण सम्बन्धी कुछ पूर्व ज्ञान अवश्य रखते होंगे। यदि छात्रों को हलन्त रूप पढ़ाने हैं तो उनसे पूर्वपठित अजन्त शब्दों के रूप अवश्य पूछे जाएँ। पूर्व पठित परीक्षण के पश्चात् उद्देश्य कथन करने की आवश्यकता नहीं होती फिर भी यदि आवश्यक हो तो इस स्थल पर उद्देश्य कथन किया जा सकता है।

2. प्रस्तुतीकरण :- व्याकरण विषय को आगमन प्रणाली के द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए। प्रस्तुत प्रकरण सम्बन्धी उदाहरण भी प्रस्तुत किए जाने चाहिए। उदाहरणों की प्रकरणानुसार व्याख्या की जानी चाहिए। इस व्याख्या के आधार पर छात्रों में से प्रकरण सम्बन्धी नियम स्थापित किए जाने चाहिए। यदि छात्र ऐसा करने में असमर्थ हो तो अध्यापक की स्थापना करें। बताए गए नियम की पुष्टि के लिए निगमन

प्रणाली को अपनाया जाए। इसके लिए नियम सम्बन्धी और उदाहरण प्रस्तुत किए जायें।

3. पुनरावृत्ति :- पढ़ाए गए पाठ में से अध्यापक छात्रों से प्रश्न पूछे तथा उस पाठ की पुनरावृत्ति करे।

4. कक्षा-कार्य :- कक्षा में छात्रों को अधिकाधिक अभ्यास कार्य करवाना चाहिए।

5. गृहकार्य :- इसी प्रकार छात्रों को गृहकार्य भी दिया जाना चाहिए।

8.6.2 व्याकरण शिक्षण सम्बन्धी सुझाव :-

व्याकरण शिक्षण के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं :-

1. प्रारम्भिक स्तर पर व्याकरण के नियमों पर अधिक बल नहीं दिया जाना चाहिए।

2. प्रारम्भिक स्तर पर अव्याकृति विधि के द्वारा व्याकरण का परोक्ष रूप से ज्ञान कराया जाना चाहिए।

3. माध्यमिक स्तर पर आगमन तथा निगमन विधि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

4. व्याकरण शिक्षण के लिए मौखिक के साथ-साथ श्यामपट्ट का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।

5. प्रयोग तथा सहयोग विधि के द्वारा छात्रों के व्याकरण ज्ञान को व्यावहारिक बनाया जाना चाहिए।

6. व्याकरण शिक्षण उसके उद्देश्यों को सामने रखकर किया जाना चाहिए ।

7. जहाँ तक सम्भव हो कक्षा में पाठ्यपुस्तक का प्रयोग नहीं होना चाहिए। केवल घर पर अभ्यास करने में पुस्तक का प्रयोग हो ।

8. व्याकरण शिक्षण को साधन न मानकर भाषा शिक्षण को साधन माना जाना चाहिए।

9. व्याकरण शिक्षण के लिए श्रव्य तथा दृष्य साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

8.6.3. व्याकरण शिक्षण के प्रमुख बिन्दु :-

व्याकरण शिक्षा की क्लिष्टता को दूर करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर अवश्य ध्यान देना चाहिए :-

1. व्याकरण और पाठ्य सामग्री का तालमेल होना चाहिए।

2. परिभाषाओं, पारिभाषिक शब्दावली तथा ऐसे नियमों को कण्ठस्थ करने पर बल देना चाहिए जिनका पठन एवं लेखन में प्रयोग नहीं हो रहा है।

3. अशुद्ध शिक्षण विधि का परिहार करना चाहिए।

4. दृश्य तथा श्रव्यों साधनों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

5. अव्यय शब्दों की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए।

6. छात्रों को व्याकरण की जटिलता, कठिनता का भय दूर करते हुए विषय को रोचक बनाया जाना चाहिए।

7. प्रारम्भिक स्तर पर सरल लकारों तथा सरल प्रत्ययों का समावेश हो। इसी प्रकार यहाँ उपसर्ग, वचन, कारक, सन्धि, समास आदि से सम्बंधित प्रश्नों का समावेश होना चाहिए ।

संस्कृत एक संश्लेषणात्मक भाषा है अतः संस्कृत व्याकरण की पूर्णतः अवलेहना नहीं की जा सकती। भाषा में प्रवेश पाने के लिए व्याकरण के कुछ अंश को रहना तो पड़ेगा ही। हाँ यह स्पष्ट है कि शिक्षण की अनेक विधियों के द्वारा व्याकरण शिक्षा को रोचक एवं वैज्ञानिक बनाया जा सकता है। संस्कृत व्याकरण को उचित स्थान पर, उचित परिमाण में, उचितकाल पर तथा उचित स्तर पर पढ़ाया जाना चाहिए क्योंकि संस्कृत भाषा के लिए व्याकरण शिक्षा नितान्त अनिवार्य है।

8.7. सारांश :-

आप में प्रस्तुतः पाठ में संस्कृत व्याकरण एवं उसके महत्व को जान चुके होंगें। संस्कृत भाषा में अध्ययन में व्याकरण का ज्ञान होना कितना आवश्यक है। बिना व्याकरण से किसी भी भाषा का शुद्ध ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। साथ ही साथ आप सभी व्याकरण शिक्षण के उद्देश्यों को भी जान चूके होंगे। व्याकरण के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किन-किन विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। वर्तमान समय में क्या स्थिति है। इन सभी बातों से परिचित हो चुके होंगे।

8.8 कठिन शब्दावली :-

उच्छृंखल = मनमानी करने वाला, अच्याकृति = जो व्याकृत न हो/अप्रकट/गुप्त, परिमर्जित = परिष्कृत/साफ किया हुआ।

8.9 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :-

1. वेदागं छः है।
2. व्याकरण शिक्षण की विधियां - (i) सूत्रविधि, (ii) पाठ्य पुस्तक विधि, (iii) निगमन विधि

8.10 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ :-

1. गुप्त, डॉ. परमानन्द, संस्कृत व्याकरण सौराम् एवं संस्कृत साहित्य परिचय, सरस्वती हाउस (प्रा.) लि. 3649, चावडी बाजार, दिल्ली-110006 पो.बॉक्स नं.- 1186।
2. मित्तल, डॉ सन्तोष, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।
3. मिश्र, डॉ महेन्द्र कुमार, संस्कृत शिक्षण, श्याम प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौडाराजा, जयपुर-302003।
4. वर्मा, डॉ. पूर्णसिंह, संस्कृत-शिक्षण, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी, हरियाणा।

8.11 प्रश्न अभ्यास :-

1. संस्कृत व्याकरण के महत्व पर प्रकाश डालिए।

2. व्याकरण शिक्षण के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।

3. व्याकरण शिक्षण की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।

4. व्याकरण शिक्षण की वर्तमान स्थिति का उल्लेख कीजिए।

पाठ–9

संस्कृत में रचना शिक्षण एवं उच्चारण शिक्षण

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 रचना शिक्षण के उद्देश्य एवं महत्व

9.4 रचना शिक्षण के प्रकार

9.5 रचना शिक्षण की विधियों

9.6 स्वयं आकलन प्रश्न

9.7 उच्चारण शिक्षण का महत्व एवं अशुद्ध उच्चारण के कारण

9.8 उच्चारण दोषों के प्रकार

9.9 उच्चारण शिक्षण की विधियों एवं उच्चारण सुधार के उपाय

9.10 सांरांश

9.11 कठिन शब्दावली

9.12 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

9.13 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ

9.14 अभ्यास प्रश्न

9.1 उद्देश्य :- इस पाठ के अन्त में -

1. रचना शिक्षण के उद्देश्य एवं महत्व को जानने में सक्षम होंगें।
2. रचना शिक्षण के प्रकारों से परिचित होंगें।
3. रचना शिक्षण की विधियों से अवगत होंगें ।
4. उच्चारण शिक्षण के महत्व को जान पाएगें।
5. अशुद्ध उच्चारण कारणों से परिचित होंगे।
6. उच्चारण दोषों के प्रकारों को जान पाएंगे।
7. उच्चारण शिक्षण को विधियों और उच्चारण सुधार के उपायों से परिचित होगे।

9.2 प्रस्तावना :-

इस पाठ के अन्तर्गत शिक्षार्थी रचना शिक्षण और उच्चारण शिक्षण के बारें में जान सकेंगे । मानव एक सृजनशील प्राणी है। रचना की योग्यता रखने के कारण मानव अद्वितीय है। संस्कृत भाषा में रचना शिक्षण तथा उच्चारण शिक्षण का विशेष महत्व है। शिक्षार्थी रचना शिक्षण के महत्व एवं उद्देश्य तथा रचना -शिक्षण की विधियों से परिचित होंगे तथा साथ ही साथ उच्चारण शिक्षण के महत्व एवं उद्देश्य और उच्चारण-शिक्षण की विधियों से भी परिचित होंगे।

9.3 रचना शिक्षण के महत्व एवं उद्देश्य :-

रचना का अर्थ :- भाषा शिक्षण की दृष्टि से रचना का अर्थ है अपने भाषों एवं विचारों को विषयानुकूल भाषण शैली में उचित क्रम और कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना।

किसी वस्तु सजाना या सृजन करना रचना कहलाता है। अपनी भावनाओं और विचारों की कलात्मक एवं व्यवस्थित अभिव्यक्ति को रचना कहते है। मनुष्य एक चिन्तन एवं क्रियाशील सामाजिक प्राणी है। रचना करने की इच्छा मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। बच्चे के विकास के साथ-साथ यह प्रवृत्ति भी विकसित होती रहती है। भाषा शिक्षण का आधार भी रचना ही है।

'रचना' इस शब्द की व्युत्पति 'रच्' धातु से हुई। इसका शाब्दिक अर्थ है- सजाना, सँवारना, लिखना, बनाना। रचना में मानव अपने भावों को क्रमबद्ध ढंग से एक सूत्र में पिरोकर भली भाँति दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करता है। मानव अपने विचारों की अभिव्यक्ति मुख्यतः बोलकर व लिखकर करता है, अतः रचना भी दो प्रकार से की जाती है - 1. मौखिक रचना 2. लिखित करना।

सर्वप्रथम बालक मौखिक अभिव्यक्ति करता है। वह अपनी मातृभाषा के माध्यम से अपनी विचारों की अभिव्यक्ति करता है। लिखित में भावाभिव्यक्ति अधिक रहती है और व्याकरण की दृष्टि से उसकी पुनरावृत्ति की जा सकती है। मौखिक रचना तात्कालिक एवं सामयिक होती है तथा मौखिक रचना के बिना लिखित रचना भी सम्भव नहीं है।

9.3.1 रचना शिक्षण की आवश्यकता :-

रचना मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है। यदि इसके स्वाभाविक विकास क्रम को अवरुद्ध कर दिया जाए तो मनुष्य का व्यक्तित्व भी अविकसित रह जाता है तथा उसका व्यक्तित्व दोषपूर्ण हो जाता है। फलतः रचना प्रवृत्ति का समुचित विकास किया जाना चाहिए। अभ्यास के द्वारा ही किसी कार्य को सीखा जा सकता है अथवा उसमें

प्रवीणता प्राप्त की जा सकती है। अतः भाषा शिक्षण के लिए भी अभ्यास अनिवार्य है। जिसके लिए रचना कार्य नितान्त आवश्यक है। रचना शिक्षण के बिना भाषा शिक्षण अपूर्ण ही रहता है।

वर्तमान में छात्रों में रचना कार्य का अभाव दृष्टि गोचर होता है, फलतः उनमें भाषा शिक्षण भी उपयुक्त नहीं होता है। छात्र प्रायः उतना ही कार्य करते हैं जो परीक्षा के लिए आवश्यक रहता है। वर्तमान परीक्षा प्रणाली भी दोषपूर्ण है। इसमें छात्र रटी हुई सामग्री का अधिक प्रयोग करते हैं। इस प्रकार कक्षाओं मे रचना कार्य प्रायः अवहेलित रहता है। छात्रों की रचना क्षमता की जाँच वर्तमान परीक्षा प्रणाली से सम्भव नहीं है। भाषा शिक्षण रचना प्रवृत्ति पर अत्यधिक आधारित रहती है। अतः रचना प्रवृत्ति की अपेक्षा से भाषा शिक्षण कार्य सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार संस्कृत रचना शिक्षण के बिना छात्र संस्कृत भाषा नहीं सीख सकते तथा उसका व्यावहारिक प्रयोग भी नहीं कर सकते। अतः संस्कृत शिक्षण के स्तर को उन्नत करने के लिए रचना कार्य को आवश्यक बनाना होगा।

9.3.2 रचना शिक्षण के उद्देश्य :-

मौखिक रचना शिक्षण के उद्देश्य :-

1. छात्रों में संस्कृत ध्वनियों का ठीक-ठीक शुद्ध उच्चारण करने की योग्यता उत्पन्न करना।
2. उनमें वार्तालाप के समय शुद्ध, मधुर एवं संयत भाषा का प्रयोग करने की क्षमता विकसित करना।
3. छात्रों के शब्द भण्डार में वृद्धि करना।

4. नवीन शब्दावली से परिचित कराकर वाक्य रचना की योग्यता उत्पन्न करना।

5. शुद्ध उत्तर देने की क्षमता का परिचय करना।

6. छात्रों को सरल वार्तालाप करने के योग्य बनाना।

7. अपने विचारों को संस्कृत में व्यक्त करने के योग्य बनाना।

लिखित रचना शिक्षण के उद्देश्य :-

1. छात्रों की विचार शक्ति तथा निरीक्षण शक्ति का विकास करना।

2. अपने भावों को गति एवं औचित्यपूर्ण ढंग से संस्कृत में लिखने का कौशल उत्पन्न करने की योग्यता उत्पन्न करना।

3. मातृभाषा से संस्कृत में तथा संस्कृत से मातृभाषा में अनुवाद करने की योग्यता उत्पन्न करना।

4. उचित गति से सुन्दर, सुडौल और स्पष्ट लेख लिखने में प्रशिक्षित करना।

5. स्वतंत्र आत्म प्रकाशन के लिए तैयार करना।

6. छात्रों में मौलिकता व सृजनात्मक क्षमता का विकास करना।

7. प्रश्नोत्तर लेखक की योग्यता विकसित करना।

9.4 संस्कृत रचना शिक्षण के प्रकार :-

पाठशालाओं तथा विद्यालयों में विभिन्न स्तरों पर संस्कृत रचना शिक्षण के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं :-

(क) प्रारम्भिक स्तर पर :- प्रारम्भिक स्तर पर छात्रों को संस्कृत का थोड़ा सा ज्ञान होता है। अतः इस स्तर पर निम्नलिखित रचना शिक्षण होना चाहिए-

1. चित्र द्वारा प्रश्नोतर :- प्रारंभिक स्तर पर रचना शिक्षण के लिए चित्र की सहायता लेना अधिक उपयोगी रहता है। इस रूप में अध्यापक किसी पशु, पक्षी, पुष्प, वन तथा नगर आदि का चित्र दिखाकर छात्रों से प्रश्न करता है। वह प्रश्नों के उत्तर देते समय आए कठिन शब्दों का ज्ञान भी कराता है।

2. उपयुक्त शब्द चयन :- इसमें वाक्य में एक दो शब्दों का रिक्त स्थान छोड़ दिया जाता है तथा छात्र को उपयुक्त शब्द के द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए कहा जाता है।

3. वाक्य रचना :- इसके अन्तर्गत अध्यापक कुछ शब्दों के आधार पर छात्रों को वाक्य रचना के लिए कहता है।

4. रिक्त स्थान पूर्ति :- इसमें छात्रों को रिक्त स्थानों की पूर्ति करने के लिए कहता है।

5. उत्तर लेखन :- इसमें शिक्षक बच्चों को प्रश्न दे देता है तथा उन्हें उतर लिखने को कहता है।

6. शब्द परिवर्तन :- इसमें अध्यापक वाक्यों में आए हुए शब्दों को बदलकर लिखने का अभ्यास कराता है।

7. प्रश्न लेखन :- कई बार शिक्षक के द्वारा छात्रों को उत्तर लिखवा दिया जाता है और उन उतरों के आधार पर प्रश्न लिखने के लिए प्रोत्साहित करता है।

(ख) माध्यमिक स्तर पर :- माध्यमिक स्तर पर छात्रों का संस्कृत ज्ञान प्रारम्भिक स्तर की अपेक्षा कुछ अधिक होता है। परन्तु उनका भाव ज्ञान कम रहता है। इस स्तर पर निम्नलिखित प्रकार से रचना कार्य करना होना चाहिए।

1. रचना शिक्षण के लिए विभिन्न चित्रों की सहायता से प्रश्न करना।
2. अध्यापक छात्रों को प्रश्न दे देता है तथा उन्हें उन प्रश्नों के उत्तर लिखने के लिए कहता है।
3. कई बार शिक्षक छात्रों के प्रश्न के स्थान पर उत्तर लिखवाकर उन्हें उनके प्रश्न लिखने को कहता है।
4. अध्यापक छात्रों को रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए कहता है।
5. अध्यापक छात्रों को कुछ शब्द देकर उन्हें वाक्य रचना करने के लिए कहता है।
6. कई बार शिक्षक वाक्यों से आए हुए शब्दों को बदलकर दूसरे शब्द लिखने का अभ्यास करवाता है।
7. शिक्षक छात्रों को विभक्ति तथा प्रत्यय लगाकर नये शब्द लिखने के लिए प्रोत्साहित करता है।
8. छात्रों को सरल विषयों पर संवाद लिखने के लिए प्रेरित करता है।
9. पत्र लेखन में भी छात्रों को प्रवीण बनाना।
10. छात्रों को लम्बे संस्कृत अनुच्छेदों को संक्षिप्त करने के योग्य बनाना।

9.5 रचना शिक्षण की विधियाँ :-

रचना शिक्षण का विभिन्न स्तरों में अध्यापन कराने हेतु विधियों का होना आवश्यक है। रचना शिक्षण के मौखिक रूप एवं लिखित रूप एक दूसरे पर अवलम्बित है। लिखित कार्य को मौखिक कार्य करवाना तथा मौखिक कार्य को लिपिबद्ध कराना। रचना शिक्षण की विधियाँ निम्नलिखित प्रकार से हैं:-

1. **चित्र विधि :-** यह विधि प्रारम्भिक स्तर के लिए अत्यन्त उपयोगी है। छात्रों के समक्ष चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। उन चित्रों अनेक पक्षों पर प्रश्न कर उत्तर प्राप्त किये जाते हैं। उत्तर श्यामपट्ट पर लिख दिए जाते हैं। छात्र उन्हें अपनी उत्तर-पुस्तिका में लिखते हैं।

2. **उद्‌बोधन विधि :-** इस विधि में अध्यापक छात्र को कोई भी विषय देकर उनके साथ चर्चा करता है, उनकी जिज्ञासा बढ़ाता है। तत्पश्चात् उन्हें कल्पना शक्ति के आधार पर लिखने की स्वतन्त्रता दी जाती है।

3. **सूत्रविधि :-** शिक्षक श्यामपट्ट पर वर्ण्य विषय के सूत्र को क्रमबद्ध रूप से लिख देता है। इन सूत्रों के आधार पर छात्रों को लिखने का अवसर प्रदान करता है।

4. **प्रश्नोत्तर विधि :-** यह संस्कृत भाषा की प्राचीन विधि है। यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है। सम्बन्धित विषयवस्तु पर शिक्षण कराना हो, तो उससे सम्बन्धित प्रश्न किये जाते हैं और छात्र उन प्रश्नों के उत्तर देता है। प्राप्त उत्तरों के आधार पर शिक्षक अनुच्छेदों को छात्रों से लिखने के लिए कहता है।

5. **मन्त्रणा विधि :-** यह विधि उच्च स्तर के लिए उपयोगी है क्योंकि इसमें शिक्षक छात्रों का केवल पथ-प्रदर्शक होता है। पुस्तकालय में विविध ग्रन्थों तथा

पत्र-पत्रिकाओं को पढ़कर विषय-वस्तु एकत्रित की जाती है। उसके समीक्षात्मक अध्ययन के बाद उसे लिपिबद्ध करता है।

6. स्वाध्याय विधि :- इस विधि में अध्यापक केवल रचना सम्बन्धी विषय ही छात्रों को बताता है। छात्र स्वयं स्वाध्याय करके नवचिन्तन की अभिव्यक्ति अपनी रचना में करते हैं

7. अनुकरण विधि :- शिक्षक छात्रों को कोई रचना कृति देखने के लिए कहता है। उसके बाद छात्र उस रचना शैली के अनुकरण पर वर्ण्य-विषय पर मौलिक रचना करते हैं।

8. निरीक्षण विधि :- इनके लिए शैक्षिक भ्रमण का अवसर प्रदान किया जाता है। इस प्रकार छात्र वस्तुओं का निरीक्षण शिक्षक की देख-रेख में करते हैं। अध्यापक भ्रमण के समय बीच-बीच में जानकारी देता रहता है। तत्पश्चात् प्राप्त ज्ञान व अनुभवों के आधार लिखने के लिए कहा जाता है।

9. तर्क वितर्क विधि :- इस विधि का उस सामाजिक, राजनैतिक तथा शैक्षिक समस्याओं के विषय में, जिनमें मतभेद हो, उपयोग होता है। छात्र विषय के पक्ष तथा विपक्ष में अपने विचार प्रकट करते हैं, इसके आधार पर रचना कार्य होता है।

10. विचार विमर्श विधि :- इसमें छात्र स्वयं विचार-विमर्श करते हैं। वे अपने अध्यापक के निर्देशन में भी विचार-विमर्श कर सकते हैं। छात्र विचार बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करके उन्हें लिखते रहते हैं। फलतः इन विचार-बिन्दुओं आधार पर छात्र निबन्ध इत्यादि लिखते हैं।

9.5.1 संस्कृत रचना शिक्षण के प्रकार :-

संस्कृत रचना कार्य को मुख्यता दो भागों में बाँटा जा सकता है :-

1 पाठ्य पुस्तक पर आधारित।

2. सामान्य रचना कार्य ।

पाठ्य पुस्तक पर आधारित रचना शिक्षण के लिए शिक्षण सोपान आवश्यक नहीं है। कारण यह है कि यह अभ्यास के रूप में होता है तथा इसका मुख्य उद्देश्य पुनरावृति होता है। द्वितीय प्रकार के निबन्ध यदि लेखन के लिए निम्नलिखित चरणों का उपयोग किया जाना चाहिए :-

(क) प्रस्तावना :- अध्यापक रचना विषय के सम्बन्ध में छात्रों से बातचीत करें अथवा प्रश्न पूछें। इस प्रकार अध्यापक को छात्रों के पूर्व ज्ञान का अनुभव हो जाएगा।

(ख) उद्देश्य कथन :- अध्यापक उद्देश्य कथन करे। उसके द्वारा छात्रों को निर्देश दिया जाये कि उन्हें किस प्रकार का रचना कार्य करना है।

(ग) प्रस्तुतीकरण :- इसके अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों पर ध्यान दिया जाना चाहिए

1. विषय का प्रस्तुतीकरण रचना शिक्षण विधि के अनुरूप होना चाहिए। प्रश्नोतर विधि तथा रूपरेखा विधि के अन्तर्गत अध्यापक छात्रों के प्रसंगानुसार प्रश्न करे।

2. छात्रों के उत्तर को अध्यापक श्यामपट्ट पर लिखे । उनका मार्गदर्शन भी करता रहे । श्यामपट्ट पर मुख्य विचार बिन्दु ही लिखने चाहिएँ।

3. श्यामपट्ट पर लिखे गए संकेतों के आधार पर छात्रों को रचना कार्य करने के लिए कहा जाए ।

(घ) संशोधन :- रचना कार्य के लिए संशोधन भी आवश्यक है। संशोधन कार्य कक्षा में ही होना चाहिए।

9.6 स्वयं आकलन प्रश्न :-

1. संस्कृत रचना शिक्षण के किन्ही दो विधियों के नाम लिखों।
2. अशुद्ध उच्चारण के कारण लिखो।

9.7 संस्कृत उच्चारण शिक्षण का महत्व एवं अशुद्ध उच्चारण के कारण :-

सभी भाषाओं के शिक्षण में उच्चारण का विशेष महत्व है। हमारी प्राचीन शिक्षण पद्धति पूर्णतः मौखिक ही थी। संस्कृत का पठन-पाठन मौखिक रूप से ही होता है या इसमें उच्चारण पर विशेष बल दिया जाता था। वेदांगों में शिक्षा एक ऐसा वेदांग है जिसमें उच्चारण के महत्व पर विशेष बल दिया गया है। 'पाणिनि शिक्षा' में शुद्धोच्चारण की महत्ता को इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है :-

मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।

भाषा शिक्षण के प्रारम्भ में ही भाषा के उच्चारण के सम्बन्ध में प्रवृत्तियाँ बनती है। भाव यह है कि शिक्षण काल के प्रारम्भ में जैसा शब्दों के उच्चारण का अभ्यास बन जाता है, वैसा ही अभ्यास मृत्युपर्यन्त बना रहता है । अतः अध्यापक को शिशु के शुद्ध उच्चारण पर विशेष बल देना चाहिए। छात्रों को प्रारम्भ से ही उच्चारण की

महता से अवगत कराया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि प्रारंम्भिक कक्षाओं में ही शिशुओं को संस्कृत ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण करना सिखाया जाए।

9.7.1 वर्णोच्चारण की विधि :-

संस्कृत व्याकरण ग्रन्थों में तथा शिक्षा ग्रन्थों में वर्णोत्पत्ति के विषय में गहन चिन्तन हुआ है। महर्षि पीणिनि ने वर्णों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार वर्ग का उच्चारण करने से पूर्व आत्मा एवं बुद्धि का संयोग होता है। इस प्रकार आत्मा बुद्धि के साथ संयोग स्थापित करके अर्थ का पूर्वज्ञान प्राप्त कर लेती है। शब्द क्या है तथा उसका क्या स्वरूप है - यह पहले ही निश्चित कर लिया जाता है। इसके साथ ही आत्मा प्रज्ञा के साथ मिलकर इस सभी का ज्ञान प्राप्त कर लेती है।

इसके पश्चात् प्रेरित अवस्था आती है। शब्द के अर्थ का ज्ञान होने के पश्चात् आत्मा मन को शब्द के उच्चारण के लिए प्रेरित करती है। आत्मा से प्रेरित होने पर मन में ध्वनि को उच्चारण करने की इच्छा होती है। तब वह जठराग्नि को क्रियाशील करता है। जठराग्नि का स्थान नाभि के नीचे मणिपुर चक्र है।

प्रेरित की अवस्था के पश्चात् चालन की अवस्था आती है। मन के द्वारा जठराग्नि को क्रियाशील किए जाने पर जठराग्नि समान वायु को ध्वनि उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करती है। फलतः समान वायु ऊपर उठती है तथा हृदय प्रदेश में आकर ध्वनि को उत्पन्न करती हैं। चलन के पश्चात् उच्चारण की अवस्था आती है। उस अवस्था में वायु हृदय प्रदेश के ऊपर उठकर कण्ठ में ध्वनि उत्पन्न करती है। यह मध्यम

स्वरूप की ध्वनि होती है। यही ध्वनि मुख में टकराती है तो भौतिक ध्वनि उत्पन्न होती है।

9.7.2 अशुद्ध उच्चारण के कारण :-

छात्रों के द्वारा शब्दों के अशुद्ध उच्चारण करने में निम्नलिखित कारण देखे जाते है:-

1. अज्ञानता :- वर्णों और शब्दों के अशुद्ध उच्चारण के लिए अज्ञानता मुख्य कारण है। प्रारम्भ में छात्रों को अध्यापक के द्वारा शुद्ध उच्चारण का अभ्यास नहीं कराया जाता है। इस प्रकार उनका अशुद्ध उच्चारण ही स्वभाव बन जाता है।

2. शारीरिक दोष :- वाक्यन्त्र में दोष होने एक कारण भी छात्र वर्णों का उच्चारण अशुद्ध करते हैं। जिसका निवारण किया जाना असम्भव नहीं है परन्तु कठिन कार्य अवश्य है। जैसे- वर्णों को अनुनासिक युक्त उच्चारित करते है। बच्चों की सुनने की क्षमता कम होती है तो भी शुद्ध उच्चारण में कठिनाई होती है।

3 त्रुटिपूर्ण अभ्यास :- छात्रों को प्रारम्भ में ही शुद्ध वर्णों के उच्चारण का अभ्यास नहीं कराया जाता है। इस प्रकार में शुरू से ही अशुद्ध उच्चारण करने लगते हैं। इन अशुद्ध वर्णों के अभ्यास को बाद में छोड़ना अत्यधिक कठिन हो जाता है।

4. मनोवैज्ञानिक कारण :- मनुष्य की मानसिक स्थिति भी उच्चारण को प्रभावित करती है जिस परिवार में क्रोध, कलह तथा अशान्ति का वातावरण हमेशा बना रहता है, जिसके कारण बालक हकलाने तथा तुतलाने लगता है और अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ होता है।

5. भौगोलिक कारण :- भारत में अनेक भौगोलिक भिन्नताएँ पाई जाती है। इन्हीं भिन्नताओं के कारण यहाँ अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भौगोलिक भिन्नताओं का प्रभाव वर्णों के उच्चारण पर भी पड़ता है जैसे- कई स्थानों पर 'स' के स्थान पर 'श' और कहीं 'श' के स्थान पर 'स' का उच्चारण होता है।

6. शिक्षापद्धति में परिवर्तन :- प्राचीन समय में शिक्षा गुरुकुलों तथा आश्रमों में ग्रहण की जाती थी। इन शिक्षण संस्थानों में शिक्षण पद्धति मौखिक थी। उस समय छात्रों की परीक्षाएं वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, चर्चा संवाद आदि के द्वारा की जाती थी। परन्तु आजकल की शिक्षण पद्धति लेखन कार्य पर बल देती है। जिसके कारण छात्रों को मौखिक अभिव्यक्ति कम होती है। यह भी अशुद्ध उच्चारण का एक कारण है।

7. अध्यापको की स्थिति :- आजकल स्वयं अध्यापकों का उच्चारण अत्यधिक अशुद्ध है और छात्र अपने ही अध्यापक का अनुकरण करते हैं। जिसके कारण वे भी वर्णों को अशुद्ध उच्चारित करते हैं।

9.8 उच्चारण दोषों के प्रकार :-

आचार्य पाणिनि ने अपनी 'पाणिनीय शिक्षा' में अशुद्ध उच्चारण के दोष इस प्रकार बताए :-

उपांशुद्रष्टं त्वरित निरस्तम्बिलम्बितगद् गदितं प्रगीतम् ।

निपीडितं ग्रस्तपदाक्षरंञ्च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ।।

अर्थात् इस प्रकार से वर्णों को उच्चारित करने से वर्णों का उच्चारण दूषित होता है:-

1. वर्णों को होठों और जीभ से दबाकर बोलना।

2. वर्णों को जल्दी-जल्दी बोलना ।

3. वर्णों को फेकतें हुए बोलना।

4. वर्णों का उच्चारण रुक-रुक कर करना।

5 वर्णों को दबे हुए स्वर में बोलना ।

6. वर्णों का उच्चारण गा-गाकर करना।

7. वर्णों को तुतलाकर या हकलाकर बोलना।

8. अक्षरों को बीच-बीच में ग्रस्त कर बोलना ।

9. वर्णों को दीनता के स्वर में बोलना।

10. प्रत्येक वर्ण को नाक से बोलना ।

संस्कृत भाषा में कई प्रकार के दोष प्राप्त होते है। उनका वर्णन इस प्रकार है :-

1. अशुद्ध वर्णलोप :- बालक शब्दों का उच्चारण करते समय किसी वर्ण का लोप कर देता हैं जैसे :- परमात्मा-परमात्म, उन्नति - उनति आदि।

2. अशुद्ध आगम :- उच्चारण के समय किसी स्वर या व्यंजन का अनावश्यक आगम करना। जैसे :- जगत् - जगत, स्थापित- इस्थापित आदि ।

3. वर्ण - विपर्यय :- जब शब्द में विद्यमान ध्वनियों परस्पर स्थान बदल लेती है। जैसे- पागल - पगला, ससुर - सुसर आदि ।

4. समीकरण :- जब शब्द में दो भिन्न ध्वनियों को समीकरण कर दिया जाता है यह भी एक दोष है। जैसे- यजमान - जजमान, वल्कल-वक्कल अदि।

5. विषमीकरण :- समीकरण के विपरीत जब शब्द में दो समान ध्वनियों का विषमीकरण किया जाता है। जैजे- कंकण - कंगन।

6. मात्रा भेद :- जब शब्द में विद्यमान ह्रस्व मात्रा को दीर्घकरना, दीर्घ मात्रा को ह्रस्व मात्रा कर देना भी उच्चारण दोष कहलाता है जैसे- आषाढ़ - अषाढ़, पुत्र पूत।

7. संघोषीकरण :- जब अघोष ध्वनि को सघोष करना, संघोषीकरण कहलाता है। जैजे- शाक-साग, शकुन- सगुन ।

8. अघोषीकरण :- जब सघोष ध्वनि को अघोष ध्वनि करना अधोषीकरण कहलाता है। जैसे मदद-मदत।

9. महाप्राणी करण :- जब शब्द में विद्यमान अल्पप्राण ध्वनि को महाप्राण ध्वनि कर दिया जाता है। जैसे - वेष-भेष, गृह-घर।

10. अल्पप्राणी करण :- महाप्राणीकरण के विपरीत जब महाप्राण ध्वनि के स्थान पर अल्पप्राण ध्वनि का प्रयोग करना । जैसे सिन्धु - हिंदु, भागिनि-बहिन।

11. ऊष्मीकरण :- जो ध्वनि ऊष्म नहीं होती परन्तु उसे ऊष्म कर दिया जाता है। उसे ऊष्मीकरण कहते हैं।

12. अनुनासिकीकरण :- जो ध्वनि अनुनासिक नहीं थी, उन्हें अनुनासिक कर देना अनुनासिकीकरण कहलाता है। जैसे- सर्प-साँप, श्वास-साँस।

13. भ्रामक व्युत्पति :- भ्रामक व्युत्पति के कारण भी वर्णों का उच्चारण दोष पाया जाता है। जैसे- विज्ञान - विग्यान।

9.9 उच्चारण शिक्षण की विधियाँ एवं उच्चारण सुधार के उपाय :-

प्रारम्भिक स्तर से ही उच्चारण शिक्षण प्रारम्भ होना चाहिए। शुरू से ही छात्रों की जिस तरह किसी वर्ण तथा शब्द को उच्चरित करने की आदत पड़ जाती है, वह जीवनपर्यन्त बनी रहती है। शिक्षक को छात्रों के उच्चारण शिक्षण के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग करना चाहिए -

1. अभ्यास विधि :- प्रारम्भिक स्तर पर शुद्ध उच्चारण के लिए छात्रों को बार-बार वर्णों का उच्चारण करवाना चाहिए तथा जिस छात्र का उच्चारण अशुद्ध हो उसे अभ्यास द्वारा ठीक करना चाहिए।

2. अनुकरण विधि :- भाषा के शिक्षक का कक्षा में उच्चारण शुद्ध होना चाहिए क्योंकि छात्र शिक्षक का ही अनुकरण करके सीखते हैं। इसलिए अनुकरण विधि द्वारा भी छात्रों का उच्चारण शुद्ध करवाया जा सकता है। अतः कक्षा में शिक्षक को आदर्श वाचन करना चाहिए।

3. स्थान परिवर्तन विधि :- अशुद्ध उच्चारण के कुछ कारण स्थानीय भी होते है। इस स्थिति में छात्रों के स्थान परिवर्तन से उच्चारण दोष दूर किये जा सकते हैं। छात्रों को ऐसे साथियों या व्यक्तियों के सम्पक्र से दूर कर देना चाहिए जिनका उच्चारण अशुद्ध है।

4. वाक्य संशोधन विधि :- भाषा शिक्षण के अनेक विधियों में वाक्य संशोधन विधि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विधि मानी जाती है। क्योंकि भाषा एक वर्ण या शब्द सर्वत्र सार्थक

नहीं होता। पूर्ण वाक्य की शुद्धता पर ध्यान दिया जाता है। अतः पूर्ण वाक्य का उच्चारण शुद्ध करवाया जा सकता है। इस विधि द्वारा भी छात्रों के अशुद्ध उच्चारण दोष को दूर किया जा जकता है।

5. निदानात्मक परीक्षण एवं उपसारात्मक शिक्षण विधि :- शिक्षक निदानात्मक परीक्षणों द्वारा छात्रों की अशुद्धियों की पहचान करके और उनके कारणों की खोज करे। उसके आधार पर उपराचात्मक शिक्षण द्वारा छात्रों को शुद्ध उच्चारण का अभ्यास करवाया जाना चाहिए।

6. अवरोध विधि :- छात्रों को अत्यधिक शीघ्र बोलने की आदत होती है। अत्यधिक शीघ्र बोलने के कारण उनका उच्चारण अस्पष्ट तथा दोषमुक्त होता है। ऐसे अत्यधिक शीघ्र उच्चारण करने वाले छात्रों को शीघ्र बोलने से रोकना चाहिए तथा किसी भी पद का उचित समय मे ही उच्चारण करना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे छात्रों के उच्चारण की गति नियमित हो जायेगी। ऐसे छात्रों के लिए यह अवरोध विधि सहायक होती है।

9.9.1 उच्चारण सुधार के उपाय :-

संस्कृत भाषा के छात्रों के लिए संस्कृत शब्दों के उच्चारण के सुधार के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिए :-

1. संस्कृत में वर्णमाला का वर्गीकरण बड़ा वैज्ञानिक है। इन वर्ण स्थानों की जानकारी छात्रों को प्रदान करके अभ्यास करवाया जाना चाहिए। इस प्रकार भी उच्चारण शुद्ध हो सकता है।

2. छात्रों का उच्चारण आरम्भिक स्तर पर शुद्ध करवाया जाए। उनके उच्चारण अभ्यास के दूषित हो जाने पर उनको सुधारना मुश्किल हो जाता है

3. शुद्ध उच्चारण का बार-बार अभ्यास करवाया जाना चाहिए। अभ्यास करने से उस कार्य में सफलता मिलती है।

4. छात्र के गलत उच्चारण पर ही छात्र को रोका जाए और उसी समय उसे शुद्ध करवाया जाएं।

5. छात्रों का शारीरिक परीक्षण करवाना चाहिए उसमें किसी प्रकार का विकार होने पर उचित उपचार करवाना चाहिए।

6. पाठ्यपुस्तक शिक्षण करते हुए समय कठिन शब्दों के उच्चारण का अभ्यास समस्त कक्षा को भी कराया जाए।

7. व्यक्तिगत रूप से छात्रों के उच्चारण पर भी शिक्षक को ध्यान देना चाहिए।

8. ध्वनि विभेदीकरण की शिक्षा दी जाए। जैसे -ङ्, ञ्, ड्, ढ् आदि ध्वनियों के उच्चारण भेद को स्पष्ट करे

9. शिक्षक वर्ण या ध्वनि के उच्चारण का अभ्यास न करवाएं बल्कि शब्द तथ वाक्य का अभ्यास करवाए।

10. श्लोक, पठन, भाषा प्रतियोगिता, आदि का आयोजन किया जाए।

11. उच्चारण में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए, बल्कि धैर्य से काम लेना चाहिए।

12. अध्यापक को अपना उच्चारण शुद्ध रखना चाहिए क्योंकि छात्र अध्यापक का ही अनुकरण करते हैं।

13. जहां पद संधियुक्त या समासयुक्त हो, वहाँ पर शिक्षक उनका संधि विच्छेद तथा समास विग्रह करके उन्हें उनसे परिचित करवाए।

14. छात्रों को मात्रा, गति, विराम, बलाघात, स्वराधात आदि उच्चारण तत्त्वों से परिचित करवाना चाहिए तथा उनका पर्याप्त अभ्यास करना चाहिए।

15. शिक्षक द्वारा शुद्ध उच्चारण के लिए कक्षा में अधिक मौखिक कार्य करवाया जाए ।

9.10. सारांश :-

आप जान चुके होगें कि संस्कृत भाषा शिक्षण में रचना शिक्षण तथा उच्चारण शिक्षण को कितना महत्व है। भाषा शिक्षण में शुद्ध उच्चारण पर विशेष बल दिया जाता है। शिक्षक रचना शिक्षण के लिए छात्रों को कौन-कौन सी विधियाँ अपनाकर उन्हें आसानी से पढ़ा सकता है तथा छात्रों के अशुद्ध उच्चारण को शुद्ध कर सकता है। आप सभी उच्चारण शिक्षण की विधियों से भी परिचित हो चुके होंगे।

9.11 कठिन शब्दावली :-

1. औचित्यपूर्ण = शिष्ट/विनीत/सभ्य,
2. अनुनासिक = नाक और मुख से उच्चारित

9.12 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर :-

1. संस्कृत रचना शिक्षण की विधियाँ - (i) चित्र विधि, (ii) तर्क वितर्क विधि, (iii) अनुकरण विधि
2. अशुद्ध उच्चारण के कारण - (i) अज्ञानता, (ii) शारीरिक दोष, (iii) त्रुटिपूर्ण अभ्यास

9.13 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रन्थ :-

1. गुप्त, डॉ. परमानन्द, संस्कृत व्याकरण सौराम् एवं संस्कृत साहित्य परिचय, सरस्वती हाउस (प्रा.) लि. 3649, चावडी बाजार, दिल्ली-110006 पो.बॉक्स नं.- 1186।
2. मित्तल, डॉ सन्तोष, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।
3. मिश्र, डॉ सन्त कुमार, संस्कृत-शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001।
4. मिश्र, डॉ महेन्द्र कुमार, संस्कृत शिक्षण, श्याम प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौडाराजा, जयपुर-302003।
5. प्रभाकरण, पण्डित विश्वनाथ शास्त्री, अघुसिद्धान्त कौमुदी, मोती लाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-7।
6. वर्मा, डॉ. पूर्णसिंह, संस्कृत-शिक्षण, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी, हरियाणा।

9.14 अभ्यास प्रश्न :-

1. रचना शिक्षण से क्या अभिप्राय है? रचना शिक्षण के महत्व एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

2. रचना शिक्षण की विधियों का वर्णन कीजिए।

3. उच्चारण शिक्षण के महत्व का उल्लेख कीजिए।

4. अशुद्ध उच्चारण शिक्षण के कारणों का वर्णन कीजिए।

5. उच्चारण शिक्षण की विधियों तथा उच्चारण सुधार के उपायों का उल्लेख कीजिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. उपाध्याय, बलदेव, शारदा निकेतन, रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण वाराणसी - 5

2. कुमार, डॉ. संजीव, ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, S. Samar Publications, Dharamshala, Distt. Kangra, H.P. PIN- 176215

3. गुप्त, डॉ. परमानन्द, संस्कृत व्याकरण सौरभम् एवं संस्कृत साहित्य परिचय, सरस्वती हाउस (प्रा.) लि. 3649, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006 पोस्ट बॉक्स नं. 1186

4. द्विवेदी, पदम श्री कपिलदेव, भाषा-विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी-221001

5. मित्तल, डॉ. सन्तोष, संस्कृत शिक्षण, आर.लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेन्ट कॉलेज, मेरठ-250001

6. मिश्र, चिरञ्जीव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, भारतीय संस्कृत भवन, माई हीरां गेट, जालन्धर।

7. प्रभाकर, पण्डित विश्वनाथ शास्त्री, लघुसिद्धान्त कौमुदी, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड़, जवाहरनगर, दिल्ली-7

8. वर्मा, डॉ. पूर्णसिंह, संस्कृत शिक्षण, लक्ष्मी बुक डिपो, हांसी गेट, भिवानी (हरियाणा)।

9. शर्मा, डॉ. संजीव, पाठ्यक्रम में भाषा का स्वरूप, S. Samar Publications, Dharamshala, Distt. Kangra, H.P. PIN- 176215

10. शास्त्री, श्री चारू चन्द्र, संस्कृत साहित्य का इतिहस, चौखम्बा विद्याभवन चौक, पोस्ट बॉक्स नं. 069, वाराणसी–221001

11. सिंह, राम किशोर, पाठ्यक्रम में भाषा, आर. लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेण्ट इण्टर कॉलेज, बेगमब्रिज रोड, मेरठ–250001

12. सिंह, डॉ. कर्ण, भाषा-विज्ञान, साहित्य भण्डार, साहित्य बाजार, मेरठ–250002